पं. जुगलकिशोर मुख्तार "युगवीर"

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

सम्पादक :

डॉ. शीतल चन्द जैन, जयपुर

डॉ. ऋषभ चन्द्र जैन 'फौजदार'

डॉ. शोभालाल जैन, जयपुर

प्रकाशक :

सौजन्य से

कृष्णा नगर, दिगम्बर जैन समाज

E-5/37, कृष्णा नगर, दिल्ली-51

फोन : 55351932

उपा. मुनि श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज के
कृष्णा नगर जैन मन्दिर मे प्रवास के उपलक्ष्य मे प्रकाशित

प्रकाशक : कृष्णा नगर जैन समाज, कृष्णा नगर, दिल्ली-51

संस्करण : प्रथम, अगस्त, 2003

प्रतियां : 1000

मूल्य : 200 रूपये मात्र (पुनः प्रकाशन हेतु)

प्राप्ति स्थान :

- **प्राच्य श्रमण भारती**
  12/ए निकट जैन मन्दिर, प्रेमपुरी
  मुजफ्फरनगर-251001 (उ प्र)
  फोन : 0131-2450228, 2408901

- **श्रुत सवर्द्धन संस्थान**
  प्रथम तल, 247, दिल्ली रोड, मेरठ - 250 002
  फोन - 0121-2527665

- **डॉ. शीतलचन्द्र जैन**, मत्री
  वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट
  81/94 नीलगिरी मार्ग, मानसरोवर, जयपुर (राज)
  फोन : 0141-2781649

- **श्री दिगम्बर जैन मन्दिर**
  E-5/37, कृष्णा नगर, शाहदरा, दिल्ली-51
  फोन : 55351932

मुद्रक :
दीप प्रिन्टर्स
70 ए, रामा रोड़, इडस्ट्रियल एरिया
नई दिल्ली - 110015
फोन : 25925099

आचार्य परम्परा

बाल ब्रह्मचारी, प्रशान्त मूर्ति आचार्य 108 श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी)

जन्म तिथि	–	कार्तिक वदी एकादशी विं॰सं॰ – 1945 (सन् 1888)
जन्म स्थान	–	ग्राम–छाणी, जिला – उदयपुर (राजस्थान)
जन्म नाम	–	श्री केवलदास जैन
पिता का नाम	–	श्री भागचन्द जैन
माता का नाम	–	श्रीमती माणिकबाई
क्षुल्लक दीक्षा	–	सन् 1922 (विं॰सं॰ 1979)
स्थान	–	गढ़ी जिला–बासबाडा (राजस्थान)
मुनि दीक्षा	–	भाद्र शुक्ला 14 सवत् 1980 (सन 1923)
स्थान	–	सागवाड़ा (राजस्थान)
आचार्य पद	–	सन् 1926 वि स 1983
स्थान	–	गिरीडीह (झारखड प्रान्त)
समाधिमरण	–	17 मई 1944 ज्येष्ठवदी दशमी वि स 2001
स्थान	–	सागवाड़ा (राजस्थान)

परम पूज्य आचार्य 108 श्री सूर्यसागर जी महाराज

जन्म तिथि	–	कार्तिक शुक्ला नवमी विं॰सं॰ 1940 (8 नवम्बर 1883)
जन्म स्थान	–	प्रेमसर जिला – ग्वालियर (म॰प्र॰)
जन्म नाम	–	श्री हजारीलाल जैन
पिता का नाम	–	श्री हीरालाल जैन
माता का नाम	–	श्रीमती गैदाबाई
ऐलक दीक्षा	–	विं॰सं॰– 1981 (सन 1924) (आ॰ शान्तिसागर जी से)
स्थान	–	इन्दौर (मध्य प्रदेश)
मुनि दीक्षा	–	51 दिन पश्चात आचार्य शान्तिसागर जी (छाणी) से
स्थान	–	हाटपीपल्या जिला – देवास (म प्र)
आचार्य पद	–	वि॰ स॰ 1985 (सन् 1928)
स्थान	–	कोडरमा (झारखण्ड)
समाधिमरण	–	वि॰ स॰ 2009 (14 जुलाई 1952)
स्थान	–	डालमिया नगर (झारखण्ड)
साहित्य क्षेत्र मे	–	33 ग्रन्थो की रचना की।

परम पूज्य आचार्य 108 श्री विजयसागर जी महाराज

जन्म तिथि	–	वि॰ स॰ 1938 माघ सुदी 8 गुरुवार
जन्म स्थान	–	सिरोली (मध्य प्रदेश)
जन्म नाम	–	श्री चोखेलाल जैन
पिता का नाम	–	श्री मानिक चन्द जैन
माता का नाम	–	श्रीमती लक्ष्मी बाई
क्षुल्लक दीक्षा	–	इटावा (उत्तर प्रदेश)
ऐलक दीक्षा	–	मथुरा (उत्तर प्रदेश)
मुनि दीक्षा	–	मारोठ (जि नागौर राजस्थान) आचार्य श्री सूर्यसागर जी से
समाधि तिथि	–	20 दिसम्बर 1962
स्थान	–	मुरार जिला – ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

परम पूज्य आचार्य 108 श्री विमलसागर जी महाराज (भिन्ड वाले)

जन्म तिथि	–	पौष शुक्ला द्वितीया वि० स० 1948 (सन् 1891)
जन्म स्थान	–	ग्राम मोहना, जिला – ग्वालियर (मध्य प्रदेश)
जन्म नाम	–	श्री किशोरीलाल जैन
पिता का नाम	–	श्री भीकमचन्द जैन
माता का नाम	–	श्रीमती मथुरादेवी जैन
क्षुल्लक दीक्षा	–	वि० स० 1998 (सन् 1941) आ० विजयसागर जी से
स्थान	–	ग्राम – पाटन जिला – झालावाड (राजस्थान)
मुनि दीक्षा	–	वि० स० 2000 – आ० विजयसागर जी से
स्थान	–	सागोद जिला – कोटा (राजस्थान)
आचार्य पद	–	सन् 1973 स्थान – हाड़ौती
समाधिमरण	–	13 अप्रैल 1973 (वि० स० 2030)
स्थान	–	सागोद, जिला – कोटा (राजस्थान)

मासोपवासी, समाधिसम्राट परम पूज्य आचार्य 108 श्री सुमतिसागर जी महाराज

जन्मतिथि	–	वि० स० 1974 आसोज शुक्ला चतुर्थी (सन् 1917)
जन्म स्थान	–	ग्राम – श्यामपुरा जिला – मुरैना (मध्य प्रदेश)
जन्म नाम	–	श्री नत्थीलाल जैन
पिता का नाम	–	श्री छिद्दूलाल जैन
माता का नाम	–	श्रीमती चिरौंजा देवी जैन
ऐलक दीक्षा	–	वि० स० 2025 चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (सन् 1968)
स्थान	–	मुरैना (मध्य प्रदेश) आ० विमलसागर जी से
ऐलक नाम	–	श्री वीरसागर जी
मुनि दीक्षा	–	वि० स० 2025 अगहन वदी द्वादशी (सन् 1968)
स्थान	–	गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)
आचार्य पद	–	ज्येष्ठ सुदी 5 वि०स० 2030 अप्रैल 13, सन् 1973
स्थान	–	मुरैना (म प्र) आ विमलसागर जी (भिण्डवाले) महाराज से।
समाधिमरण	–	क्वार वदी 12 दि० 3 10 94
स्थान	–	सोनागिर सिद्धक्षेत्र जिला दतिया (मध्य प्रदेश)

सराकोद्धारक परम पूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज

जन्म तिथि	–	वैशाख शुक्ल द्वितीया वि०स० 2014 मई 1 सन 1957
जन्म स्थान	–	मुरैना (मध्य प्रदेश)
जन्म नाम	–	श्री उमेश कुमार जैन
पिता का नाम	–	श्री शातिलाल जैन
माता का नाम	-	श्रीमती अशर्फी जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	–	सन् 1974
क्षुल्लक दीक्षा	–	सोनागिर जी 5 11 1976
क्षु दीक्षोपरान्त नाम	–	क्षु० श्री गुणसागर जी
क्षुल्लक दीक्षा गुरु	–	आचार्य श्री सुमतिसागर जी महाराज
मुनि दीक्षा	–	सोनागिर जी महावीर जयन्ती 31 3 1988
मुनि दीक्षोपरान्त नाम	–	मुनि श्री ज्ञानसागर जी
दीक्षा गुरु	–	आचार्य श्री सुमतिसागर जी महाराज
उपाध्याय पद	–	सरधना 30 1 1989

दिगम्बर जैन मदिर, कृष्णा नगर, शाहदरा
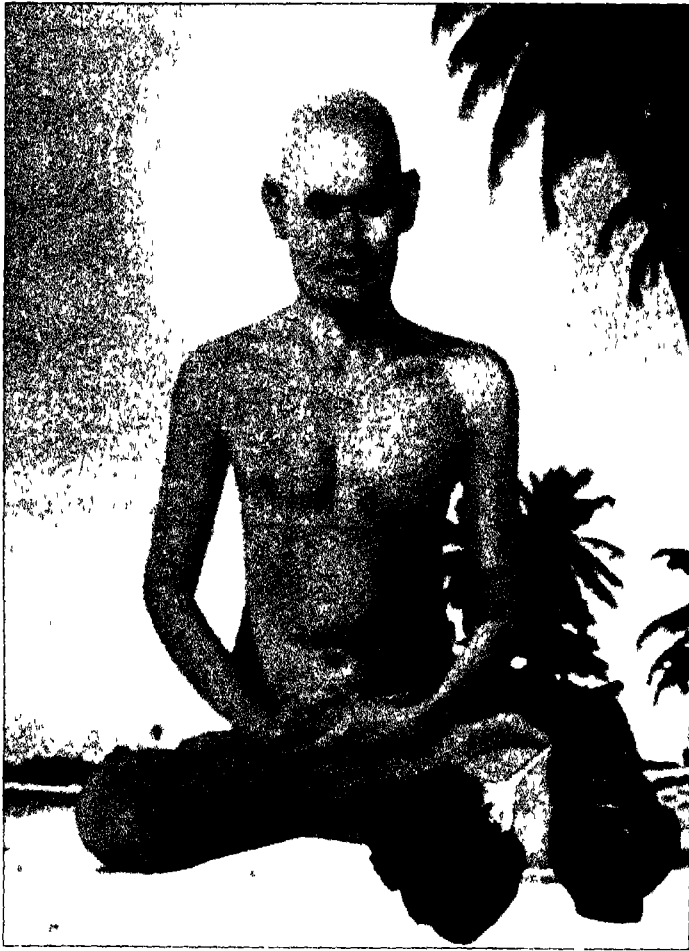
बाल ब्रह्मचारी, प्रशान्त मूर्ति आचार्य
108 श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी)

परम पूज्य आचार्य 108 श्री सूर्यसागर जी महाराज
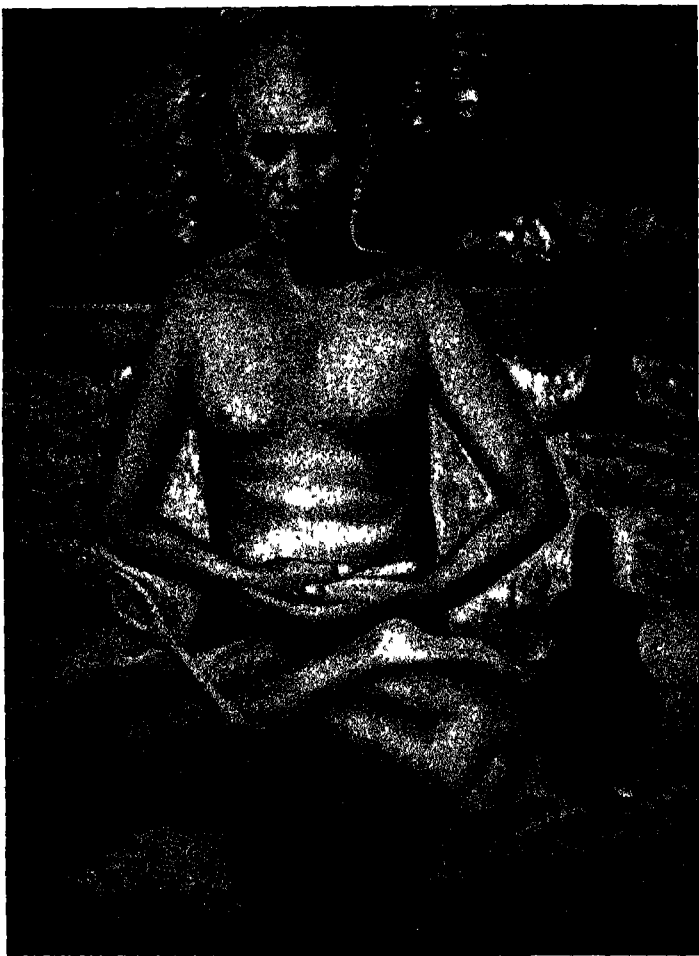
परम पूज्य आचार्य 108 श्री विजयसागर जी महाराज

परम पूज्य आचार्य 108 श्री विमलसागर जी महाराज
(भिण्ड वाले)
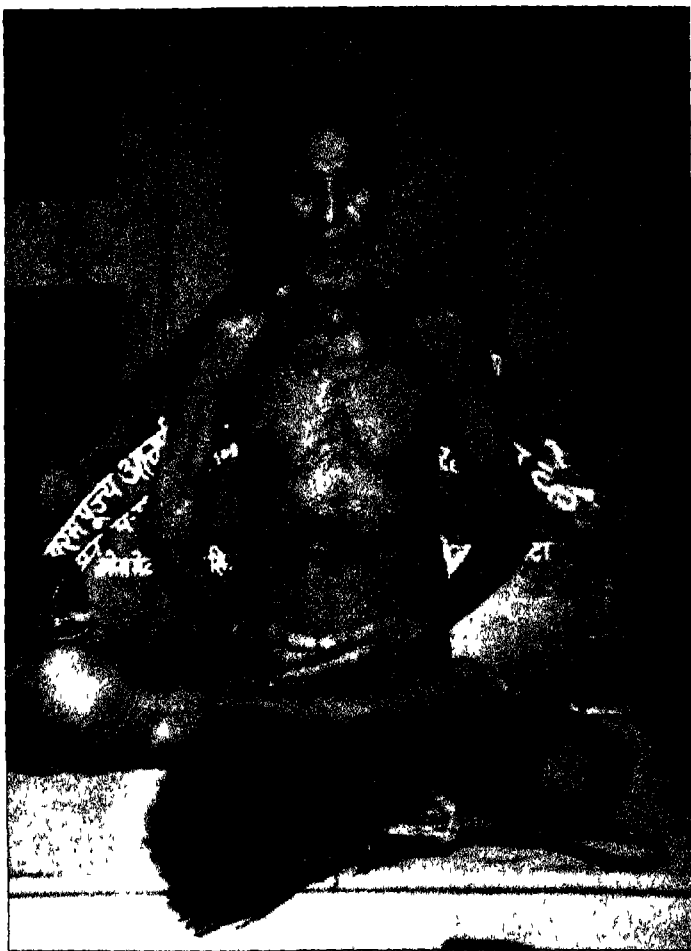
मासोपवासी समाधिसम्राट परम पूज्य आचार्य
108 श्री सुमतिसागर जी महाराज

सराकोद्धारक परम पूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज

आचार्य शान्तिसागर (छाणी) और उनकी परम्परा

बीसवीं सदी में दिगम्बर जैन मुनि परम्परा कुछ अवरूद्ध सी हो गई थी, विशेषत उत्तर भारत में। शास्त्रों में मुनि-महाराजो के जिस स्वरूप का अध्ययन करते थे, उसका दर्शन असम्भव सा था। इस असम्भव को दो महान आचार्यो ने सम्भव बनाया, दोनों सूर्यों का उदय लगभग समकालिक हुआ, जिनकी परम्परा से आज हम मुनिराजों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करते हैं और अपने मनुष्य जन्म को धन्य मानते हैं।

ये दो आचार्य हैं चारित्रचक्रवर्ती आचार्य 108 श्री शान्तिसागर महाराज (दक्षिण) और प्रशान्तमूर्ति आचार्य 108 श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी)। कैसा सयोग है कि दोनों ही शान्ति के सागर हैं। दोनो ही आचार्यो ने भारतभर मे मुनि धर्म व मुनि परम्परा को वृद्धिगत किया। दोनो आचार्यों मे परस्पर में अत्यधिक मेल था, यहाँ तक कि ब्यावर (राजस्थान) मे दोनों का ससघ एक साथ चातुर्मास हुआ था।

प्रशान्तमूर्ति आचार्य शान्ति सागर जी का जन्म कार्तिक बदी एकादशी वि॰स॰ 1945 (सन् 1888) को ग्राम छाणी जिला उदयपुर (राजस्थान) मे हुआ था, पर सम्पूर्ण भारत मे परिभ्रमण कर भव्य जीवा को उपदेश देते हुए सम्पूर्ण भारतवर्ष, विशेषत उत्तर भारत को इन्होने अपना भ्रमण क्षेत्र बनाया। उनके बचपन का नाम केवलदास था, जिसे उन्होने वास्तव में अन्वयार्थक (केवल अद्वितीय, अनोखा, अकेला) बना दिया। वि॰स॰ 1979 (सन् 1922) मे गढी, जिला बाँसवाड़ा (राजस्थान) में क्षुल्लक दीक्षा एव भाद्र शुक्ला 14 सवत 1980 (सन् 1923) सागवाड़ा (राजस्थान) में मुनि दीक्षा तदुपरान्त वि॰स॰ 1983 (सन् 1926) में गिरीडीह (बिहार प्रान्त) में आचार्य पद प्राप्त किया। दीक्षोपरान्त आचार्य महाराज ने अनेकत बिहार किया। वे प्रभावशाली व्यक्तित्त्व के धनी थे। उन्होंने समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने में कोई कसर नहीं उठा रखी थी। मृत्यु के बाद छाती पीटने की प्रथा, दहेज प्रथा, बलि प्रथा आदि का उन्होंने डटकर विरोध किया। छाणी के जमींदार ने तो उनके अहिसा व्याख्यान से प्रभावित होकर अपने राज्य में सदैव के लिए हिसा का निषेध करा दिया था और अहिसा धर्म अगीकार कर लिया था।

आचार्य पर घोर उपसर्ग हुए, जिन्हें उन्होंने समताभाव से सहा। उन्होंने 'मूलाराधना', 'आगमदर्पण', 'शान्तिशतक', 'शान्ती सुधसागर' आदि ग्रन्थों का सकलन/प्रणयन किया, जिन्हें समाज ने प्रकाशित कराया, जिससे आज हमारी श्रुत परम्परा सुरक्षित और वृद्धिगत है। ज्येष्ठ बदी दशमी वि॰स॰ 2001(सन् 1944) सागवाड़ा (राजस्थान) में आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) का समाधिमरण हुआ।

इनके अनेक शिष्य हुए, जिनमें आचार्य सूर्यसागर जी बहुश्रुत विद्वान थे। आचार्य सूर्यसागर जी का जन्म कार्तिक शुक्ला नवमी वि॰स॰ 1940 (सन् 1883) मे प्रेमसर, जिला ग्वालियर (म॰प्र॰) में हुआ था। वि॰स॰ 1981 (सन् 1924) मे ऐलक दीक्षा इन्दौर में, तत्पश्चात 51 दिन बाद मुनि दीक्षा हाट पिपल्या जिला मालवा (म॰प्र॰) मे आचार्य शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) से प्राप्त की। दिगम्बर जैन परम्परा से जैन साहित्य को सुदृढ एव स्थायी बना सके हैं। आचार्य सूर्यसागर जी उनमें से एक थे। उन्होंने लगभग 35 ग्रन्थो का सकलन/प्रणयन किया और समाज ने उन्हे प्रकाशित कराया। 'सयमप्रकाश' उनका अद्वितीय वृहत ग्रन्थ है, जिसके दो भागो (दस किरणो) मे श्रमण और श्रावक के कर्तव्यो का विस्तार से विवेचन है। सयमप्रकाश सचमुच मे सयम का प्रकाश करने वाला है, चाहे श्रावक का सयम हो चाहे श्रमण का। वि॰स॰ 2001 (14 जुलाई 1952) में डालमिया नगर (बिहार) में उनका समाधिमरण हुआ।

परम्परा के तीसरे आचार्य 108 श्री विजयसागर जी महाराज का जन्म वि॰स॰ 1938 माघ सुदी 8 गुरूवार (सन् 1881) मे सिरोली (म॰प्र॰) मे हुआ था। इन्होने इटावा (उ॰प्र॰) में क्षुल्लक दीक्षा एव मथुरा (उ॰प्र॰) मे ऐलक दीक्षा ग्रहण की थी तथा मारोठ (राजस्थान) मे आचार्य श्री सूर्यसागर जी से मुनि दीक्षा ली थी। आचार्य सूर्यसागर जी का आचार्य पद पूज्य मुनि श्री विजयसागर महाराज को लश्कर में दिया गया था। आचार्य विजयसागर जी महाराज परम तपस्वी वचनसिद्ध आचार्य थे। कहा जाता है कि एक गाव मे खारे पानी का कुआ था, लोगो ने आचार्य श्री से कहा कि हम सभी ग्रामवासियों को खारा पानी पीना पडता है, आचार्य श्री ने सहज रूप से कहा, "देखो पानी खारा नहीं मीठा है", उसी समय कुछ लोग कुए पर गये और आश्चर्य पानी खारा नहीं मीठा था। आपके ऊपर उपसर्ग आये, जिन्हे आपने शान्तीभाव से सहा, आपका समाधि मरण वि॰स॰ 2019 (20 दिसम्बर 1962) मे मुरार (ग्वालियर) मे हुआ।

आचार्य विजयसागर जी के शिष्यो में आचार्य विमलसागर जी सुयोग्य शिष्य हुए। आचार्य विमल सागर जी का जन्म पौष बदी शुक्ला द्वितीया वि॰स॰ 1948 (सन् 1891) में ग्राम माहिनो, जिला मण्डला (म॰प्र॰) में हुआ था। आपने क्षुल्लक दीक्षा एव मुनि दीक्षा (वि॰स॰ 2000 मे) आचार्य श्री विजयसागर जी महाराज से ग्रहण की। आप प्रतिभाशाली आचार्य थे। आपके सदुपदेश से अनेकों जिनालयों का निर्माण और जिनबिम्बो की प्रतिष्ठा हुई। आपके सान्निध्य मे अनेक पचकल्याणक प्रतिष्ठाए व गजरथ महोत्सव सम्पन्न हुए। भिण्ड नगर को आपकी विशेष देन है। आपका जन्म मोहना (म॰प्र॰) मे तथा पालन-पोषण पीरोठ मे हुआ, अत आप 'पीरोठवाले महाराज' साथ ही भिण्ड नगर मे अनेक जिनबिम्बों की स्थापना कराने के कारण 'भिण्ड वाले महाराज' के नाम से विख्यात रहे हैं। आचार्य विजयसागर जी ने अपना आचार्य पद विमलसागर जी महाराज (भिण्ड) को सन् 1973 मे हाडौती जिले में दिया।

आचार्य विमलसागर जी ने अनेक दीक्षाए दी उनके शिष्यों में आचार्य सुमतिसागर जी, आचार्य निर्मल सागर जी, आचार्य कुन्थुसागर जी, मुनि ज्ञानसागर जी आदि अतिप्रसिद्ध हैं। आचार्य विमलसागर जी महाराज ने अपना आचार्य पद ब्र॰ ईश्वरलाल जी के हाथ पत्रा द्वारा सुमतिसागर जी को दिया था। आचार्य विमलसागर जी महाराज का समाधिमरण 13 अप्रैल 1973 (वि॰स॰ 2030) में सागोद, जिला कोटा (राजस्थान) मे हुआ था।

आचार्य शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) परम्परा के पाचवे आचार्य श्री सुमति सागर जी महाराज का जन्म वि॰स॰ 1974 (सन् 1917) आसोज शुक्ला चतुर्थी को ग्राम श्यामपुरा जिला मुरैना (म॰प्र॰) में हुआ था। आपने ऐलक दीक्षा वि॰स॰ 2025 चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को रेवाडी (हरियाणा) मे मुनि दीक्षा वि॰स॰ 2025 अगहन बदी द्वादशी (सन् 1968) में गाजियाबाद (उ॰प्र॰) में ग्रहण की। आचार्य सुमतिसागर जी कठोर तपस्वी और आर्षमार्गानुयायी थे। आपने अनेक कष्टो और आपदायों को सहने के बाद दिगम्बरी दीक्षा धरण की थी। आपके जीवन मे अनेक उपसर्ग और चमत्कार हुए। पडित मक्खनलाल जी मुरैना जैसे अद्भुत विद्वानो का ससर्ग आपको मिला। आप मासोपवासी कहे जाते थे। आपके उपदेश से अनेक आर्षमार्गानुयायी ग्रन्थो का प्रकाशन हुआ। सोनागिर स्थित त्यागी व्रती आश्रम आपकी कीर्तिपताका पफहरा रहा है। आपने शताधिक दीक्षाए अब तक प्रदान की थी। आपके प्रसिद्ध शिष्यो म उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज प्रमुख है। ऐसे आचार्यों, उपाध्यायो, मुनिवरो, गुरुवरो को शत्-शत् नमन, शत्-शत् वन्दन।

सन् 1958 ई॰ मे मध्य प्रदेश के मुरैना शहर मे उपाध्याय जी का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम श्री शान्तिलाल जी एव माता का नाम श्रीमती अशर्फी है। इनके बचपन का नाम उमेश कुमार था। इनके दो भाई और बहने है। भाइयों का नाम श्री राकेश कुमार एव प्रदीप कुमार है तथा बहनों के नाम सुश्री मीना एव अनिता है। आपने 5 11 1976 को सिद्धक्षेत्र सोनागिर जी मे आचार्य श्री सुमतिसागर जी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की थी तथा आपको क्षुल्लक गुणसागर नाम मिला था। 12 वर्षो तक निर्दोष क्षुल्लक की चर्या पालने के बाद आपको आचार्य श्री सुमतिसागर जी महाराज ने 31 3 88 को सोनागिर सिद्धक्षेत्र में मुनि दीक्षा देकर श्री ज्ञानसागर जी महाराज नाम से अलकृत किया। सरधना में 30-1-89 को आपको उपाध्याय पद प्रदान किया गया। उपाध्यायश्री के चरण-कमल जहा पडते हैं वहां जगल मे मगल चरितार्थ हो जाता है।

उमेश से उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज सफरनामा एक अनेकान्तिक साधक का

एकान्त, एकाग्र और सयंमी जीवन की विलक्षण मानवीय प्रतीति बन कर एक संकल्पशील के रूप में उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज जब लोक जीवन में अवतरित हुए तो यह धरती उद्भासित हो गयी उनकी तपस्या की प्रभा और त्याग की क्राँति से। त्याग, तितिक्षा और वैराग्य की सांस्कृतिक धरोहर के धनी तीर्थंकरों की श्रृंखला को पल्लवित और पुष्पित करती दिगम्बर मनि परम्परा की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली कड़ी के रूप में पूज्य उपाध्याय श्री ने अपने आभामण्डल से समग्र मानवीय चेतना को एक अभिनव संदृष्टि दी है और संवाद की नई वर्णमाला की रचना करते हुए उन मानवीय आख्यों की संस्थापना की है जिनमें एक तपस्वी के विवेक, एक योगी के सयम और युगचेतना की क्रान्तिदर्शी दृष्टि की त्रिवेणी कासमवा है। गुरुदेव की उपदेश-वाणी प्रत्येक मनुष्य का झंकृत करसही है क्योंकि वह अन्त:स्फूर्त है और है सहज तथा सामान्य - ऊहापोह से मुक्त, सहजग्राह्य और बोधगम्य जो मनुष्य को ज्ञान और पाण्डित्य के अहंकार से मुक्त कर मानवीय सद्भाव का पर्याय बनाने में सतत् प्रवृत्त है। यह वाणी वर्गोदय के विरूद्ध एक ऐसी वैचारिक क्रान्ति है जहाँ सभी के विकास के पूर्ण अवसर है, बन्धनों से मुक्ति का अह्वान है, जीवन समभाव है, जाति-समभाव है जो निरन्तर दीपित हो रही हैउनकी जगकल्याणी और जनकल्याणी दीप्ति से।

चम्बल के पारदर्शी नीर और उसकी गहराई ने मुरैना में वि.सं 2014 वैशाख सुदी दोयज को जन्मे बालक उमेश को पिच्छि कमण्डलु की मैत्री के साथ अपने बचपन की उस बुनियाद को मजबूत कराया जिसने उसे निवृत्ति मार्ग का सहज, पर समर्पित पथिक बना दिया। शहर में आने वाले हर साधु-साध्वी के प्रति बचपन से विकसित हुए अनुराग ने माता अशर्फी बाई और पिता शान्तिलाल को तो हर पल सशंकित किया पर बालक उमेश का आध्यात्मिक अनुराग प्रतिक्षण पल्लवित एवं पुष्पित होता गया और इसकी परिणति हुई सन् 1974 में उस प्रतीक्षित फैसले से जब किशोर उमेश ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया, दो वर्षों बाद पांच नवम्बर उन्नीस सौ छिहत्तर को ब्रह्मचारी उमेश ने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की आ. श्री

सुमतिसागर जी से। उमेश से रूपान्तरित हुए क्षुललक गुणसागर ने बारह वर्षों तक पं पन्नालाल जी साहित्याचार्य, प लक्ष्मीकान्त जी झा, पं. बलभद्र जी पाठक, पं. जीवनलाल जी अग्निहोत्री आदि विद्वानों की सान्निधि में न्याय, व्याकरण एवं सिद्धान्त के अनेक ग्रन्थों का चिन्तन-मनन भी सफलतापूर्वक किया।

क्षुल्लक गुणसागर जी की साधना यात्रा ललितपुर, सागर तथा जबलपुर में इस युग के महान सन्त पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी की पावन सान्निधि के मध्य धवला की तत्त्व सम्पदा के सागर में अवगाहन करने में समर्पित हुई। दार्शनिक अवधारणों की पौर्वात्य पृष्ठभूमि की गहरी समझ के साथ-साथ क्षुल्लक जी ने पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों को भी आत्मसात् किया एव भाषा तथा साहित्य के ग्रन्थों का भी अध्ययन किया ताकि अपने चिन्तन का नवनीत जनमानस के सम्मुख आसान और बोधगम्य भाषा मे वस्तुपरकता के साथ पहुँचाया जा सके। क्षुल्लक जी का निस्पृही, विद्यानुरागी मन जैन दर्शन के गूढ़ रहस्यों के सन्धान में रत रहा और प्रारम्भ हुआ संवाद का एक नया चरण। चाहे चंदेरी की सिद्धान्त-वाचना हो या ललितपुर की न्याय-विद्या-वाचना या मुंगावली की विद्वत्संगोष्ठी या फिर खनियांधाना की सिद्धान्त-वाचना, प्राचीन अवधारणाओ के नये और सरल अर्थ प्रतिपादित हुए, परिभाषित हुए और हुए संप्रेषित भी जन-जन तक। यह तो प्रज्ञान का प्रभाषित होता वह पक्ष था, जिसकी रोशनी से दिग्-दिगन्त आलोकित हो रहा था। पर दूसरा-तीसरा चौथा.. न जाने और कितने पथ/आयाम, साथ-साथ चेतना की ऊर्ध्वगामिता के साथ जुड़ रहे थे, साधक की प्रयोग धर्मिता को ऊर्जस्विता कर रहे थे - शायद साध क भी अनजान था अपने आत्म-पुरूषार्थी प्रक्रम से। चाहे सघस्थ मुनियों, क्षुल्लकों, ऐलको की वैयावृत्ति का वात्सल्य पक्ष हो या तपश्चरण की कठिन और बहुआयामी साधना, क्षुल्लक गुणसागर की आत्म-शोधन-यात्रा अपनी पूर्ण तेजस्विता के साथ अग्रसर रही, अपने उत्कर्ष की तलाश में।

महावीर जयन्ती के पावन प्रसंग पर इकत्तीस मार्च उन्नीस सौ अठासी को क्षुल्लक श्री ने आचार्य श्री सुमतिसागर जी महाराज से सोनागिर सिद्धक्षेत्र (दतिया म.प्र.) में मुनि धर्म की दीक्षा ग्रहण की और तब आविर्भाव हुआ उस युवा, क्रान्तिदृष्टा तपस्वी का जिसे मुनि ज्ञानासागर के रूप में युग ने पहचाना और उनका गुणानुवाद किया।

साधना के निर्ग्रन्थ रूप मे प्रतिष्ठित इस दिगम्बर मुनि ने जहाँ आत्म-शोधन के अनेक प्रयोग किए, साधना के नये मानदण्ड संस्थापित किए, उदात्त

चिन्तन की ऊर्जस्वी धारा को प्रवाह मानकर तत्वज्ञान को नूतन व्याख्याओं से समृद्ध किया वहीं पर अपनी करूणा, आत्मीयता और संवेगशीलता को जन-जन तक विस्तीर्ण कर भगवान महावीर की "सत्वेषु मैत्री" की अवधारणा को पुष्पित, पल्लवित और संवर्द्धित भी किया। मध्यप्रदेश की प्रज्ञान-स्थली सागर में मुनिराज का प्रथम चातुर्मास, तपश्चर्या की कर्मस्थली बना और यहीं से शुरू हुआ आध्यात्मिक अन्तर्यात्रा का वह अर्थ जिसने प्रत्येक कालखण्ड में नये-नये अर्थ गढ़े और संवेदनाओं की समझ को साधना की शैली में अन्तर्लीन कर तात्विक परिष्कार के नव-बिम्बों के सतरंगी इन्द्रधनुष को आध्यात्मिक क्षितिज पर प्रतिष्ठित किया।

आगामी वर्षो में मुनि ज्ञानसागर जी ने जिनवाणी के आराधको से स्थापित किया एक सार्थक संवाद ताकि आगम-ग्रन्थों मे निबद्ध रहस्यों को सामान्य जनों तक बोधगम्य भाषा और शैली में सम्प्रेषित किया जा सके। सरधना, शाहपुर, खेकडा, गया, रांची, अम्बिकापुर, बडागांव, दिल्ली, मेरठ, अलवर, तिजारा, मथुरा आदि स्थानों पर विद्वत्-संगोष्ठियों के आयोजनों ने बहुत से अनुत्तरित प्रश्नों के जहां एक ओर उत्तर खोजे वही दूसरी ओर शोध एवं समीक्षा के लिए नये सन्दर्भ भी परिभाषित किये। अनुपलब्ध ग्रन्थो के पुनर्प्रकाशन की समस्या को इस ज्ञान-पिपासु ने समझा परखा और सराहा। इस क्षेत्र में गहन अभिरूचि के कारण सर्वप्रथम बहुश्रुत श्रमण परम्परा के अनुपलब्ध प्रामाणिक शोध-ग्रन्थ स्व. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री द्वारा सर्जित साहित्य सम्पदा, "तीर्थकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा" (चारों भाग) के पुनर्प्रकाशन की प्रेरणा की, जिसे सुधी श्रावको ने अत्यल्प समयावधि मे परिपूर्ण भी किया।

पुनर्प्रकाशन यह अनुष्ठान श्रमण-परम्परा पर काल के प्रभाव से पडी धूल को हटा कर उन रत्नों को जिनवाणी के साधकों के सम्मुख ला रहा है जो विस्मृत से हो रहे थे। पूज्य गुरूदेव की मगल प्रेरणा से प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर (उ प्र.) के अवधान में पाचास से अधिक ग्रन्थों का प्रकाशन/पुनर्प्रकाशन, लगभग चार वर्षो की अल्पावधि में हुआ है, जिसमें तिलोयपण्णती, जैनशासन, जैनधर्म आदि अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस क्रम को गति देते हुए पूज्य उपाध्याय श्री ने आधुनिक कालखण्ड मे भुला दिये गये सतों एव विद्वानों के कृतित्व से समाज को परिचित कराने का भी गुरूकार्य किया है, जिसकी परिणति स्वरूप आचार्य शान्तिसागर छाणी स्मृति ग्रन्थ है, जिसके प्रकाशन से एक ओर विस्मृत से हो रहे उस अत्यन्त पुरातन साधक से समाज का परिचय हुआ, जिसने सम्पूर्ण भारत मे दिगम्बर श्रमण परम्परा को उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध मे अभिवृद्धि करने

का गुरू-कार्य किया था, तो दूसरी ओर उनकी समृद्ध एवं यशस्वी शिष्य परम्परा से भी समाज को रू-बरू कराया। सुप्रसिद्ध जैनदर्शन-विद स्व. पं. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य की स्मृति में एक विशाल स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन की प्रेरणा कर मात्र एक जिनवाणी-आराधक का गुणानुवाद ही नही हुआ, प्रत्युत नयी पीढ़ी को उस महान साधक के अवदानों से परिचित भी कराने का अनुष्ठान पूर्ण हुआ। इस श्रृंखला में स्व डॉ. हीरालाल जी जैन, स्व. डॉ. ए.एन. उपाध्ये आदि विश्रुत विद्वानों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोधपरक संगोष्ठियों की आयोजना के प्रस्तावों को पूज्य श्री ने एक ओर अपना मंगल आशीर्वाद दिया है दूसरी ओर जैन पुरातत्व के गौरवशाली पन्नों पर प्राचीन भारतीय इतिहासवेत्ताओं एवं पुरातत्त्वविदों को कंकाली टीले, मथुरा और कुतुबमीनार के अनबूझ रहस्यों की परतों को कुरेदने और उसकी वैभव सम्पदा से वर्तमान का परिचय कराने जैसा ऐतिहासिक कार्य भी पूज्य गुरुवर के मंगल आशीर्वाद से ही सभव हो सका है।

इस तपःपूत ने वैचारिक क्रान्ति का उद्घोष किया है इस आशा और विश्वास के साथ कि आम आदमी के समीप पहुँचने के लिए उसे उसकी प्रतिदिन की समस्याओ से मुक्ति दिलाने के उपाय भी संस्तुति करने होगे। तनावो से मुक्ति कैसे हो, व्यसन मुक्त जीवन कैसे जिए, पारिवारिक सम्बन्धो में सौहार्द कैसे स्थापित हो तथा शाकाहार को जीवन-शैली के रूप मे कैसे प्रतिष्ठापित किया जाय, आदि यक्ष प्रश्नों को बुद्धिजीवियों, प्रशासको, पत्रकारो, अधिवक्ताओ, शासकीय, अर्द्ध-शासकीय एवं निजी क्षेत्रो के कर्मचारियो व अधिकारियो, व्यवसायियो, छात्रो-छात्राओं आदि के साथ परिचर्चाओं, कार्यशालाओ, गोष्ठियों के माध्यम से उत्तरित कराने के लिए एक ओर एक रचनात्मक सवाद स्थापित किया तो दूसरी ओर श्रमण संस्कृति के नियामक तत्वो एव अस्मिता के मानदण्डों से जन-जन को दीक्षित कर उन्हे जैनत्व की उस जीवन शैली से भी परिचित कराया जो उनके जीवन की प्रामाणिकता को सर्वसाधारण के मध्य सस्थापित करती है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की अनुभव सम्पन्न प्रज्ञान सम्पदा को, गुरुवर ने आपदमस्तक झिझोड़ा है, जिसकी अद्यतन प्रस्तुति अतिशय क्षेत्र तिजारा में आयोजित जैन चिकित्सकों की विशाल संगोष्ठी थी जिसमें भारत के सुदूरवर्ती प्रदेशों से आये साधर्मी चिकित्सक बन्धुओ ने अहिसक चिकित्सा पद्धति के लिये एक कारगर कार्ययोजना को ठोस रूप दिया और सम्पूर्ण मानवता की प्रेमपूर्ण सेवा के लिये पूज्य श्री की सन्निधि में अपनी वचनबद्धता को रेखांकित किया, जो श्लाघ्य है स्तुत्य है।

पूज्य श्री ने समाज को एक युगान्तर बोध कराया-भूले बिसरे सराक भाइयों को समाज की मुख्य-धारा में जोड़कर सराक भाइयों के बीच अरण्यों में चातुर्मास कर उनके साथ संवाद स्थापित किया, उनकी समस्याओं को समझा-परखा और समाज का आह्वान किया, उनको अपनाने के लिये। पूज्य श्री की प्रेरणा से सराकोत्थान का एक नया युग प्रारम्भ हुआ है जिसके कुछ प्रतीक है उस क्षेत्र में निर्मित हो रहे नये जिनालय तथा सराक केन्द्र एवं औषाधालय आदि जहाँ धार्मिक तथा लौकिक शिक्षण की व्यवस्था की जा रही है।

इस आदर्श तपस्वी और महान विचारक के द्वारा धर्म के वास्तविक स्वरूप की प्रतिष्ठा एवं रूढ़ियों के समापन में सुन्नद्ध सत्य की शाश्वतता के अनुसंधित्सुओं/जिज्ञासुओं के प्रति अनुराग के प्रति सभी नतमस्तक हैं। जिनवाणी के आराधकों को उनके कृतित्व के आधार पर प्रतिवर्ष श्रुत संवर्द्धन सस्थान के अवधान मे सम्मानित करने की योजना का क्रियान्वयन पूज्य उपाध्याय श्री के मंगल आर्शीवाद एवं प्रेरणा से सम्भव हो सका है। यह संस्थान प्रतिवर्ष श्रमण परम्परा के विभिन्न आयामों में किये गये उत्कृष्ट कार्यों के लिये पांच वरिष्ठ जैन विद्वानों को इकतीस हजार रूपयों की राशि से सम्मानित कर रहा है। सस्थान के उक्त प्रयासों की भूरि-भूरि सराहना करते हुए बिहार के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्री सुन्दरसिंह जी भण्डारी ने तिजारा में पुरस्कार समारोह के मुख्य अतिथि के रूप में अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा था कि विलुप्त हो रही श्रमण परम्परा के साधकों के प्रज्ञान गुणानुवाद की आवश्यकता को इस तपोनिष्ठ साधक ने पहचान कर तीर्थंकर महावीर की देशना को गौरवमण्डित करने में महायज्ञ में जो अपनी समिधा अर्पित की है वह इस देश के सांस्कृतिक इतिहास का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रेरक प्रसंग है, जिसके प्रति युगों-युगो तक इस देश की बौद्धिक परम्परा ऋणी रहेगी। गुणानुवाद के प्रतिष्ठापन के इस प्रक्रम को अधिक सामयिक बनाने के उद्देश्य से श्रमण परम्परा के चतुर्दिक विकास में सम्पूर्णता में किये गये अवदानों के राष्ट्रीय स्तर पर किय गये आकलन के आधार पर एक लाख रूपयों की राशि के पुरस्कार का आयोजन इक्कीसवीं सदी की सम्भवत: पहली रचनात्मक श्रमण घटना होगी। पूज्य गुरूदेव का मानना है कि प्रतिभा और संस्कार के बीजों को प्रारम्भ से ही पहचान कर संवर्द्धित किया जाना इस युग की आवश्यकता है। इस सुविचार को राँची से प्रतिभा सम्मान समारोह के माध्यम से विकसित किया गया जिसमें प्रत्येक वय के समस्त प्रतिभाशाली छात्र-छात्राओं का सम्मान, बिना किसी जाति/धर्म के भेद-भाव के किया

गया। गुणानुवाद की यह यात्रा गुरुदेव के बिहार से विहार के साथ प्रत्येक ग्राम, जनपद और नगरमें विहार कर रही है और नयी पीढ़ी को विद्यालयों से विश्वविधालयों तक प्रेरित कर रही है, स्फूर्त कर रही है।

परम पूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज वर्तमान युग के एक ऐसे युवा दृष्टा, क्रान्तिकारी विचारक, जीवन-सर्जक और आचारनिष्ठ दिगम्बर संत हैं जिनके जनकल्याणी विचार जीवन की आत्यंतिक गहराइयों, अनुभूतियों एवं साधना की अनन्त ऊंचाइयों तथा आगम प्रामाण्य से उद्भूत हो मानवीय चिन्तन के सहज परिष्कार में सन्नद्ध हैं। पूज्य गुरूदेव के उपदेश हमेशा जीवन-समस्याओं/सन्दर्भों की गहनतम गुत्थियों के मर्म का संस्पर्श करते हैं, जीवन को उनकी समग्रता में जानने और समझने की कला से परिचित कराते हैं। उनके साधनामय तेजस्वी जीवन को शब्दों की परिधि में बाँधना सम्भव नहीं है, हाँ उसमें अवगाहन करने की कोमल अनुभूतियाँ अवश्य शब्दतीत हैं। उनका चिन्तन फलक देश, काल, सम्प्रदाय, जाति, धर्म-सबसे दूर, प्राणिमात्र को समाहित करता है, एक युग बोध देता है, नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा देता है, वैश्विक मानव की अवधारणा को ठोस आधार देता है जहाँ दूर-दूर तक कहीं भी दुरूहता नही है, जो है, वह है, भाव-प्रवणता, सम्प्रेषणीयता और रत्नत्रयों के उत्कर्ष से विकसित हुआ उनका प्रखर तेजोमय व्यक्तित्व, जो बन गया है करूणा, समता और अनेकान्त का एक जीवन्त दस्तावेज।

पूज्य उपाध्याय श्री का जीवन, क्रान्ति का श्लोक है, साधना और मुक्ति का दिव्य छन्द है तथा है मानवीय मूल्यों की वन्दना एवं जन-चेतना के सर्जनात्मक परिष्कार एवं उनके मानसिक सौन्दर्य एवं ऐश्वर्य के विकास का वह भागीरथ प्रयत्न जो स्तुत्य है, वंदनीय है और है जाति, वर्ग, सम्प्रदाय भेद से परे पूरी इन्सानी जमात की बेहतरी एवं उसके बीच "सत्वेषु मैत्री" की संस्थापना को समर्पित एक छोटा, पर बहुत स्थिर और मजबूती भरा कदम। गुरूदेव तो वीतराग साधना पथ के पथिक हैं, निरामय हैं, निर्ग्रन्थ हैं, दर्शन, ज्ञान और आचार की त्रिवेणी हैं। वे क्रान्तिदृष्टा हैं और परिष्कृत चिन्तन के विचारों के प्रणेता हैं। महाव्रतों की साधना में रचे-बसे उपाध्याय श्री की संवेदनाएं मानव मन की गुत्थियों को खोलती हैं और तन्द्रा में डूबे मनुज को आपाद-मस्तक झिंझोड़ने की ताकत रखती हैं। परम पूज्य उपाध्याय श्री के सन्देश युगों-युगों तक सम्पूर्ण मानवता का मार्गदर्शन करें, हमारी प्रमाद-मूर्च्छा को तोड़े, हमें अन्धकार से दूर प्रकाश के उत्स के बीच जाने को मार्ग बताते रहें, हमारी जड़ता की इति कर हमें गतिशील बनाएं, सभ्य, शालीन एवं सुसंस्कृत बनाते रहें, यही हमारे मंगलभाव हैं, हमारे चित्त की अभिव्यक्ति है, हमारी प्रार्थना है।

वर्षायोग

ब्र० उमेश से उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज के वर्षायोग की सूची

1	ब्र० उमेश	जयपुर-राजस्थान	सन् 1973
2	" "	सीकर-राजस्थान	सन् 1974
3	" "	सवाई-माधौपुर राजस्थान	सन् 1975
4	" "	सागर म० प्र०	सन् 1976
5.	क्षु० गुणसागर	सागर म० प्र०	सन् 1977
6	" "	सागर-म० प्र०	सन् 1978
7	" "	अतिशय क्षेत्र सोनागिर-जिला दतिया-म० प्र०	सन् 1979
8	" "	सागर-म० प्र०	सन् 1980
9	" "	ललितपुर-उ० प्र०	सन् 1981
10	" "	ललितपुर-उ० प्र०	सन् 1982
11	" "	अतिशय क्षेत्र चन्देरी-जिला-गुना-म० प्र०	सन् 1983
12	" "	अतिशय क्षेत्र चन्देरी-जिला-गुना-म० प्र०	सन् 1984
13	" "	मुंगावली जिला गुना-म० प्र०	सन् 1985
14.	" "	खनियाधाना जिला शिवपुरी-म० प्र०	सन् 1986
15	" "	थूबोनजी जिला गुना-म० प्र०	सन् 1987
16.	मुनि ज्ञानसागर	सागर-म० प्र०	सन् 1988
17.	" "	अतिशय क्षेत्र बडागाव(खेकडा)-उ० प्र०	सन् 1989
18.	" "	शाहपुर (मुजफ्फर नगर) उ० प्र०	सन् 1990
19	" "	गया - बिहार प्रान्त	सन् 1991
20.	" "	रॉंची - बिहार प्रान्त	सन् 1992
21	" "	सराक क्षेत्र-तड़ाई ग्राम जिला राची-बिहार प्रान्त	सन् 1993
22.	" "	पटेरवार जिला बोकारो-बिहार प्रान्त	सन् 1994

23	"	"	अतिशय क्षेत्र बडागांव(बागपत)-उ० प्र०	सन् 1995
24	"	"	शाहपुर (मुजफ्फरनगर)-उ० प्र०	सन् 1996
25	"	"	सिद्धक्षेत्र चौरासी मथुरा-उ० प्र०	सन् 1997
26	"	"	अतिशय क्षेत्र तिजारा(देहरा) जिला अलवर-राजस्थान	सन् 1998
27	"	"	अजमेर-राजस्थान	सन् 1999
28	"	"	निवाई जिला टोंक-राजस्थान	सन् 2000
29	"	"	महानगर मेरठ-उ० प्र०	सन् 2001
30	"	"	महानगर आगरा-उ० प्र०	सन् 2002
31	"	"	श्री सिद्धक्षेत्र, सोनागिर(म० प्र०)	सन् 2003

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर कृष्णा नगर दिल्ली का इतिहास-एक नजर में

श्री मन्दिर जी का शिलान्यास 28 जनवरी 1972 तथा 10 सितम्बर 1972 को एक अस्थाई कमरा बना कर दो प्रतिमायें श्री महावीर भगवान एवं पार्श्वनाथ भगवान की स्व॰ श्री मित्रसैन जी के सहयोग से बर्फखाना सब्जीमंडी के मन्दिर जी से लाकर अस्थाई विराजमान की गई। उस समय के संस्थापक सदस्य सर्वश्री धर्मवीर जैन, पूरण चन्द्र जैन, अजित प्रसाद जैन, मदन लाल जैन, चन्द्र प्रकाश जैन, सलेख चन्द्र जैन, प्रेमचन्द्र जैन, महीपाल सिंह जैन, सनत कुमार जैन, सुभाष चन्द्र जैन, प्रधुमन कुमार जैन, वीरेन्द्र कुमार जैन, अशोक कुमार जैन, आर॰ के॰ जैन, एवम् राजेन्द्र प्रसाद जैन थे। इनके आर्थिक सहयोग से तथा कर्मठता से चैत्यालय की स्थापना हो पायी। 28 फरवरी 1974 को चैत्यालय में श्री सिद्धचक्र विधान का पाठ आयोजित किया गया जिसका समापन एक चमत्कारिक ढंग से सम्पन्न हुआ। प्रत्यक्षदर्शी इसके साक्षी हैं। इसके पश्चात् भी अनेकों चमत्कार इस क्षेत्र में देखे गये। 12 मई 1974 को नीचे के हाल का शिलान्यास किया गया तथा शिखर बंद श्री मन्दिर जी का निर्माण अनेकों कार्यकर्ताओं तथा अनेकों बंधुओं के आर्थिक सहयोग से सम्पन्न हुआ। 14 फरवरी से 19 फरवरी 1980 को वेदी प्रतिष्ठा के माध्यम से श्री महावीर भगवान की अतिशयमयी प्रतिमा मूल नायक के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी। पहली मंजिल पर स्थाई वेदी में भगवान विराजमान होने पर दर्शनार्थीयों का तांता लग गया। पहली मंजिल के हाल में कांच का काम भी करा दिया गया जिससे वह कांच का मन्दिर कहलाने लगा। समाज के बुजुर्गों को ध्यान में रखते हुये नीचे के हाल में छोटी वेदी का निर्माण करा दिया गया तथा पंच कल्याणक मार्च 1995 में उपाध्याय श्री गुप्तिसागर जी महाराज के सान्निध्य में कराया

गया जिसे प॰ गुलाब चन्द्र 'पुष्प' के द्वारा विधि विधान से सम्पन्न कराया। इसी बीच श्री मन्दिर जी के बराबर में एक अतिथि भवन का निर्माण भी हो चुका था। यह भवन बहुत छोटा था इस कारण से बराबर में समाज ने और जगह लेकर तीन मंजिल का अतिथि भवन जिसमें 10-10 कमरे सुव्यवस्थित ढंग से बनाये गये। जिसके बनाने में समाज के प्रधान तथा कर्मठ कार्यकर्ता श्री महेन्द्र कुमार जी का विशेष योगदान रहा। मैं संस्थापक सदस्य से लेकर आज तक श्री मन्दिर जी की सभी गतिविधियों में सक्रिय रूप से जुड़ा रहा। इस प्रकार से यमुनापार में कृष्णा नगर दिगम्बर जैन मंदिर का एक विशेष स्थान है।

श्री मन्दिर जी के चमत्कार का ही प्रभाव था कि श्री मन्दिर जी की दो प्रतिमायें कृष्णा नगर मन्दिर से चोरी हो गयी थी जो चमत्कारिक ढंग से बरामद हो गई यहाँ पर करीब पचास-साठ पुजारी प्रतिदिन पूजा करते हैं तथा अनेकों विधान समय-समय पर किये जाते है।

भवदीय

चन्द्रप्रकाश जैन

महामन्त्री जैन समाज

कृष्णा नगर

नोट : परम पूज्य उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागरजी महाराज की प्रेरणा से कृष्णा नगर जैन समाज की ओर से यह शास्त्र छपवा कर भेंट किया।

वर्तमान कृष्णा नगर जैन समाज कार्यकारिणी

1.	श्री महेन्द्र कुमार जैन	प्रधान
2.	श्री विनय कुमार जैन	उपप्रधान
3.	श्री नरेन्द्र कुमार जैन	उपप्रधान
4.	श्री चन्द्र प्रकाश जैन	मंत्री
5.	श्री जे.के. जैन	उपमंत्री
6	श्री अनिल कुमार जैन	कोषाध्यक्ष
7.	श्री अरहंत कुमार जैन	प्रबंधक
8.	श्री सुभाष चन्द्र जैन	सदस्य
9.	श्री किशोर जैन	सदस्य
10	श्री महेश चन्द्र जैन	सदस्य
11.	श्री सुरेश चन्द्र जैन (साड़ी वाले)	सदस्य
12.	श्री राजेश कुमार जैन	सदस्य
13.	श्री मदन सैन (आ. नगर)	सदस्य
14.	श्री मदन सैन (राधे पुरी)	सदस्य
15.	श्री अशोक कुमार जैन	सदस्य
16.	श्री वीर सैन जैन	सदस्य
17.	श्री रमेश चन्द्र जैन	सदस्य
18.	श्री प्रवीण कुमार जैन	सदस्य
19.	श्री राकेश कुमार जैन	सदस्य
20.	श्री सुनील कुमार जैन	सदस्य
21.	श्री शील चन्द्र जैन	सदस्य

सम्पादकीय

जैन जगत् के अद्वितीय विद्वान्, भाष्यकार, कविहृदय स्व. पं जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' की स्मृति में तिजारा (अलवर) में ई. सन् 1998 में एक विद्वत् संगोष्ठी पूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज के पावन सान्निध्य में सम्पन्न हुई थी। संगोष्ठी का विषय था-"पं जुगलकिशोर मुख्तार व्यक्तित्व एव कृतित्व"। संगोष्ठी में देश के विभिन्न राज्यो के विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों एवं महाविद्यालयों के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों ने भाग लिया और मुख्तार सा. के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व के विभिन्न पक्षों पर शोध निबन्ध प्रस्तुत किये। उन्हीं शोध-निबन्धो को संकलित/सपादित करके "पण्डित जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर' व्यक्तित्व एव कृत्तित्व" के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

ग्रन्थ में प्रस्तुत सामग्री को तीन भागों मे विभाजित किया गया है- (1) संस्मरण एवं व्यक्तित्व, (2) कृतित्व : काव्य-समीक्षा और (3) कृत्तित्व : साहित्य-समीक्षा।

प्रथम भाग में दो संस्कृत कविताएँ एव ग्यारह निबन्ध हैं, मुख्तार सा के साथ सरसावा में लम्बे समय तक रहकर 'वीर सेवा मन्दिर' (समन्तभद्राश्रम) के अनुसन्धान कार्यों में सहयोग करने वाले वयोवृद्ध विद्वान् श्री कुन्दनलाल जैन का निबन्ध विविध प्रकार के ऐतिहासिक मशाले से ओत-प्रोत है। अन्य. निबन्धो का भी अपना वैशिष्ट्य है।

दूसरे भाग में मुख्तार साहब द्वारा सन् 1901 से 1956 के बीच धार्मिक, आध्यात्मिक एवं समसामयिक विषयों पर रची गई विभिन्न कविताओं पर समीक्षात्मक दृष्टि से प्रस्तुत दस आलेख है। युगवीर की "मेरी भावना" को जैन समाज का बच्चा-बच्चा गाता/गुनगुनाता है, उनकी लोकप्रियता इसी से स्पष्ट है। केवल "मेरी भावना" पर ही पाँच निबन्ध लिखे गये हैं। युगवीर

की "मेरी भावना" प्रत्येक जैन धर्मानुयायी की भावना है, मेरी भावना है। इसमें सम्पूर्ण जैन धर्म का सार भरा हुआ है।

तीसरे भाग में युगवीर की रचनाओं का समीक्षात्मक मूल्यांङ्कन किया गया है, इसमें उन्नीस आलेख प्रस्तुत हुए हैं। ग्रन्थपरीक्षा शीर्षक से मुख्तार सा ने उमास्वामीश्रावकाचार, कुन्दकुन्द श्रावकाचार, भद्रबाहुसंहिता आदि ग्रन्थों की परीक्षा की है। उन्होने यह भी सिद्ध किया है कि कुन्दकुन्द, उमास्वामी और भद्रबाहु के द्वारा उक्त ग्रन्थ नहीं रचे हैं, किन्तु किन्हीं स्वार्थी लोगो ने अपनी बातों को प्रभावी बनाने के लिए उनके नाम से ही ग्रन्थ रचना कर डाली। मुख्तार साहब ने पहली बार ऐसे ग्रन्थो की परीक्षा करके विद्वज्जगत् और समाज को नई दिशा दी थी। उन्होने अनेक ग्रन्थों के भाष्य लिखे। वे समन्तभद्र के तो अनन्य भक्त थे ही। अपने शोध निबन्धो के माध्यम से उन्होंने धर्म, समाज और राष्ट्र को नया प्रकाश दिया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के आलेखो में कुछ सामग्री पुनरुक्त भी हुई है, क्योंकि लेखकीय स्वतन्त्रता सर्वोपरि है।

अन्त में हम पुण्यश्लोक स्व प जुगलकिशोर मुख्तार के चरणो मे शत-शत नमन करते है।

– डॉ. शीतलचन्द्र जैन
– डॉ. ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार'
– डॉ. शोभालाल जैन

दो शब्द

यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि जैन जगत् के अद्वितीय विद्वान पं जुगलकिशोर मुख्तार "युगवीर" के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर एक विद्वत् सगोष्ठी का आयोजन परमपूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज के ससघ पावन सान्निध्य में तिजारा, अलवर में हुआ था। देश के विभिन्न प्रान्तों से पधारे हुए विद्वानों ने उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर जो शोधालेख प्रस्तुत किये थे वे संकलित होकर एक ग्रन्थ के रूप मे प्रकाशित हो रहे हैं, ये गौरव की बात है। प्राच्य श्रमण भारती का उद्देश्य चारो अनुयोगों के ग्रन्थों के प्रकाशन के साथ इस प्रकार के ऐतिहासिक मूर्धन्य विद्वानो के व्यक्तित्व एव कृतित्व को प्रकाशित करना भी है, जैन जगत् को ऐसे प्राचीन विद्वान के सबध में ज्ञान हो ऐसी मेरी भावना एव संस्था का उद्देश्य है इस संस्था को परमपूज्य उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त है अतः हम उनके चरणों में शत्-शत् नमन करते हैं।

अध्यक्ष

प्राच्य श्रमण भारती

मुजफ्फरनगर

प्रकाशकीय

सन् 1996 में परमपूज्य उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागरजी महाराज के आर्शीर्वाद से विशिष्ठ दार्शनिक ग्रन्थ जो अनुपलब्ध एवं अप्रकाशित थे उनके प्रकाशन हेतु प्राच्य श्रमण भारती का जन्म हुआ इसके तत्वाधान में अभी तक 70 ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं पं. जुगल किशोर मुख्तार "युगवीर" व्यक्तित्व एव कृत्तित्व इक्तहर वाँ ग्रन्थ है पंडित जुगल किशोर मुख्तार साध्य, सहजता, सरलता की प्रतिमूर्ति थे मेरी भावना लिखकर उन्होंने जन-जन को जीवन जीने की कला सिखाई एक-एक पंक्ति का भाव अगर जीवन में अंगीकार हो जाए तो मानव को कभी-भी दु:ख एवं अशान्ति का अनुभव नहीं करना पडेगा-

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।

दीन-दु:खी जीवों पर मेरा, उर से करुणा से स्रोत्र बहे॥

पडित जी साहब सरस्वती के वरद पुत्र थे मेरी भावना में गागर में सागर भरके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है एवं सबके कल्याण की भावना मेरी भावना में व्यक्त की है-

सुखी रहे सब जीव जगत में, कोई कभी न घबरावे।

बैर पाप अभिमान छोड़कर नित्य नये मंगल गावे॥

'पंडित जुगल किशोर मुख्तार' "युगवीर" व्यक्तित्व एव कृत्तित्व के सम्पादक महानुभावों के प्रति हम आभार ज्ञापित करते हैं कि आपने दिन-रात परिश्रम करके उस महान् जनोपयोगी और ज्ञानोपयोगी कृति को तैयार किया है हमारे सहयोगी श्री मनीष जैन जो प्रकाशन कार्य में रुचि लेते हैं वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

हम पूज्य गुरुवर उपाध्यायश्री के चरणों में भी नमन करते हैं, उपाध्याय श्री संस्था के सभी पदाधिकारियों को अच्छे कार्य हेतु सदैव प्रेरणा एवं आर्शीर्वाद प्रदान करते कहते हैं।

रविन्द्रकुमार जैन (नावले वाले)
मंत्री, प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर

पं. जुगलकिशोर मुख्तार विद्वत्संगोष्ठी विवरण

डॉ. शीतलचन्द जैन*
प्राचार्य श्री दि जैन आचार्य स महाविद्यालय, जयपुर - 3

दिगम्बर जैन सराक जाति उद्धारक, जैन विद्या के पारगामी बहुश्रुत मुनिपंगव, व्याख्यान वाचस्पति, युगपुरुष परमपूज्य 108 उपाध्याय ज्ञानसागरजी महाराज एवं परमपूज्य वैराग्यसागर जी महाराज के परम पुनीत सान्निध्य मे और ब्र. अतुल भैया जी की गौरवपूर्ण उपस्थिति में प जुगलकिशोर मुख्तार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर श्री दिगम्बर जैन अतिश क्षेत्र देहरा, तिजारा अलवर (राज) की ओर से दिनांक 30 10 98 से 1 11 98 तक अखिल भारतवर्षीय स्तर के विद्वानों के मध्य में विद्वत् गोष्ठी का भव्य आयोजन हुआ।

सात सत्रो में जैन विद्या के मनीषी विद्वानो ने महत्त्वपूर्ण अड़तालीस आलेखों का वाचन किया। प्रथम सत्र की अध्यक्षता आदरणीय विद्वान् डॉ भागचन्द जी भागेन्दु श्रवणबेलगोला ने की, दीप-प्रज्वलन दानवीर समाज सेवक पदमचन्द जी धाकडा, मद्रास ने किया। सत्र का सचालन जाने माने विद्वान डॉ नलिन कुमार जी शास्त्री 'गया' ने अपनी चिरपरिचित शैली मे किया। लेखवाचन प्राचार्य श्री निहालचन्द जी बीना एवं प्राचार्य डॉ. प्रेमचन्द जी गंजबासोदा ने किया।

द्वितीय सत्र दोपहर दो बजे से प्रारम्भ हुआ। जिसकी अध्यक्षता डॉ रतनचन्द जी भोपाल ने की। डॉ. साहब ने अपनी हास्यपूर्ण और मनमोहक वाणी से सत्र को बाधे रखा। सत्र का संचालन प्राचार्य श्री निहालचन्द जी 'बीना' ने अत्यन्त सौहार्द के साथ किया। आलेख वाचन पं. निर्मल कुमार जैन जयपुर डॉ प्रकाशचन्द जैन दिल्ली, डॉ. कृष्णा जैन ग्वालियर, डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन श्रावस्ती, प लालचन्द जैन गजबासोदा ने किया।

तृतीय सत्र शाम सात बजे प्रारम्भ हुआ। मगलाचरण श्री विमलकुमार जी जैन, जयपुर ने किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. प्रकाशचन्द जी जैन, प्राचार्य, दिल्ली ने की। सत्र का संचालन डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन श्रावस्ती ने किया। इन्होंने अपने संचालन में आलेख वाचक वरिष्ठ एवं गरिष्ठ विद्वानों को समय की सीमा में बाधे रखा और आलेख के प्रस्तुत करने मे विद्वानों को पूर्ण सहयोग प्रदान किया। डॉ. प्रेमचन्द रावका बीकानेर, डॉ. कस्तूरचन्द जी जैन 'सुमन' श्री महावीर जी, श्री विजयकुमार जी जैन महावीर जी, पं श्री विमलकुमार जी जैन जयपुर, डॉ राजेन्द्र बसल अमलाई, डॉ सुपार्श्वकुमार जी बड़ौत आदि विद्वानो ने पं. जुगलकिशोर मुख्तार जी के परिप्रेक्ष्य मे अपने आलेखों का प्रस्तुतीकरण किया।

चतुर्थ सत्र 31.10 98 को प्रातः आठ बजे प्रारम्भ हुआ। मंगलाचरण पं. ज्योतिबाबू जैन, जयपुर ने किया। अध्यक्षता जैन समाज के वरिष्ठ विद्वान् साहित्यकार कवि हृदय श्री निर्मलकुमार जी जैन, सतना ने की। सत्र का सचालन युवाविद्वान क्रान्ति के अग्रदूत सत्यान्वेषी डॉ. कपूरचन्द जी जैन खतौली ने किया। डॉ कमलेशकुमार जी जैन वाराणसी, डॉ भागचन्द जी भागेन्दु श्रवणबेलगोला, डॉ. रतनचन्द जी भोपाल ने अपने आलेखों द्वारा सत्र को बडी ऊँचाइयो तक पहुँचाया। सत्र की समाप्ति पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागरजी महाराज के मगल प्रवचन एवं आशीर्वाद के साथ सम्पन्न हुई।

पंचम सत्र महिला सत्र के रूप में प्रारम्भ हुआ। मंगलाचरण श्रीमती कामिनी चैतन्य, जयपुर ने किया। अध्यक्षता अर्थशास्त्री डॉ. सुपार्श्वकुमार जी, बडौत ने की। सत्र का संचालन कमनीय पदावली में अपनी बात प्रस्तुत करने में विख्यात डॉ कमलेशकुमार जैन, वाराणसी ने किया। आलेख का वाचन डॉ. ज्योति जैन खतौली, श्रीमती कामिनी जैन जयपुर, डॉ. रमा जैन छतरपुर, श्रीमती माधुरी जैन जयपुर, व्याख्याता-श्रीमती सिधुलता जैन जयपुर ने किया। सत्र की समाप्ति पर पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागरजी महाराज ने अपने मंगलमयी वाणी में विदुषी महिलाओं को आशीर्वाद प्रदान किया और कहा कि आप तो तीर्थंकर को जन्म देने वाली हैं, अपने संस्कारों से बच्चों का इस प्रकार संस्कारित करें कि वे इस जगत् के अन्धकार, अन्याय, अशान्ति एवं अशिक्षा से मुक्ति दिला सकें।

छठवां सत्र साय 7.30 बजे प्रारम्भ हुआ। मंगलाचरण डॉ प्रकाशचन्द जैन ने किया। सत्र की अध्यक्षता पुरातत्त्वकला के पारखी साहित्यकार, इतिहासकार कालजयी कृति गोमटेश गाथा के रचयिता, जनप्रिय प्रवचनकार, गोपालदास बरैया पुरस्कार से सम्मानित, नीरज जैन सतना ने की। सत्र का संचालन यथानाम तथा गुण डॉ. फूलचन्द जी जैन 'प्रेमी', वाराणसी ने किया। आलेख वाचन डॉ सुपार्श्वकुमार जी जैन, बड़ौत, डॉ. शोभालाल जी जैन, जयपुर, डॉ नन्दलाल जी, रावा, डॉ सुशीलकुमार जी, कुराबली डॉ नेमीचन्द जी, खुरई डॉ अनिलकुमार जी, अहमदाबाद ने किया।

सप्तम सत्र 1 11 98 को प्रात: 8 बजे प्रारम्भ हुआ। मंगलाचरण डॉ अशोककुमार जी जैन, लाडनूं ने किया। अध्यक्षता डॉ भागचन्द जी भास्कर, नागपुर ने की। डॉ साहब जैन एवं बौद्ध दर्शन के प्रौढ़ विद्वान् हैं देश और विदेश में अपनी विद्वत्ता एव खोजपूर्ण कृतियों के लिए प्रसिद्ध है। सत्र का संचालन डॉ अशोककुमार जी जैन, रुड़की ने किया। इन्होंने इस बड़े भारी भरकम सत्र को बडी कुशलता से संभाला क्योंकि जैन जगत् के सभी मनीषी विद्वानो को इस सत्र में अपने आलेखो का प्रस्तुतीकरण करना था। डॉ रमेशचन्द जी जैन, बिजनौर, डॉ अशोक कुमार जैन, लाडनू डॉ. जयकुमार जी जैन, मुजफ्फरनगर चोटी के विद्वान्, प शिवचरणलाल जी शास्त्री, मैनपुरी प अनूपचन्द जी, न्यायतीर्थ जयपुर, डॉ कमलेश जैन नई दिल्ली, प अरुणकुमार जी जैन ब्यावर, श्री नीरज जी जैन सतना, श्री निर्मल जी जैन सतना, डॉ कपूरचन्द जैन खतौली, डॉ सुरेशचन्द जैन दिल्ली, डॉ पुष्पा जैन वाराणसी ने अपने-अपने आलेखो को बडे विद्वतापूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया।

सत्र की समाप्ति पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज के मगल आशीर्वाद के साथ हुई। उन्होंने कहा कि जैन विद्वान श्रमणसंस्कृति एव आर्ष परम्परा की धरोहर हैं। इन विद्वानों का सरक्षण होना चाहिए। उनकी कृतियो, कार्यो का प्रचार-प्रसार अवश्य होना चाहिए। प गोपालदास बरैया, प मक्खनलाल जी शास्त्री, प कैलाशचन्द जी शास्त्री, प महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य, पं. बंशीधर जी व्याकरणाचार्य, प. मिलापचन्द जी शास्त्री, जयपुर इन विद्वानो के स्वर्गवासी हो जाने पर आज तक उनका विकल्प जैन समाज

में उत्पन्न नहीं हुआ। अत: विद्वानों को संरक्षण एवं सवर्धन मिलना चाहिए। जिससे विद्वान् समाज में फल फूल सकें।

इस संगोष्ठी के पूर्व परम पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज के पावन सान्निध्य मे पं महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य वाराणसी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सगोष्ठी का आयोजन अम्बिकापुर (म प्र) में हुआ। पं जुगल किशोर जी मुख्तार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से जैन समाज अवगत हो, इसलिए मुझे श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा तिजारा में मुख्तार साहब के ऊपर सगोष्ठी आयोजित करने की प्रेरणा एवं आशीर्वाद प्रदान किया। तदनुसार इस पावन क्षेत्र पर पूज्य उपाध्यायश्री ज्ञानसागरजी, पूज्य मुनि वैराग्य सागरजी के सान्निध्य मे यह अखिल भारतीय स्तर की विद्वत् संगोष्ठी सम्भव हो सकी। उपस्थित विद्वानों का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने मेरे निवेदन पर विद्वत् सगोष्ठी को सफलता के शिखर तक पहुँचाया तथा मुख्तार साहब के अद्वितीय अवदान को रेखाचित्र प्रस्तुत किया।

* * *

परिशिष्ट

1. संगोष्ठी के विषय में विद्वानों के अभिमत

1. संगोष्ठी के विषय में विद्वानों के अभिमत

(पं. जुगलकिशोर मुख्तार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व संगोष्ठी एवं पूज्य 108 उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के सम्बन्ध में विद्वानों के विचार)

कस्तूर चन्द्र 'सुमन'
प्रभारी, जैन विद्या संस्थान,
श्री महावीर जी (करौली) राजस्थान

समर्पण भाव से जैनधर्म और जैन साहित्य के सेवक सरस्वती पुत्रों का सामाजिक अभिनन्दन और अतीत में हुए श्रेष्ठ मनीषियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर गोष्ठियों का आयोजन वर्तमान में ऐसे कार्य हैं जिनकी अत्यन्त आवश्यकता है। तीर्थक्षेत्र तिजारा में दोनों कार्यों का आयोजन देखकर और उसकी सफलता पर अतीव प्रसन्नता है। आयोजक डॉ. शीतलचन्द्र जैन जहाँ एक ओर बधाई के पात्र हैं, दूसरी ओर पूज्य १०८ पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज की सूझ-बूझ भी स्तुत्य है। विद्वानों को सम्मान देकर उनसे काम कराने की मुनिश्री में अद्भुत क्षमता है। वे सरस्वती पुत्रों के संरक्षक हैं। दर्शन-ज्ञान और चारित्र के अनुयायी उपाध्याय श्री अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी हैं।

डॉ. जिनेश्वरदास जैन
A2, श्रीजी नगर, दुर्गापुरा
जयपुर-302018, फोन : 554270

संगोष्ठी के लिए पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार जैसे व्यक्ति को चुना, ये संगोष्ठी के आयोजकों की सूझबूझ का द्योतक है।

तिजारा जैसे अतिशय क्षेत्र और मुनिश्री ज्ञानसागर जी महाराज का सान्निध्य मिलने से इस संगोष्ठी में चार चांद लग गये हैं।

इसके लिए संयोजकों को साधुवाद।

निर्मलकुमार 'शास्त्री'
श्री दि. जैन आ. संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर-3 (राज.)

पं. श्री जुगल किशोर 'मुख्तार' जी महामनीषी, विद्वत् रत्न एवं अदम्य साहस के धनी थे। मुख्तार जी का व्यक्तित्व उनके कृतित्व में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। व्यक्ति के जैसे विचार और भावना होती है, उसी अनुरूप उसका लेखन विकसित होता है। अतएव उनके भावों में चिन्तन में सर्वकल्याण, सर्वमैत्री के सूत्र विद्यमान थे, इसी कारण 'मेरी भावना' का सृजन हुआ, जो जन-जन का कण्ठहार बनकर सभी को अपनी भावना प्रतीत होने लगी। निबंधों में भी उन्होंने सामाजिक/राष्ट्रीय एवं सदाचार के सूत्र निबद्ध किये, जो वर्तमान में अत्यन्तोपयोगी हैं। अत: ऐसे निबंधों व काव्यों को, जो कि जीवनशोधक में साधक हैं। जन-जन तक पहुँचाना चाहिए।

पूज्य 108 उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज श्रेष्ठ सन्त हैं। मेरा उनके चरणों में नमोऽस्तु।

सन्त जगत की शान हैं। सन्त जगत् के सार।
सन्त न होते जगत में, तो जल जाता संसार॥

पं. निहालचन्द जैन
शा. उच्च मा. वि क्र 3 बीना (सागर) म. प्र

पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज के पावन सान्निध्य में पं. जुगलकिशोर मुख्तार सा. के जीवनदर्शन एवं उनके महनीय कर्त्तव्य पर, देहरा तिजारा (अलवर) में समायोजित संगोष्ठी 98 में पण्डित जी के जीवन के विविध पक्षों पर आमंत्रित विद्वत्जनों ने खुलकर बहस की। उनको सम्मान/यश का जो अर्घ्य दिया गया, वह इस महान संत की दूरदृष्टि का सुफल है।

गुणीजनों के प्रति वात्सल्य पूज्य उपाध्यायश्री की जीवन-चर्या बन चुकी है। आपके बहुमुखी व्यक्तित्व को ये सीमित शब्द कैसे अभिव्यक्ति दे सकते हैं? एक ओर आपने सराक जाति के लोगों के संगठन तैयार कर उनमें प्रसुप्त जैन संस्कृति को जगाया और उन्हें यह आत्म विश्वास दिया कि आप लोग जैन धर्म के एक अविभाज्य अंग हैं।

पूज्य उपायाय श्री ने विगत पाँच वर्षों में राष्ट्रीय स्तर की अनेक संगोष्ठियों को अपने मंगल आशीर्वाद से उपकृत किया और इस माध्यम से जैन विद्वानों को संगठित कर एक नई दिशा दी।

आपके सामने जो भी ज्वलन्त सामाजिक व धार्मिक समस्या उठाई जाती है। उसके समाधान के लिए आप प्राणपण से जुट जाते हैं और अपनी साधना का बड़ा समय इसमें लगाकर लक्ष्य प्राप्ति के लिए समाज को प्रेरित करते रहते हैं।

जैन विद्वानों/वैज्ञानिकों/शाकाहारियों/डॉक्टर्स आदि के सम्मेलन के माध्यम से व्यसन-विमुक्ति आन्दोलन और माँस निर्यात का जबरदस्त विरोध करके आपने समय की नब्ज को टटोला है। शाकाहार संगोष्ठियों/लेख प्रतियोगिताओं आदि के द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर छात्र/छात्राओं को शाकाहार के प्रति उन्मुख करना आपकी जीवन-साधना का प्रमुख अंग है।

आपने विलुप्त जैन साहित्य एवं जैन ग्रन्थों का पुर्नप्रकाशन करवाकर बड़ा ही स्तुत्य कार्य किया है। जो ग्रन्थ अलभ्य हो चुके थे वे सुलभ बना दिये गये। यह आपका साहित्यिक-अनुराग अत्यन्त प्रणम्य है। लगभग 25 ग्रन्थों का प्रकाशन इसका परिणाम है।

इस संगोष्ठी में लगभग 80 विद्वानों ने पूज्य पण्डित जुगलकिशोर जी मुख्तार सा. को भावाञ्जलि प्रस्तुत की और उनके कृतित्व पर गवेषणात्मक-आलेखों का वाचन किया, यह विद्वानों के प्रति आपके वात्सल्य का द्योतक है।

आपका हंसमुख बहुआयामी व्यक्तित्व-संत की महान प्रतिमा का दिग्दर्शन कराती है।

मेरे विनम्र नमोऽस्तु ऐसे महान संत के चरणों में समर्पित है।

देहरा तिजारा में सम्पन्न संगोष्ठी के तथ्य

डॉ. नेमिचन्द्र जैन, खुरई

1. पं. जुगल किशोर जी मुख्तार द्वारा की गई समीक्षायें विद्वानों को मील के पत्थर की तरह हैं।
2. उनके भाष्य रचनाकारों के हार्द को समझने में सहायक हैं।
3. श्री युगवीर द्वारा स्थापित प्रत्येक विद्या पर अलग-अलग शोध प्रबन्ध लिखवाये जा सकते हैं।

विदुषां सगोष्ठी

प्रकाशचन्द्र जैन
9/304, सेक्टर-4, राजेन्द्र नगर,
साहिबाबाद (उ प्र)

दग्धाष्ट-कर्मकान्तारं,
तीर्थेशमष्टमं जिनम्।
चन्द्रप्रभं जगत्पूज्यं
भक्त्या वन्दे पुनः पुनः॥ 1

उपाध्याय महं नौमि,
पूज्यं श्रीज्ञानसागरम्।
येन महात्मना नित्यं
क्रियते धर्म जागृतिः॥ 2

लोकभोगान् परित्यज्य,
सर्वोदयकृतव्रतः।
मुमुक्षुर्वीतरागोऽयं,
तस्मै नोऽस्तु नमो नमः॥ 3

तिजारा तीर्थक्षेत्रेऽस्मिन्
संगोष्ठी विदुषामियम्।
विज्ञशीतल चन्द्रेण,
आहूता सम्प्रति सादरम्॥ 4

श्री जुगलकिशोरेण,
मुख्तारोपाधिधारिणा।
कृत साहित्य सेवायाः,
चर्चाऽत्र संभविष्यति॥ 5

जैन सिद्धान्त-मर्मज्ञः,
तत्वान्वेषण-तत्परः।
पुरातत्त्वेतिहासस्य
आसील्लेखको महान॥ 6

बहूनां प्राच्यग्रन्थानां,
तेन सम्पादनं कृतम्।
दीर्घ प्रस्तावनाश्चापि,
बहुग्रन्थेषु सोऽलिखत्॥ 7

लेखाः शोधात्मकास्तस्य,
विद्यन्ते हि शताधिकाः।
दृश्यते जैन शास्त्राणाम्।
तलं येषु हि सर्वतः॥ 8

लब्ध्वा तल्लेखनी स्पर्शम्
प्रतिभा शालिनः कवेः।
कविता सफला जाता।
यथास्ति ममभावना॥ 9

दुर्भाग्यादेव सोऽस्माभिः।
युगवीरो विस्मारितः।
तत्स्मरणार्थमेवेयम्।
संगोष्ठ्यत्र हि विद्यते॥ 10

विद्वांसोऽत्र वयं सर्वे
सहलेखैरिहागतः।
श्री जुगलकिशोरस्य
चर्चाऽत्र संभाविष्यति॥ 11

तिजाराक्षेत्र सम्बद्धाः
सर्वे पदाधिकारिणः।
योग्यास्ते धन्यवादस्य,
अस्माकं विदुषामिह॥ 12

येषां तत्त्वावधानेऽत्र
संगोष्ठी विदुषामियम्।
श्री जुगल किशोरस्य
साहित्यं चिन्तयिष्यति॥ 13

भवन्ति धर्मकार्याणाम्।
प्रवृत्तयो निरन्तरम्।
तिजारा तीर्थक्षेत्रेऽस्मिन्
हर्षस्य विषयो महान्॥ 14

डॉ. प्रेमचन्द्र रांवका
प्रोफेसर, राजकीय आ संस्कृत कॉलेज, बीकानेर

श्री १००८ चन्द्रप्रभ दि. जैन अतिशय क्षेत्र देहरा (तिजारा) अलवर (राज.) द्वारा पं. जुगल किशोर मुख्तार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर दि. 30/10 से 1/11/98 तक आयोजित त्रिदिवसीय विद्वत्संगोष्ठी, परमपूज्य उपाध्याय 108 श्रीज्ञानसागरजी महाराज के सान्निध्य को पाकर अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है।

पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार मा भारती के वरद् पुत्र थे। उनका अधिकांश समय मां जिनवाणी की आरती में व्यतीत हुआ। गृहस्थ जीवन के नाना अवरोधों के मध्य रहते हुए भी पं. श्री मुख्तार सा. साहित्य-सृजन में अग्नि में स्वर्ण सदृश देदीप्यमान रहे। उनका जीवन साहित्य देवता की अर्चना में संलग्न रहा। ऐसे प्रेरणापुञ्ज युगवीर जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर संगोष्ठी

का आयोजन, युगवीर जी के साहित्यक जीवन के मूल्यांकन का एक महत्वपूर्ण आयाम है। परमपूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज ज्ञान के स्वाध्याय में लीन रहने वाले प्रेरणापुञ्ज गुरु हैं। ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहते हुए भी विद्वत्समुदाय से विद्यानुराग रखते हैं। स्वयं उपाध्याय श्री विद्वत्समुदाय को अपनी आदरास्पद उपस्थिति से अनुगृहीत कराते हैं। आपका पावन सान्निध्य पाकर गोष्ठी अपनी सार्थकता को प्राप्त होती है। आपको नमन्॥

उक्त संगोष्ठी के संयोजक डॉ. शीतलचन्द्र जी जैन साधुवाद के पात्र हैं। जिन्होंने अपने अथक प्रयत्नों से यह आयोजन किया है।

डॉ. रतनचन्द्र जैन
137, आराधनानगर, भोपाल, 462003

परमपूज्य १०८ उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज एक सरल, आगमचक्षु, आगमानुसार चर्यावाले, संयमी, तपस्वी एवं विद्वत्प्रेमी साधु हैं। उनकी प्रेरणा से अनेक विद्वत्संगोष्ठियाँ सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई हैं। विद्वद्वर्ग उनकी प्रेरणा से ग्रन्थों के स्वाध्याय, समीक्षा एवं सम्पादन में संलग्न होकर अपने ज्ञान का वर्धन का सराहयनीय कार्य कर रहा है। उपाध्यायश्री से जैन समाज को उन्नति एवं जिनवाणी की प्रभावना को प्रचुर आशाएँ हैं।

डॉ. (श्रीमती) रमा जैन, सेवा निवृत्त प्रोफेसर हिन्दी
81 छत्रसाल रोड, विद्यार्थी भवन,
बेनीगंज छतरपुर-471001 (म. प्र.)

सराकोद्धारक, उदान्त चिन्तन की उर्जस्वी धारा को प्रवाहित करने वाले, दूरदर्शी आत्मसाधक पूज्य उपाध्याय १०८ ज्ञानसागर जी ख्याति, लाभ, पूजा नाम आदि की कामना से मुक्त, उच्चकोटि के सन्त हैं। पुस्तकों के माध्यम से मैं उन्हें १९९२ से जानती थी, किन्तु आज ३०.१०.९८ को साक्षात् दर्शन कर अत्यन्त हर्ष हुआ। मैं आपकी प्रेरणास्पद, हृदयग्राही प्रवचन शैली और सहज, सरल, वात्सल्यमयी वाणी से बेहद प्रभावित हुई। धन्य हैं ऐसे सन्त।

आपने सैकड़ों वर्षों से उपेक्षित बंगाल, बिहार और उड़ीसा में रहने वाले, भूले बिसरे 'सराक' भाइयों को जैनधर्म की मुख्यधारा से जोड़ने का कष्ट साध्य कार्य कर, उनके अन्दर ज्ञान की 'अखण्ड ज्योति' प्रज्जवलित कर दी है। सराक ग्रामों की दुर्गम घाटियों में भ्रमण करते हुए, आपने सराकोत्थान हेतु किये गये कार्यों में तेजी लाने का हर संभव प्रयत्न किया है और निरन्तर उनकी प्रत्येक समस्या को शनैः शनैः सुलझा रहे हैं।

विद्वानों एवं जिनवाणी के आराधकों के प्रति आपकी आत्मीयता अनिर्वचनीय है। इसी जिनवाणी प्रेम के कारण आपने सरधना, रांची, अम्बिकापुर, मेरठ, सहारनपुर आदि में 'विद्वत् संगोष्ठियों का आयोजन किया था, जिसमें अनेक अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर आसानी से प्राप्त हो गये थे।'

इस वर्ष 30 व 31 अक्टूबर एवं 1 नवम्बर, 1998 को उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागर मुनिराज के सान्निध्य में पं. जुगलकिशोर मुख्तार: 'व्यक्तित्व एवं कृतित्व' संगोष्ठी का आयोजन हुआ। इस संगोष्ठी में भारतवर्ष के सभी प्रान्तों से आये हुए पचास से अधिक विद्वानों, प्राध्यापकों ने अपने मौलिक चिन्तन से परिपूर्ण आलेखों का वाचन किया। इन सभी आलेखों ने यह सिद्ध कर दिया कि मुख्यतार सा का व्यक्तित्व हिमालय जैसा उन्नत एवं प्रशान्त महासागर जैसा गंभीर था। वे निस्पृह समाजसेवी, अनुपलब्ध गन्थों के खोजी, शास्त्रोद्धारक, अत्यन्त दुरुह, दुखगाह एवं क्लिष्ट दार्शनिक कृतियों के हिन्दी भाष्यकार एवं प्रकाशक, जैन वाङ्मय के अद्वितीय विद्वान् थे।

ऐसे साहित्य मनीषी का विनयांजलि कार्यक्रम तथा अभिनन्दन बहुत पहले हो जाना चाहिये था, परन्तु 'जब जागे तभी सबेरा'। परम पूज्य उपाध्याय ज्ञान सागर जी की दूरदृष्टि एवं वीरसेवा मंदिर ट्रस्ट के मंत्री डॉ. शीतलचन्द जी की कृपा से इस कार्य की पूर्ति हुई। अब हमें मुख्तार सा. जैसे समाज सुधारक, कवि, इतिहासज्ञ, साहित्यकार का 'स्मृति ग्रन्थ' प्रकाशित कर उनकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाने का कार्य करना ही चाहिए। यह कार्य वीर सेवा मंदिर या वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट आसानी से कर सकता है। वे तो इस संस्था के जन्मदाता थे।

डॉ. रमेशचन्द जैन

जैन मन्दिर के पास, बिजनौर, उ. प्र.

पूज्य उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागर महाराज वर्तमान युग में विद्या और विद्यावान् के बहुत बड़े संरक्षक हैं। उनके पावन सान्निध्य में अनेक विद्वद्गोष्ठियाँ, शाकाहार सम्मेलन, पत्रकार सम्मेलन, श्रावक सम्मेलन, महिला सम्मेलन, बुद्धिजीवी सम्मेलन, डॉक्टर्स सम्मेलन इत्यादि अनेक सम्मेलन अपने-अपने सार्थक निष्कर्षों के साथ सम्पन्न हुए हैं। वे जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ मनीषी हैं और मुनिचर्या का निरतिचार पालन करते हैं।

दिनांक 30 अक्टूबर 1998 से 1 नवम्बर 1998 तक देहरा तिजारा दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पर स्व. पं. जुगल किशोर मुख्तार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर महत्त्वपूर्ण गोष्ठी सम्पन्न हुई, जिसमें शतार्द्ध विद्वानों ने भाग लिया। इसमें मुख्तार सा. की साहित्य सेवा का बहुमान पूर्वक यशोगान किया गया। सभी ने यह आवश्यकता अनुभव की कि मुख्तार सा. की जो कृतियाँ वर्तमान में अनुपलब्ध हैं, उनका प्रकाशन कराया जाय। विद्वान् उनके ग्रन्थों का अवश्य अध्ययन करें। उनकी ऐतिहासिक और समालोचक दृष्टि को ध्यान में रखते हुए विद्वान् अपने लेखन में उनसे प्रेरणा ग्रहण करें।

वीर सेवा मंदिर के कार्यों को आगे बढ़ाया जाय। वीर शासन जयन्ती मनाने की जो परम्परा मुख्तार सा ने डाली थी, उसे कायम रखा जाय। वर्तमान में ऐतहासिक दृष्टि में दिगम्बरत्व को पीछे धकेलने का जो नियोजित प्रयास किया जा रहा है, उसका समुचित विरोध किया जाय और वास्तविकता को सामने रखा जाय।

विजय कुमार शास्त्री
दि जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी-322220
(जि. करौली, राजस्थान)

1. उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज के साम्यभाव, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगिता विद्वद्वात्सल्य, जैन विद्यावात्सत्य एवं समाज को धर्ममार्ग पर लगाने की भावना का मैं हृदय से श्रद्धावान हूँ।
2. आचार्य श्री पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार व्यक्तित्व एवं कृतित्व संगोष्ठी मेरी दृष्टि में पूर्ण सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई। अर्द्धशतक से अधिक

जैन विद्वानों के द्वारा पढ़े गये शोध-खोजपूर्ण लेखों में इस महान साहित्य मनीषी को उजागर करने की चेष्टा की गई है। ऐसे महान व्यक्तित्व के प्रति जो श्रावक होता हुआ भी सन्त था। समाजोत्थान के साथ साहित्य विशेषकर जैन वाङ्मय के प्रति समाज की श्रद्धा की अभिव्यक्ति के लिए उनके साहित्य का समग्र संकलन हो, इसके साथ उनको 'स्मृतिग्रन्थ' से समादृत किया जाना चाहिए।

डॉ. शोभालाल जैन

श्री दि. जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर-3

मुख्तार साहब ने अपने जीवन काल में जैन साहित्य की जो सेवा की है वह अमूल्य है। मुख्तार साहब एक उच्च चिंतक मनीषी थे। उनका जीवन सादा और सरल था। आपने अनेक रचनाओं का सृजन किया। सम्पादन और अनुवाद की तो आप कसौटी थे। डॉ. दरबारी लाल कोठिया और पं. परमानंद जी शास्त्री का व्यक्तित्व कृत्तित्व आपके सान्निध्य में निखरा है।

ऐसे मनीषी स्वस्थ संत पर संगोष्ठी होना अति अनिवार्य था। दूरदृष्टि सराकोद्धारक रा. सं. उपाध्याय ज्ञानसागर जी की दृष्टि इधर पड़ी और उन्होंने ऐसे सरस्वती पुत्र के जीवनवृत्त पर संगोष्ठी करने की प्रेरणा विद्वत्वर्ग और समाज को दी। अस्तु यह कार्य डॉ. शीतलचन्द्र जी को सौंपा गया। उक्त संगोष्ठी का संयोजन डॉ शीतलचन्द्र जी ने बड़ी सूझबूझ के साथ किया है। उनके प्रयत्नों से यह कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

पं. विमल कुमार जैन, शास्त्री

1137 साघों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर-3

परम पूज्य उपाध्याय १०८ ज्ञानसागर जी महाराज का व्यक्तित्व एक अनोखा व्यक्तित्व है। वे त्याग तपस्या की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। ज्ञान के प्रति तो उन्हें अगाध प्रेम हैं। सचमुच वे ज्ञान के समुद्र हैं। जिस प्रकार सागर अपने में अन्य नदियों के जल को समाहित कर प्रसन्न होता है। उसी प्रकार आप विद्वानों के ज्ञानको प्राप्तकर अति आनन्दित होते हैं। विद्वानों के प्रति आपका विशेष अनुराग है।

आपने सराक जाति के उद्धार हेतु जो कार्य किया है, वह अभूतपूर्व है। इतिहास में यह कार्य स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है।

पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार पर आयोजित संगोष्ठी समय की मांग थी, इससे पंडित जी के समग्र जीवन दर्शन पर प्रकाश प्राप्त हुआ। शोधार्थियों को अनेक विषय प्राप्त होंगे।

सचमुच यह संगोष्ठी मील का पत्थर साबित हुई है।

शिवचरनलाल जैन
सीतारा मार्केट मैनपुरी उ. प्र. २०५००१

एक ज्ञान यज्ञ

पं. जुगलकिशोर मुख्तार बीसवीं सदी के यथार्थ प्रतिपादन के पुरोधा वाङ्मयाचार्य थे। उनकी अमर कृतियाँ इसका ज्वलन्त प्रमाण हैं। साहित्य, इतिहास, पुरातत्व, सिद्धान्त आदि सभी विधाओं में उनकी लौह लेखनी अत्यन्त समादृत भूमिका पर आरोहित है। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। लेखक, सम्पादक, कवि, समीक्षक, समाज सुधारक, राष्ट्रीय चेतना के संवाहक, संपादक, आर्षमार्गानुसार निश्चयैकान्त के सफल निरसक आदि के रूप में वे प्रख्यात हैं। जीवन में अनेकानेक पारिवारिक कठिनाईयों में भी वे मेरुवत् अविचल रहे। निस्पृहता उनका विशेष गुण था। मेरी भावना सूत्र को समाज को समर्पित कर उन्होंने सभी वर्गों से वात्सल्य प्राप्त किया, आदर प्राप्त किया। समाज उनका चिरकाल तक ऋणी रहेगा।

उपरोक्त धर्म और संस्कृति के संस्थारूप महनीय व्यक्तित्व का भावपूर्ण स्मरण अतिशय क्षेत्र तिजारा जी में प. पू. १०८ उपाध्याय श्री ज्ञानसागर महाराज की प्रेरणा और उनके सान्निध्य में अपने शिष्य प. पू. विरागसागर जी मुनि महाराज के साथ यहाँ विराजमान रहकर समाज को यथार्थ एवं सामयिक मार्गदर्शन वर्षायोग के अवसर पर निरन्तर दे रहे हैं। उनका ज्ञान, संयम निर्मलता के वर्तमान युग में संभव चरम पर स्थित कहा जा सकता है। उनमें विद्वद्वर्ग के प्रति हार्दिक वात्सल्य हैं। विद्वानों का समादर एवं उनका समाज को उपयोग, उनका लक्ष्य है। उनकी कृपा एवं प्रसन्न स्नेह के कारण

विद्वज्जन सुदूर क्षेत्रों से नाना मार्ग की कठिनाईयों को भी सहनकर एक ही आदेश पर एक ही आवाज पर खिंचे चले आते हैं। उनका व्यक्तित्व अभीक्षणज्ञानोपयोग एवं आगमानुकूल प्रशस्त चर्या से समन्वित है।

उपरोक्त पं. मुख्तार विषयक संगोष्ठी को मैं 'ज्ञानसागर जी का ज्ञानयज्ञ' मानता हूँ। इस महान् आयोजन में उनके द्वारा निर्देशित रूप में आयोजकों ने विद्वानों के विधिवत व्यवस्था के परिवेश में जो ज्ञान की आहुतियों हेतु सामग्री जुटाकर महान् पुण्य कार्य किया है। इसमें निर्धारित 8 सत्रों में देश के विभिन्न चोटी के विद्वानों ने मुख्तार विषयक आलेखों का वाचन कर एक भूले-बिसरे ज्ञान-प्रतिनिधि को समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है। यह स्तुत्य प्रयास है। प्राचार्य शीतलचन्द जी के कुशल संयोजकत्व में आयोजित संगोष्ठी आगामी काल के विभिन्न ग्रन्थों के प्रकाशक, आर्षमार्ग के प्रचार-प्रसार हेतु मील का पत्थर सिद्ध होगी। ऐसा मेरा विश्वास है।

इस अवसर पर पू. महाराज की प्रेरणा से सर्वतोभद्रमहामण्डल विधान की समष्टि से दर्शन-ज्ञान-चारित्र का समन्वित रूप प्रकट हुआ। भक्ति के संयोजक से प्रस्तुत ज्ञानयज्ञ शोभा को प्राप्त हुआ है।

निष्कर्ष यह है कि यह संगोष्ठी विद्वद्वर्ग को समाज में सम्मानित एवं गौरवान्वित रूप में स्थापित करने का सामयिक प्रयत्न है। मुख्तार साहब की यशोगाथा तो यहाँ गाई ही गई साथ ही वर्तमान के जैन वाङ्मय के दधीचि, जिन्होंने अपनी हड्डियाँ गलाकर भी जैन वाङ्मय को पुष्ट किया एवं विशाल साहित्य की रचना, संरचना की। परमादरणीय डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर को 'अभिनन्दन ग्रन्थ' समर्पित कर सम्मानित किये जाने से प्रस्तुत 'ज्ञान-यज्ञ' में चार चांद लग गये हैं। यह मात्र उनका नहीं सभी विद्वानों का सम्मान हैं।

इस समस्त आयोजन के केन्द्र प. पू. १०८ उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज को शतशः नमन।

ब्र. डॉ. स्नेहरानी जैन, नेहानगर, सागर
श्री राजकुमार जी मलैया, स्टेशन रोड
भगवान गंज, सागर, म प्र. 470002

"युगवीर" पंडित जुगल किशोर जी मुख्तार का जैन समाज पर बहुत बड़ा उपकार है। बीसवीं सदी में सामाजिक, धार्मिक और नैतिक जागृति के वे दूत थे। इतने समर्पण के बाद भी अज्ञानवश यह सम्मान उन्हें जानते हुए भी उनसे अपरिचित है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों को समाज के सामने लाकर धूमिल पड़े उनके आईने को साफ करना अति आवश्यक है।

लिखित सामग्री तो बहुत है जो अलमारियों में दबी-छिपी धूल खा लेती है। बिरला कोई सरस्वती पुत्र उसे हाथ लगाकर प्रसाद पाता है। किंतु संगोष्ठी के माध्यम से विद्वान् जो सामग्री चुन-चुन कर सामने लाते हैं और जिस प्रकार प्रत्येक पक्ष को समुचित रूप से प्रस्तुत करते हैं। उससे श्रोता को बहुत लाभ मिलता है। यही इस संगोष्ठी की उपलब्धि है।

जैन साहित्य की अनुपम देन 'आगम' उनकी प्राकृत भाषा और गूढ़ अर्थ के कारण वे गिने-चुने ज्ञानियों और तपस्वियों की निधि रह गए हैं। वे आगम, जो कभी जन-जन द्वारा बोली जाने वाली भाषा में लिखे गए, प्रत्येक भाषा-भाषी द्वारा समझे गए, आज अपनी अनुपम धरोहर को मूक संजोए बैठे हैं। विद्वानों और पूर्वाचार्यों द्वारा उनका किया गया अनुवाद और टीकायें भी जिनशासन की भाषा और सिद्धांत की अनभिज्ञता के कारण आज का सहज हिंदी भाषा सामान्य व्यक्ति नहीं समझ पाता है। इसी कारण न तो पूजा और भक्ति का सही अर्थ समझता है न ही सैद्धांतिक गहराईयों को पकड़ पाता है। ऐसी स्थिति मे मुख्तार जी की सामान्य हिंदी में लिखी गई रचनाऐं 'मेरी भावना' तथा अन्य जन-जन के मुंह मे विराज गई हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। उनकी रचनाओं में जो भावात्मक मार्गदर्शन पाठक को मिलता है वह अनुकरणीय होता है। पाठक को अंतरंगता से उन्हे भक्ति के भावों में डुबोता है।

आवश्यकता आज ऐसे ही धर्म साहित्य की है जो सहज बोधगम्य हो और आस्था की गहराईयों को छुए। पंडित जी को अपनी कृतज्ञता का ज्ञापन देकर संगोष्ठी के माध्यम से समाज ने चिन्तकों एवं लेखकों को न केवल प्रोत्साहन दिया है बल्कि आज की आवश्यकता के प्रति सचेत भी किया है। उनका जन्म दिवस प्रतिवर्ष मनाया जावे तो उचित है।

उपा. मुनि ज्ञानसागर जी की इस ओर अभिरुचि और प्रेरणा, उनके उत्तरदायित्व के अनुकूल है एवं प्रशंसनीय है। जैन साधुओं ने ही इस धर्म की गंगा को, जिनवाणी के अमृत को अविरल अब तक जन-जन तक पहुचायाँ है और आगे पहुँचाने का कार्य भी उनकी दृष्टि में है।

इस संगोष्ठी में विद्वानों के आलेखों के वाचनों द्वारा पं श्री जुगलकिशोर के सम्बन्ध में अनेकों नई-नई बातों का पता लगा। भक्ति दर्दसे भींगकर जब भी उठती है वो बिना एकात्मता की गहराईयों को छुए नहीं रहती। ससार में घिरा प्राणी अपने दुखों की आक्रान्तता को तभी लखता है जब उसके ऊपर विपत्तियों का पर्वत टूटता है। सामान्यत: ऐसा प्राणी (मनुष्य) दो रास्ते सम्मुख पाता है- निराशा मे पढ़कर भागने का अथवा प्रभु के चरणों मे समर्पण का। जब उसे शब्दों और भावों का आधार मिल जाता है तब वह सहज ही दूसरे रास्ते को अपनाता है। प. जी की कृतियो की यही विशेषता है कि वह जनमानस को क्रांतिमय गूंज देती है। इनका प्रकाशन और जन-जन की उपलब्धि, भटकते मानव को पतवार का काम करेगी। अत: उनके 'समग्र' का निर्माण होना चाहिए और उन्हें उनमें 125वे जन्म दिवस पर स्मृति स्वरूप प्रकाश में लाया जाना चाहिए।

विषय सूची

खण्ड प्रथम : संस्मरण एवं व्यक्तित्व

खण्ड द्वितीय : कृतित्व काव्य - समीक्षा

खण्ड तृतीय : कृतित्व : साहित्य - समीक्षा

एटा में विद्वद् परिषद् के अध्यक्ष डा० नेमचन्दजी शास्त्री
आचार्य पं. जुगलकिशोर मुख़्तार "युगवीर"
को अभिनन्दन पत्र समर्पित करते हुए

अभिनन्दन के समय एटा में मुख़्तार सा० और विद्वद् परिषद् के मंत्री
पं० पन्नालाल जी "साहित्याचार्य"

संयोजक डा० शीतलचन्द्र जैन, जयपुर, द्वारा संगोष्ठी की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए
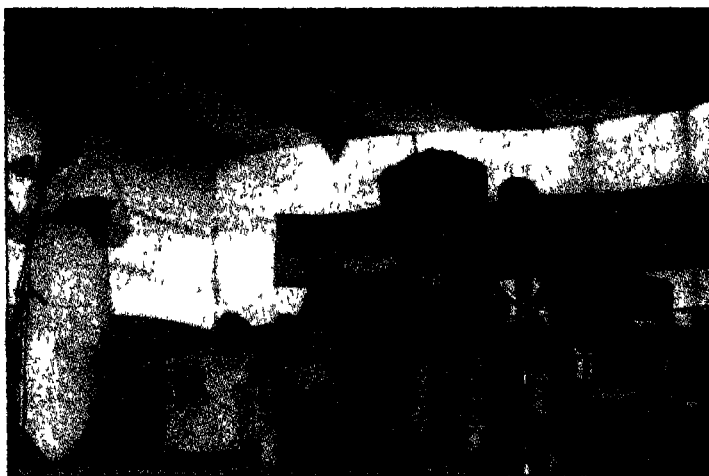
संगोष्ठी में श्री नीरज जैन, सतना, अपने विचार व्यक्त करते हुए
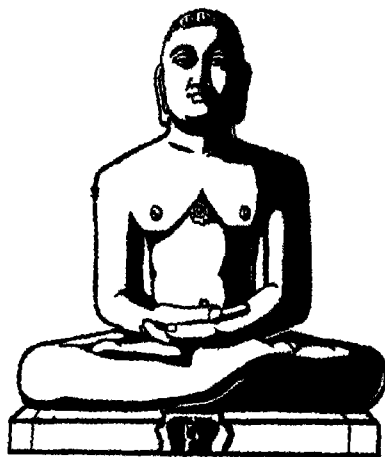
प्रथम खण्ड

संस्मरण
एवं
व्यक्तित्व

1. संस्मरण एवं व्यक्तित्व

1.	जुगलकिशोर.... प्रणमामि सदा मुदा	डॉ. नेमिचन्द्र जैन
2.	भावाञ्जलिः	डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'
3.	सरसावा के सन्त	डॉ. कुन्दनलाल जैन
4.	कुछ संस्मरण	पं. डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
5.	संस्मरण	पं. अनूपचन्द न्यायतीर्थ
6.	अनन्त जिज्ञासाओं के पुंज	पं. नीरज जैन
7.	राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक	डॉ. ज्योति जैन
8.	जैन विद्या शोध के युग-पुरोधा	डॉ. नंदलाल जैन
9.	एक कालजयी रचनाकार	डॉ. प्रेमचन्द जैन
10.	कालजयी दृष्टि के धनी	डॉ. सुरेशचन्द्र जैन
11.	मुख्तार सा की काव्य-मनीषा	डॉ. रमेशचन्द जैन
12.	एक श्रेष्ठ ग्रंथपाल	डॉ. शोभालाल जैन
13.	व्यक्तित्व एवं कृतित्व	श्रीमती माधुरी ज्योति

जुगलकिशोरं युगवीरं प्रणमामिसदामुदा
सरसावा सरसे सुरम्य नगरे-जातो महान्धार्मिकः।
जुगलकिशोरेति विख्यातः नत्थू भई देव्यः सुतः॥ १॥
शुद्धबुद्धिः जगन्मान्यः पण्डितः पुण्यसाधकः।
मुख्तारकर्मकर्ता तु साहित्ये यो विलक्षणः॥ २॥
सकलवाङ्मय शुद्धस्वरूप हि-कृत परीक्षण ग्रन्थ परीक्षणैः।
रचितवान्बहुशोधनिबन्ध वैः कृत प्रशस्त समीक्षविधां बुधैः॥ ३॥
कर्मठः साहसी धीरः निर्भीकः कवि कर्मवित्।
शुद्धभावयुतः कर्ता ग्रन्थानां सुसमीक्षकः॥ ४॥
भाष्यकर्ता हि ग्रन्थानां-वीरशासन प्रसारकम्।
वाङ्मयाचार्ययुगवीरं प्रणमामि सदा मुदा॥ ५॥

डॉ. नेमिचन्द्रो जैनः प्राचार्य
गुरूकुल खुरई

भावाञ्जलिः

श्रीयुक्तः प्रतिभायुतः सुसरलो यो नैष्ठिको भास्वरः।
नैपुण्यं वहतिस्म ईक्षणविधौ नैकेषु शास्त्रेषु यः।
श्रुतदेवीतनयोबुधः जिन-गवी सेवाव्रती साधकः
आचार्यो मुख्तार पण्डितमणिः जयता च चिरं भावकः॥ १॥
श्रीमद् जुगलकिशोराय 'युगवीर'-यशस्विने।
शब्दरूपो मया शुद्धो भावाञ्जलिः समर्प्यते॥ २॥

-डॉ. भागचन्द्रो जैनो 'भागेन्दुः'
निदेशकः
राष्ट्रीय प्राकृताध्ययन संशोधन संस्थानस्य
श्रवणबेलगोला

सरसावा के संत तुम्हे शत-शत प्रणाम

डॉ. कुन्दन लाल जैन, दिल्ली

यहां उपस्थित जन समूह सरसावा क्या है, कहाँ है, क्यों प्रसिद्ध है इससे सर्वथा अपरिचित होगा। यह सरसावा एक कस्बा है। उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले की एक तहसील है। सहारनपुर से 10-15 कि.मी. दूर रेल्वे स्टेशन है तथा बसों से भी यहां पहुंचा जा सकता है। प्रसिद्ध इसलिए है कि यहाँ जैन पुरातत्व, इतिहास एवं साहित्य के परमपुरोधा स्व. बाबू जुगलकिशोर जी मुख़्तार पैदा हुए थे, जिन्होंने जैन समाज को वीर सेवा मंदिर जैसी सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक संस्था दी, अनेकान्त जैसी अनेकों में शिरमौर एक मासिक शोध पत्रिका दी, जिसके पढ़ने के लिए प्रबुद्धजन लालायित रहते थे। प्रत्येक मास की 4-5 तारीख तक पत्रिका नहीं पहुंचती तो लोग बिलबिलाने लगते थे और चिट्ठियों का ढ़ेर लग जाता था कि पत्रिका क्यों नहीं पहुंची? उस समय 'अनेकान्त' जैन बुद्धिजीवियों तक ही सीमित नहीं था, अपितु जैनेतर शोधार्थी लोग भी बडे शौक से कोई नवीन खोज जानने के लिए लालायित रहते थे। उस समय का 'अनेकान्त' जैन साहित्य की नवीनतम शोध सामग्री से भरपूर क्रान्तिकारी विचारों से भरपूर रहता था, लोग उसकी प्रतियां इकट्ठी कर वार्षिक फाइलें तैयार कर बहुमूल्य धरोहर की भांति सम्हाल कर रखते थे। मेरे पास भी कई वार्षिक फाइलें 'अनेकान्त' की मौजूद हैं, जिनमें आज जैन ऐतिहासिक शोध के लिए सामग्री मिल जाती है और सर्वथा नवीन-सी लगती है। वह आज की शोध खोजों में सहायक होती है, साथ में पत्रिका के संपादक स्व. बाबू जुगलकिशोर जी मुख़्तार की समाज सुधार की साहित्यिक शोध-खोज और विकास की एव अन्य समाज एवं साहित्य संबंधी उपयोगी टिप्पणियां सटीक और सप्रमाण निर्भीक भाषा में लिखी जाती थीं, जिन्हें पढ़कर जिज्ञासुजनों की आंखें खुल जाती थीं। उस समय उसकी ग्राहक संख्या बहुत अधिक थी।

स्व. मुख्तार सा. ने अपनी वकालत से अर्जित द्रव्य द्वारा वीर सेवा मंदिर के भवन का निर्माण कराकर उत्तम लायब्रेरी से युक्त संस्था बनाई थी, जिसमें उत्तम कोटि के जैनाजैन ग्रंथों का भण्डार था, विभिन्न प्रकार के कोष ग्रंथ विद्यमान थे। स्व. मुख्तार सा. स्वामी समन्तभद्र को भगवत्स्वरूप स्वीकार करते थे तथा उनके साहित्य को साक्षात् महावीर की दिव्य ध्वनि स्वरूप मानते थे। मूल रूप में वीर सेवा मंदिर, समन्तभद्राश्रम के नाम से दिल्ली करौल बाग में प्रस्तावित हुआ था और कई वर्षों तक 'समन्तभद्राश्रम' के नाम से ही विख्यात रहा। इसके पीछे एक साहित्यनुरागी सज्जन का विशेष सहयोग था जिनका नाम याद नहीं आ रहा है। (शायद रामदयाल जी था)

दिल्ली से चलकर सरसावा में यह संस्था वीर सेवा मंदिर के नाम से विख्यात हुई और शोधार्थी एवं साहित्यानुरागी सहस्त्राधिकजनों ने यहां बैठकर अध्ययन स्वरूप स्वाध्याय तप की आराधना की है। वीर सेवा मंदिर का भवन मेन रोड पर अवस्थित था और उस परिसर का प्राकृतिक सौन्दर्य जिन्होंने देखा, वे आनन्द विभोर हो उठते थे, मैं तो छः माह तक वहां के स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करता रहा। मुख्य द्वार बड़ा चौड़ा और विशाल था जिससे हाथी, बस आदि बड़े वाहन गुजर सकते थे, यहां काफी बड़ी भूमि का विशाल परिसर था, जिसके चारों ओर ऊंची चार दीवारी थी। सन् 1946 में यहां बह्मा, विष्णु, महेश रूप अथवा सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय की भांति बाबू स्व. जुगलकिशोर जी मुख्तार, पं. डॉ. दरबारी लाल कोठिया 'न्यायाचार्य' और स्व. पंडित परमानंद जी की त्रिमूर्ति जैन साहित्य और जैन धर्म के अनुसंधान और परिस्कार में तल्लीन रहती थी।

मैं सन् 1946 के अप्रैल मास के अंत में ग्रीष्मावकाश पर स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी से घर (बीना) आया तो घर का ही होकर रह गया। घर आकर गृहस्थी को जंजीरों में जकड़ दिया गया और जब गलफंद गले पड़ गया तो उसके निर्वहण हेतु कुछ आजीविका भी चाहिए, फलतः स्याद्वाद, महाविद्यालय के स्वर्णिम, सुखद और ज्ञानाराधना स्वरूप विशुद्ध वातावरण को भूल गृहस्थी की चक्की में जुतना पड़ा, फलस्वरूप ग्राम के स्वनामधन्य शीर्षस्थ मनीषी, देशप्रेमी पं. बंशीधर जी व्याकरणाचार्य जी की शरण में पहुंचा

और उनसे नौकरी हेतु निवेदन किया, इससे पूर्व स्व. पंडित जी से कभी भी भेंट नहीं हुई थी, पर वे हमारी पारिवारिक स्थिति से भली भांति परिचित थे। उसी समय आदरणीय कोठिया जी छुट्टियों में बीना आये हुए थे। स्व. पंडित जी ने उनसे मेरी नियुक्ति की अनुमति मंगा ली। 'सूरा क्या चाहे? दो आंखें' माँ बड़ी रोई-धोई और बोली बेटा यहां की पाठशाला में भी जगह है और लोग तुम्हें बुला रहे हैं, अतः यहीं रह जाओ पर मैंने बड़ी बेरहमी से अपनी ममतामयी मां को कहा कि मां! यहां तो (बीना) सोना भी बरसे तो नहीं रहूंगा और बाहर मुझे भीख भी मांगना पड़े तो स्वीकार कर लूंगा। बेचारी मां निरुत्तर थी, निपट अकेली थी, विधवा थी, बड़े बेटे को खो चुकी थी, अतः उसकी मर्म व्यथा वह ही समझ रही थी, पर परम पूज्य स्व. मामाजी के (पं. मनोहरलाल जी बरुआसागर बाद में कुरवाई) समझाने पर मौन रह गई और मैं अपना बिस्तर बोरिया बांधकर पठानकोट एक्सप्रेस में शाम 6 बजे बीना से सरसावा के लिए चल दिया। नई-नई उमर थी कुछ देखा भाला था नहीं और अंधकार में भटकता हुआ सा रेल में जा बैठा और जैसे-तैसे पूंछते-पाछते सरसावा स्टेशन उतर गया। स्टेशन से वीर सेवा मंदिर करीब 2-3 मील दूर पड़ता था। तांगे से जा पहुंचा वह दिन था 10 जून 1946 का आद. कोठियाजी को मार्ग में कहीं और रुकना पड़ा होगा। मेन गेट से दाईं तरफ को विशाल भवन था जिसमें सर्वप्रथम मुख्तार सा का दफ्तर था और उससे लगा हुआ ही विशाल हाल था जिसमें विशाल पुस्तकालय ग्रंथों से भरी अलमारियों से सुशोभित हो रहा था। मैं जैसे ही पहुंचा तो स्व. मुख्तार सा. बाहर आये मैंने अपना परिचय दिया और आद. कोठिया जी की चिट्ठी मुख्तार सा. को सौंप दी। मुख्तार सा. ने तुरन्त ही विशाल द्वार के बगल में स्थित कमरों में से एक कमरा खोल दिया और कहा कि आप यहां रहिए, मैंने अपना सामान उस कमरे में धर लिया। मुख्तार सा. स्नेह भरी वाणी से बोले - नहा धोलो और मंदिर जाकर खाना खाओ वहां रहतूनाम का रसोईया रहता था उसे मुख्तार सा. ने भोजन के लिए कह दिया। वह रसोइया खाना बनाने में बड़ा चतुर था, वह चकले बेलन का प्रयोग नहीं करता था वरन् हाथ से ही छोटे-छोटे नरम फुलके खिलाता था। भोजन खर्च की कोई निश्चित राशि नहीं थी, जो खर्च होता था मुख्तार सा. उसका हिसाब रुपये-पैसे पाई-पाई से लिखते थे और

महिने के अंत में रुपया अना पाई के रुप में जोड़कर काट लेते और शेष वेतन दे देते थे। पहले वेतन के साथ किराया भी दिया था।

मेरे कमरे में एक पुराना सा पुराने टाईप का चर्खा रखा था, चूंकि मैंने चर्खा काता था, अत: वह चर्खा मुझे अच्छा लगा और उस पर हाथ आजमाई करने लगा। आगे चलकर गांधीवादी पेटीवाला खरीद लिया जो आज भी मेरे पास सुरक्षित है मेरे पौत्र-पौत्री एवं धेवते-धेवती उस चर्खे को देखने के लिए लालायित रहते हैं, सूत कैसे निकलता है, यह जानने को उत्सुक रहते हैं। इस चर्खे से मैंने सेरों सूत काता है नमूने के लिए अभी भी कुछ गुत्थियां घर में रखी हैं पर मुझे हार्दिक खेद है कि मैंने जो सूत काता वह गांधीवादी कार्यकर्ताओं को सदुपयोग हेतु दिया पर मुझे उसका कुछ भी श्रेय नहीं मिला सका अत: खद्दरधारियों के प्रति मन में ग्लानि सी हो गई, इतना सब तो सरसावा के बारे में हुआ अब सरसावा के संत श्री जुगलकिशोर जी के विषय में सुनिये

जुगल किशोर जी का जन्म मगसिर शुक्ला एकादशी वि. सं. 1934 तदनुसार 21 दिसंबर 1877 को सरसावे के लाला नत्थूमल जी नाथूलाल नाथीमल जी के घर मातुश्री भोई देवी की कुक्षि से हुआ था, 81 वें जन्मदिनवस पर मैंने 21-12-1958 को नवभारत टाइम्स हिन्दी में उनका जीवन परिचय सचित्र प्रकाशित कराया था। बालक जुगलकिशोर जी की प्राथमिक शिक्षा सरसावा के प्राईमरी स्कूल में हुई। वे पांच वर्ष की आयु में ही उर्दू-फारसी पढ़ने लगे थे, वह युग था भी उर्दू-फारसी का, 13 वर्ष की आयु में बालक जुगलकिशोर को गुलिस्तां और वोस्तां जैसे फारसी के कठिन काव्य मौखिक याद हो गये थे। बालक जुगलकिशोर बचपन से ही बड़े मेधावी एवं प्रतिभा संपन्न श्रमशील छात्र थे उन्हें हर साल वजीफा मिलता था प्रायमरी शिक्षा समाप्तकर जुगलकिशोर जी सहारनपुर के हाई स्कूल में प्रविष्ट हो गये। घर में धार्मिक संस्कारों की इतनी अधिक दृढ़ता आस्था और दृढ़ निष्ठा हो गई थी कि वे उस कच्ची आयु में भी छात्रावास में रहते हुए नियमित पूजापाठ एवं शास्त्रस्वाध्याय किया करते थे। एक दिन एक छात्र धृष्टता वश उनके पूजास्थल पर जूते पहिने आ गया तो जुगल किशोर जी को बड़ा क्रोध आ गया और

धक्के देकर उसे बाहर निकाल दिया और जाकर हेडमास्टर से उसकी शिकायत कर दी, पर हेडमास्टर ने उनके साथ-न्याय नहीं किया। अतः वे स्कूल छोड़कर अपने गांव सरसावा में वापिस आ गये और स्वयं स्वाध्याय कर-कर के अपना ज्ञान विकसित करने लगे। बालक जुगल किशोर दस वर्ष की आयु में ही श्मशान में जाकर ध्यान लगाना सीखने लगे, वे बड़े निर्भीक ओर दृढ़ प्रतिज्ञ थे।

सन् 1899 में 22 वर्षीय तरुण जुगलकिशोर ने जैनधर्म के प्रचारक का कार्य प्रारंभ किया, पर स्वाभिमानी युवक जुगलकिशोर को यह सब अच्छा न लगा साथ ही समाज का व्यवहार भी उचित नहीं था। अत: उन्होंने सन् 1902 में मुख्तारगीरी (वकालत) की परीक्षा पास की और सहारनपुर में अपनी वकालत की प्रेक्टिस शुरु कर दी। सन् 1905 में वे देवबंद में (सहारनपुर की प्रसिद्ध तहसील तथा दारुल उलूम के लिए प्रसिद्ध) आकर अपनी वकालत करने लगे। आपकी गणना प्रतिभाशाली वकीलों में होने लगी ओर आमदनी भी अच्छी होती थी। इनकी दो पुत्रियाँ पैदा हुई थीं, पहली सन्मति, जो आठ वर्ष की होकर कराल काल के गाल में चली गई थी। दूसरी विद्यावती थी जो तब तीन मास की थी जब उसकी मां सन् 1918 में दिवंगत हो गई थी, इससे मुख्तार सा. को बड़ा धक्का लगा और वे साहित्य सेवा की ओर उन्मुख हो गये। यद्यपि वे दूसरा विवाह कर सकते थे, पर उन्होंने वह उचित न समझा और ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर साहित्यिक शोध एवं खोज में तल्लीन हो गये। धीरे-धीरे साहित्य साधना में इतने अधिक अनुरक्त हो गए कि मुख्तारगिरी के दांव पेंच ओर धन का प्रलोभन अरुचिकर लगने लगे, फलतः स्व. मुख्तार सा. ने 12 फरवरी सन् 1914 को अपनी फली-फूली प्रेक्टिस को सदा के लिए त्याग दिया और साहित्य साधना में तल्लीन हो गये। उस समय यह त्रिमूर्ति (स्व. बाबू सूरजभान जी वकील श्री ज्योतिप्रसाद जी और बा. जुगल किशोर जी) ऐसी क्रान्तिकारी विचारधारा के प्रचारक थे कि जैन समाज की कुरीतियों और भ्रष्ट धार्मिक विचारों को जमकर उजागर करते थे और लिख-लिखकर समाज को झकझोरते रहते थे। यह त्रिमूर्ति गांधी जी की विचारधारा से प्रभावित थी। अत: उनकी देश के प्रति तीव्र भक्ति जागृत हो गई। स्व. मुख्तार

सा. तो सदैव खद्दर पहिना करते थे और गांधी टोपी लगाते थे, बा. सूरजभान जी वकील को पता चला कि प्रसिद्ध जैन क्रान्तिकारी अर्जुनलाल जी सेठी जेल में अनशन पर बैठे हैं और कहते हैं कि जब तक देवदर्शन नहीं कर लेता, तब तक अन्नजल ग्रहण नहीं करूंगा, जेल में देवदर्शन की व्यवस्था कहाँ ? बाबू सूरजभान जी ने अपने इष्ट मित्रों से चर्चा की जेलर से मिले और उसे जैन आस्था और गृहस्थ के षट् कर्मों से अवगत कराया। वह इनके तर्कों से सहमत हो गया और सेठी जी की कोठरी में एक उच्च स्थान की व्यवस्था कर दी और बाबू सूरजभान जी आदि प्रबुद्ध देशप्रेमी जनों ने किसी मंदिर से मूर्ति लेकर भक्तिभाव से सेठी जी की कोठरी में विराजमान करा दी। सेठी जी प्रभुजी की प्रतिमा के दर्शन कर भाव विह्वल हो गये और बड़ी प्रसन्नता से देव दर्शन कर अन्नजल ग्रहण किया। स्व. सेठी जी जैन समाज के अनूठे रत्न थे। देश प्रेम के लिए उन्होंने बड़े-बड़े कष्ट सहे और यातनाएँ भोगीं; पर गांधीजी की विचारधारा से विचलित नहीं हुए। सेठी जी का जीवन चरित्र नई पीढ़ी के युवकों को पढ़ना चाहिए और देश भक्ति की भावना से ओत-प्रोत होना चाहिए ऐसे क्रान्तिकारी जीव का कृतघ्न जैन समाज ने कोई उपकार नहीं माना और कभी भी उनका सम्मान नहीं किया और उलटे उन्हें नास्तिक कहकर तिरस्कृत किया। अंत समय में मानसिक दृष्टि से विक्षिप्त से हो गये थे, फलतः कुछ ऐसी समाज सुधार की बातें करते थे कि रुढ़िवादी जैन समाज उन्हें हजम नहीं कर सका और स्थिति ऐसी बनी कि कोई उनके दाह संस्कार को भी तैयार न था, फलस्वरूप मुसलमानों ने उनका दाह संस्कार किया।

मुख्तार सा की देशभक्ति की भावना उनकी कृतियों में मिलती है, मेरी भावना उनकी ऐसी अमर कृति है जिसकी लक्षाधिक प्रतियां प्रकाशित हो चुकी हैं और देश की विभिन्न भाषाओं तमिल, तेलगु, कन्नड, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में अनूदित हो चुकी है। मेरी भावना इतनी उत्कृष्ट और प्रसिद्ध रचना हुई कि उससे गांधीजी भी प्रभावित हुए और उनहोंने अपनी वर्धा आश्रम में उसके कई छंद दीवारों पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखवाये थे, मुख्तार सा. की देशप्रेम की पंक्तियां निम्न प्रकार हैं-(1) बनकर सब 'युगवीर'

हृदय से देशोन्नति रत रहा करें (2) किसी अन्य कृति में वे लिखते हैं- चक्कर में विलासप्रियता में फंस मत भूलो अपना देश (3) एक रचना में धनिक संबोधन में धनिकों को देशोत्थान के हेतु प्रेरित करते हुए लिखा है- 'कल कारखाने खुलवाकर मेटो सब भारत के क्लेश' (4) एक कविता में उन्होंने लिखा है-करें देश उत्थान सभी मिल, फिर स्वराज्य मिलना क्या दूर (5) एक रचना में वे लिखते हैं-पैदा हों युगवीर देश में फिर क्यों दशा रहे दुःख पूर इत्यादि देश प्रेम के छंद उनकी कविताओं में विद्यमान हैं।

आज के इस भ्रष्ट भारत में नई पीढ़ी के युवकों को ऐसी रचना एवं कंठाग्र याद करना चाहिए, इस प्यारे भ्रष्ट भारत की भ्रष्टता में जैनियों का भी बड़ा महत्वपूर्ण योगदान हो रहा है। शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय, पोस्टल विभाग उस काल में जितने अधिक विश्वासनीय और ईमानदार माने जाते थे, आज वे सब उतने ही भ्रष्ट हो गये हैं, पतन और गिरावट की चरण सीमाओं को लांघकर आगे की ओर बढ़ते जा रहे हैं। जैन समाज में दिखावट भौंडा प्रदर्शन और आत्मख्याति की लालसा तो सीमातीत होती जा रही है। मुख्तार सा. गांधी जी के इतने अधिक भक्त थे कि जब उनकी पहली गिरफ्तारी हुई, तब मुख्तार सा. ने प्रतिज्ञा ली थी कि जब तक चरखा न कात लें, तब तक भोजन नहीं करेंगे। उस समय देश प्रेम का जो जुनून था, आज उसके सर्वथा विपरीत धारा बह रही है। उस समय लोग हंसते-हंसते फांसी पर चढ़ जाते थे आज लोग घर भरने में प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं, कुर्सियां समेटने में अपने को धन्य और सौभाग्यशाली मान रहे हैं।

यद्यपि मुख्तार सा. सन् 1907 से ही साहित्य सेवा में लग गये थे पर सन् 1914 के बाद तो वे 'गेही पै गृह में रच्यों ज्यों जल तें भिन्न कमल हैं' सदृश हो गये थे। तत्कालीन प्रसिद्ध साप्ताहिक जैन पत्र 'जैन गजट' के वे संपादक बने, तब तो 'जैन गजट' की प्रसिद्धि समाज में तथा बुद्धि जीवियों में अत्यधिक उच्च श्रेणी तक पहुंच गई थी और अपने क्रान्तिकारी विचार से सोई हुई जैन समाज को झकझोर दिया था, उन्होंने सन् 1918 तक 'जैन गजट' का संपादन अबाधगति से किया। स्व. पं. नाथूराम जी प्रेमी जो हिन्दी सत्साहित्य प्रकाशन के भीष्म पितामह माने जाते थे, उनकी कर्मठता और हिन्दी सत्साहित्य

प्रकाशन की स्व. बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी भारत के प्रथम राष्ट्रपति ने अपनी आत्म कथा में भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उनके विषय में विशेष जानकारी के लिए प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ दृष्टव्य है, जो अभिनंदन ग्रंथों की शृंखला में सर्वप्रथम है। ऐसे प्रेमी जी के आग्रह पर मुख्तार सा ने 'जैन हितैषी' का संपादन कर सन् 1919 में अपने कंधों पर धारण किया और उसे सर्वांगीण रूप से चमका दिया। प्रेमी जी और मुख्तार सा के मणि कांचन संयोग ने 'जैन हितेषी' को ऐसा चमका दिया कि आज भी लोग उसके एक-एक अंक के लिए भटकते हैं, वे बड़े भाग्यशाली हैं जिनके पास 'जैन हितेषी' की अपनी ही चमक दमक थी जिसके लिए उपर्युक्त जुगल जोड़ी श्रद्धा और आदर की पात्र है।

स्व. मुख्तार सा. ने सन् 1929 में 'अनेकान्त' मासिक पत्र की स्वयमेव संपादन और प्रकाशन दिया और उसे इतनी ऊंचाई पर पहुंचा दिया कि आज भी प्रबुद्ध और साहित्यानुरागी अन्वेषक उसकी एक-एक किरण के लिए लालायित हैं। अब तो 'अनेकान्त' की वह प्रतिष्ठा शून्यवत् रह गई है जैसे-तैसे साल में तीन-चार अंक (किरण) प्रकाशित हो जावें तो गनीमत है। ऐसे श्रेष्ठ विद्वान् साहित्य सेवक, समाज सुधारक, जैन पुरातत्त्व और इतिहास के मर्मज्ञ मनीषी की निस्वार्थ सेवाओं का समाज ने कभी भी कोई मूल्यांकन नहीं किया और न ही उनके प्रति कभी सम्मान या श्रद्धा के फूल चढ़ाए, जिससे हम उनके ऋण से उऋण हो सकें।

सहारनपुर का रुढ़िवादी जैनसमाज सदा उनसे विमुख रहा और उनका तिरस्कार करता रहा, पर सन् 50 के दशक में कुछ उत्साही युवकों ने उनके सम्मान का आयोजन किया, जिसकी रिपोर्टिंग अनेकान्त के एक अंक में हुई थी, पर उसका संपादन मुख्तार सा. ने नहीं किया था। उस श्रेष्ठ कार्य को पं. कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर ने अपनी चातुर्यमयी बुद्धि और स्वर्णिम लेखनी से केवल उसे एक किरण को इतने अधिक परिष्कृत तथा सुसज्जित रूप में प्रकाशित कराया था, जिससे मुख्तार सा. के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को भलीभांति सजा-सम्हाल कर जैन समाज को दिया था कि जो कोई उस अंक (किरण) को पढ़ेगा, उसकी सर्वाङ्गीण जानकारी में बहुत अधिक बढ़ोतरी होगी। वह

अंग मात्र ही मुख्तार सा. के सम्मान की निशानी है, आज मैं बड़ा हर्षित हो रहा हूँ, श्रद्धेय उपाध्याय जी की कृपा से उनका पुण्य स्मरण हो रहा है केवल उनके पुण्य स्मरण के लिए ही मैं यहां इस आयु में भटक कर आया हूं। मेरा स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रहता, अतः अब सगोष्ठियों, साहित्यिक चर्चाओं में भाग लेने की क्षमता घट गई है। श्रद्धेय उपाध्याय जी को विद्वानों से बड़ा अनुराग है विद्वानो को सम्मानित और पुरस्कृत करने के लिए वे समाज को प्रेरित करते रहते हैं। स्व महेन्द्र कुमार जी न्यायाचार्य का अभिनंदन ग्रंथ, प्रस्तुत कासलीवाल का अभिनदन ग्रंथ तथा स्व नेमिचन्द्र जी ज्योतिषाचार्य के अभिनंदन ग्रंथ तैयार कराने में आपका भरपूर सहयोग और शुभाषीर्वाद समाज को प्रेरित करता रहता है। तिलोय पण्णति जैसे महान् ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का श्रेय आपको ही जाता है। आगे भी कई अन्य ग्रंथों का पुनर्मुद्रण कराने के लिए आप श्रेष्ठियों को उनके धन के सदुपयोग के लिए प्रेरणा देते रहते हैं।

मुख्तार सा. संपादन कला के विशिष्ट पारखी थे, वे जो लिखते थे ऐसा सोच समझकर लिखते थे कि उनकी वाक्यावली से एक शब्द भी घटाया-बढाया नहीं जा सकता था। जैसे डॉ. ए एन उपाध्ये की प्रस्तावनाएं मूल ग्रंथों से भी अधिक महनीय और पठनीय हैं उसी तरह मुख्तार सा की भूमिकाएं (प्रस्तावनाए) आदि अत्यधिक शोध परक गंभीर अध्ययन की द्योतक हैं। डॉ. उपाध्ये ने उनके ग्रंथों की प्रस्तावनाओ की बड़ी प्रशंसा की है और किसी संशयास्पद चर्चा में मुख्तार सा से विचार-विमर्श करके ही अतिम निर्णय लिखा करते थे। मुख्तार सा और प्रेमी जी दोनों ही विद्वान् अपने समय के महान ज्ञान स्तम्भ थे। उन्होंने अपनी जो वसीयत लिखी थी वह इतिहास की महत्वपूर्ण धरोहर है, ऐसी वसीयतें दो चार ही मिलेंगी। अपनी वसीयत में कानून के मुद्दों को प्रखरता से उजाकर किया ही है क्योंकि वे स्वयं वकील थे पर उसमें साहित्यानुराग और धार्मिक प्रभावना एवं शोध शैली को बड़े ही प्रभावी ढंग से अंकित किया है वह अनेकान्त के पुराने अंक में देखी जा सकती है। इस प्रकरण में नेपोलियन बोनापार्ट की वसीयत बड़े ही ऐतिहासिक महत्त्व की है, जिसके आधार पर पं जवाहरलाल नेहरू ने अपनी वसीयत लिखी है?

सरसावा स्थित वीर सेवा मंदिर में अनेकों विद्वान् आये और गये। कोई छह माह रहा, कोई साल डेढ़ साल रहा लेकिन स्थायी रूप से रहने वाले दो ही विद्वान् थे पहले कोठिया जी और दूसरे पं. परमानंद जी। इन दोनों महामनीषियों ने वीर सेवा मंदिर की ख्याति तथा 'अनेकांत' पत्रिका के विकास और उसकी महनीयता में अभूतपूर्व योगदान दिया है। पं परमानन्द जी तो वी से मं. परिसर में ही रहते थे, उनके पास वाले कमरे में मैं रहता था। पर कोठिया जी गांव के भीतर मंदिरजी के पास वाले मकान में रहते थे, इन दोनों विद्वानों ने इतनी निष्ठा, तत्परता और लगन से जिनवाणी की सेवा की और साहित्यिक शोध के ऐसे ऐसे कीर्तिमान तथा मानदण्ड प्रस्तुत किए कि जैने विद्वान् ही नहीं, अपितु जैनेतर विद्वन्मंडली यहाँ आकर ठहरती और शोध कार्य की समीक्षा करती।

मेरे समय में वीर शासन जयंती, जिसके प्रवर्त्तक स्वयं मुख्तार सा. थे, का आयोजन हुआ था, उसमें बहुत से विद्वानों के साथ-साथ श्रेष्ठीवर्ग दिल्ली, सहारनपुर, पानीपत आदि स्थानों से पधारे थे। इनमें पानीपत के बा. जय भगवान वकील प रुपचंद गार्गीय आदि की स्मृति अवशिष्ट हैं, इनसे बाद में जब मैं दिल्ली में स्थायी रुप से बस गया तो संपर्क बना रहा। बा. जयभगवान वकील तो वी.से मं. और 'अनेकान्त' के अनन्य भक्त थे। एक विद्वान् के पुनर्स्थापन में किए गए मेरे प्रयासों के जयभगवान जी बड़े प्रशंसक थे।

उन दिनों स्वामी कर्मानन्द जी का जैन समाज में बड़ा आदर और सम्मान हो रहा था, वे भी उस समय वहां पधारे थे, स्वामी जी कट्टर आर्य समाजी थे और जैन धर्म का विरोध करते थे पर दि. जैन शास्त्रार्थ संघ, जो अम्बाला में जन्मा था और फिर मथुरा में आ गया है। उस समय उसकी समाज में बड़ी साख थी और संघ के कार्यों में समाज में जागृति आई थी, सामाजिक सुधार हुए थे, पर अब वह संस्था चौपट हो गई हैं, चूंकि मैं चौरासी में पांच वर्ष 1946 से 51 तक रहा हूँ और संघ का उत्कर्ष काल देखा है। वहां के सुसम्पन्न पुस्तकालय को देखा है पर अभी ज्ञानसागर जी महाराज के वर्षाकाल में चौरासी गया और संघ की जो दुर्दशा देखी, उससे आंखों में आंसू आ गये, अस्तु। कर्मानंद की बात चल रही थी स्वामी जी आर्य समाज के विख्यात

विद्वान् थे पर शास्त्रार्थ में उन्हें जैन धर्म की विशेषताओं का पता चला तो जैन धर्म में दीक्षित हो गये थे और क्षुल्लक पद तक पहुंच गये थे, पर क्षुल्लक पद की कठोर चर्या से विचलित होकर भ्रष्ट हो गये और फिर पता नहीं चला कि अंत क्या हुआ। उस आयोजन में सम्मिलित विद्वानों में बा. छोटेलाल जी, कलकत्ता जिन पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ही कृपा दृष्टि थीं, वहां विराजमान थे। वे कलकत्ता से वी.से.मं. को लाखों रुपयों की सहायता राशि भिजवाया करते थे। धीरे-धीरे मुख्तार सा. और छोटे लाल जी में इतना अधिक स्नेह परिवर्द्धित हुआ कि पं. कैलाशचन्द जी वाराणसी ने उसे भक्ति और भगवान के स्नेह की संज्ञा दी थी। बाद में किसी अन्य व्यक्ति के दुर्भाव से दोनों की बीच इतनी अधिक कटुता हो गई थी कि एक-दूसरे को फूटी आंखों नहीं सुहाते थे। बा. छोटेलाल जी मूर्तिकला के विशेषज्ञ थे और अपनी ईमानदारी और निष्पक्षता के लिए वे कलकत्ता में प्रसिद्ध थे। Gurry bea aussociation के वे अध्यक्ष रहा करते थे और किसी भी विवाद को निपटाने में लोग उनकी शरण में आते थे और उनके निर्णयों से दोनों पक्ष संतुष्ट होकर खुशी-खुशी वापिस चले जाते थे। इनकी (वा. छोटेलाल जी) विशेष चर्चा तथा ग्रंथ के बारे में आगे चर्चा करूंगा।

स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जी लखनऊ भी उस समय वहां कई महिनों तक रहे, वे अस्वस्थ थे शायद T.B. हो गई थी। अत: जलवायु परिवर्तन के लिए पधारे थे और साथ ही शोध और अध्ययन में तल्लीन रहते थे। इसी बीच एक और कटु प्रसंग याद आ रहा है। श्रद्धेय कोठिया जी ने न्याय दीपिका अथवा आप्तपरीक्षा का हिन्दी अनुवाद विद्वतापूर्ण प्रस्तावना सहित किया था और उसे वे अपने पूज्य पिताजी को समर्पित करना चाहते थे पर मुख्तार सा. की इस विषय में अस्वीकृति थी, परस्पर दोनों में बड़ी चर्चा और विचारों का आदान-प्रदान हुआ जो विवाद के रूप में परिणत हो गया और कोठिया जी ने अपना स्तीफा पेश कर दिया। मुख्तार सा. साहित्यानुरागी और गुणग्राही तो थे ही और कोठिया जैसा न्यायवेत्ता कोई था नहीं, अत: मुख्तार सा. उन्हें छोड़ना नहीं चाहते थे। फलत: कोठिया जी की बात मान ली गई और दोनों के मन निर्मल हो गये और वह निर्मलता इतनी अधिक बढ़ी कि

मुख्तार सा. ने कोठिया जी को दत्तक पुत्र ही बना लिया। अपनी सारी संपत्ति का अधिकारी और सारा ट्रस्ट ही उन्हें सौंप दिया। आज कोठिया जी वी. से. मं. ट्रस्ट के सर्वेसर्वा हैं और इस ट्रस्ट ने कई मौलिक कृतियों का प्रकाशन किया है। दिल्ली के लाला सिद्धोमल जी कागजी मुख्तार सा. के बड़े भक्त थे, उन्हें कागज संबंधी परेशानी नहीं होने देते थे।

वीर सेवा मंदिर की स्थापना सन् 1936 में श्रद्धेय मुख्तार सा. ने सरसावा में अपने ही भवन में की थी तथा इसके सुसंचालन हेतु 51 हजार रुपयों की स्वोपार्जित विशाल धन राशि इस संस्था को प्रदान की थी। सरसावा में यह संस्था उन्नति के चरमशीर्ष पर विद्यमान रहीं। साहित्यानुरागी, शोधार्थ विद्वानों के लिए यह संस्था साहित्य तीर्थ बन गई थी, इस संस्था के शोध पूर्ण प्रकाशनों और 'अनेकान्त' की गरिमामयी सामग्री से सारा समाज इतना अधिक प्रभावित हुआ कि वे इसे सरसावा जैसे छोटे गांव से उठाकर राजधानी में विराजमान कर देने के लिए मुख्तार सा. को फसलाने लगे, मनाने लगे, रिझाने लगे और मुख्तार सा. लोगों की चिकनी-चुपड़ी बातों में फिसल गए। यहीं से वीर सेवा मंदिर का ह्रास प्रारंभ हो गया। लगभग 50 के दशक में (निश्चित तिथि का पता नहीं) यह जैन समाज की सर्वश्रेष्ठ संस्था 'अनेकान्त' जैसी गरिमामयी पत्रिका के साथ दिल्ली में प्रतिष्ठापित हो गई थी। 16 जुलाई 1954 को उस भव्य भवन का उद्घाटन स्व. साहूशांति प्रसाद जी के करकमलों से हुआ था। शायद वीर शासन जयंती का दिन था।

आज दिल्ली के 21 दरियागंज अंसारी रोड पर स्थित इस संस्था के विशाल भवन की अपनी ही कहानी है। यहां स्व. लाल राजकृष्ण जी कोयले वाले रहा करते थे और दरियागंज के बहुत बड़े भूभाग के मालिक थे। एक नं. दरियागंज तो इनका ही था जहां मुसलमानों का कब्रिस्तान था, इन्होंने खरीद लिया था। जब इन्होंने यहां निर्माण कार्य किया तो मुसलमानों ने विरोध किया, ला. राजकृष्ण जी बड़े चतुर और व्यवहार कुशल थे, रूपये की तीन अठन्नियां भुनाने में पटु और माहिर थे। उन्होंने बड़ी चतुराई से मुल्ला-मौलवियों को पटा लिया और उनसे फतवा दिलवा दिया, जिससे कौड़ियों वाली सारी भूमि करोड़ों की हो गई। यहीं डॉ. अंसारी की बड़ी विशाल कोठी

थी, जहां गांधी जी आकर ठहरा करते थे, इससे भी इस स्थान का महत्त्व बड़ा हुआ था। नवभारत टाइम्स हिन्दी के स्वनाम धन्य विख्यात संपादक श्री अक्षय कुमार जी इसी कोठी मे रहा करते थे, नं. 7 दरियागंज में हिन्दी जगत के जाज्वल्यमान नक्षत्र जैनेन्द्र जी तथा यशपाल जैसे प्रतिष्ठित साहित्यकार रहा करते थे। हिन्दी जगत में यह त्रिमूर्ति दरियागंज की नाक थी। इनसे दरियागंज का गौरव बढ़ा। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार मुंशी प्रेमचंद्रजी जैनेन्द्र जी से मिलने यहां पधारा करते थे, जब सन् 1957 मे मैं दिल्ली आ गया तो दरियागंज में ही रहता था, फलत: इन तीनों के साथ बड़े घनिष्ठ संबंध हो गये। प्रात: काल घूमने गांधी समाधि जाते तो वहां मोहनसिंह सेंगर, विष्णु प्रभाकर, जगन्नाथ जी, ठाकुर सा. आदि कई प्रतिष्ठित साहित्यकार एक साथ बैठकर साहित्यिक, राजनैतिक तथा अन्य मनोरंजक चर्चाएं किया करते थे। चूंकि मैं 7 नं दरियागंज में रहता था अत: जैनेन्द्र जी और यशपाल जी के घर तो मेरे लिए सदैव खुले रहा करते थे, उनसे बहुत कुछ सीखा। मोहनसिंह जी सेंगर आकाशवाणी दिल्ली के हिन्दी विभाग के प्रोड्यूसर थे, जिन्होंने मेरी अनेकों शोधपूर्ण वार्ताएं आकाशवाणी दिल्ली से प्रसारित कराईं, अस्तु। मूलचर्चा वी.से मं की हो रही थीं तो ला राजकृष्ण ने अपना 21 नं दरियागंज वाला प्लाट वी.से.म की कमेटी को बेच दीं, उन दिनों बाबू छोटे लाल जी कलकत्ता बड़े प्रभावशाली व्यक्ति थे और उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे वी.से.मं. 'अनेकान्त' और मुख्तार सा. तीनों के प्रति बड़े भक्ति-भाव से समर्पित थे। उन्होंने 21 नं. दरियागंज के विशाल भवन के निर्माण के लिए स्व. साहुशान्तिप्रसाद जी से अनुरोध किया तथा समाज से अपील की, फलस्वरूप यह विशाल भवन तैयार हुआ। स्व. बाबू छोटेलाल जी दमे के मरीज थे, फिर भी मई-जून की गर्मियों में स्वयं छतरी लेकर इस भवन के निर्माण कार्य का निरीक्षण करते थे। उन्होंने एक उत्कृष्ट शोध संस्थान के अनुरूप इसका निर्माण कराया, जब विशाल भवन तैयार हो गया तो इसका उद्घाटन के बाद श्रद्धेय मुख्तार सा. सदल-बल विशाल ग्रंथागार के साथ दिल्ली आ पधारे, सरसावा की चमकती हुई काष्ठ और शीशे की अलमारियां वहीं छूट गईं और गोदरेज की स्टील की अलमारियों की पंक्ति दरियागंज भवन में अलंकृत हो गई। उनमें सरसावा का अगाध शास्त्र भंडार दिल्ली के भवन में सुशोभित होने

लगा, सरसावा में जहां शीशे से झांक कर ही ग्रंथ का पता लग जाता था वहां, यहां वे स्टील की अंध कोठरियों में सुरक्षित और व्यवस्थित कर दी गईं। जहां तक मेरा विचार है इस सब श्रमसाध्य कार्य का श्रेय स्व. पं. परमानंद जी शास्त्री को जाता है, परमानंद जी को एक-एक ग्रंथ का पता था जब कभी भी कोई ग्रंथ की जरूरत पड़ी पंडित जी ने कहा और उन्होंने बिना किसी विलम्ब के तुरन्त ही उसी ग्रंथ पर उंगली धरी और ग्रंथ निकाल कर दे दिया। वे वी.से.मं. के बड़े ही समर्पित विद्वान थे। वी.से.मं. का इतिहास पं. परमानंदजी के अवदान बिना अधूरा लगेगा, उन्हें संस्था के प्रति बड़ी लगन ओर निष्ठा थी। वे मुख्तार सा. के अत्यन्त विश्वासपात्र थे, पर दिल्ली के वी.से.मं. के अधिकारियों ने उनके साथ जो दुर्व्यवहार किया, वह समाज के लिए निश्चय ही शर्म और कलंक की बात है। वृद्धावस्था में वे बड़ी निरीह स्थिति में दिवंगत हुए। उनकी पत्नी तो सरसावा में ही दिवंगत हो गई थी। एक बच्ची जिसका नाम सरोज था, उसका विवाह यहीं मेरठ के आस-पास कहीं कर दिया था। केवल दो लड़के थे अशोक और गुलाब वे यहीं-कहीं दिल्ली में रह रहे हैं। गुलाब तो शायद शाहद्रे में घर जंवाई बन गया है। पं. जी की अपनी अच्छी लायब्रेरी था तथा शोध परक अप्रकाशित सामग्री और नोट्स वगैरह बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विपुल मात्रा में थे, जिन्हें गुलाब ने कुछ मूल्य लेकर बेच दिया है। सन् 1946 में सरसावे में था, तब इन छोटे-छोटे बच्चों के साथ खूब खेला करता था, मुझे बच्चे बहुत ही प्रिय हैं। अभी भी इस 73 वर्ष की आयु में अपने पोते-पोतियों के साथ खेलकर स्वयं ही प्रसन्न और स्वस्थ रहने का प्रयत्न करता हूँ तथा बच्चे भी प्रसन्न रहते हैं।

बा. छोटेलाल जी और स्व. मुख्तार सा. के बीच वैमनस्य के कारण दरियागंज वासी एक व्यक्ति थे, जो बड़े ईर्ष्यालु और व्यवहार कुशल थे, उन्हें इन दोनों का भक्तिभाव रुचिकर न लगा और इनके संबंधों को दूषित कर दिया। चूंकि उनका स्वर्गवास हो गया है अतः नामोल्लेख करना नैतिक नहीं है पर उनमें धूर्तता कूट-कूटकर भरी थी, वे संस्था में अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहते थे। उसे हथियाना चाहते थे। जब मैं जुलाई 1957 में दिल्ली शासकीय सेवा में आ गया तो वी.से.मं. के प्रति सम्मान होना स्वाभाविक ही

था। पं. परमानंद जी से मिला-जुला करता था और कुछ लेख लिखा करता था तथी 1960 के लगभग मैंने दिल्ली के शास्त्र भंडारों में स्थित पांडुलिपियों को Cataloges का कार्य शुरु कर दिया था, वहां से जो महत्त्वपूर्ण शोध सामग्री मिलती, उसकी चर्चा में जैन पत्रों को करता तथा शोध पूर्ण लेख 'सन्मति संदेश' में प्रकाशित करता, जिन्हें देखकर स्व. मुख्तार सा. बड़े खुश होते और मुझे बुला लिया करते और कुछ काम भी कराते। सन् 1946 की अपेक्षा अब तक ज्ञान में कुछ परिवर्द्धन भी हो गया था तथा परिपक्वता आ चली थी। मैंने जैन इतिहास और पुरातत्त्वकों ही अपना लक्ष्य बनाया और उसी पर आज तक चल रहा हूँ। इन दिनों मुझे मुख्तार सा. का जो भी ग्रंथ प्रकाशित होता, उसकी एक प्रति अपने हस्ताक्षरों सहित मुझे अवश्य ही देते। ऐसी उनकी प्रदत्त बहुत-सी किताबें मेरे पास चिन्तामणि रत्न के समान सुरक्षित हैं। कभी-कभी मन के किसी कोने में हूक-सी उठती है कि काश! सन् 1946 में वी.से.मं. न छोड़ा होता तो जैन शोध खोज में और भी अधिक प्रगति कर पाता। ऐसा सुन्दर शोधपूर्ण ग्रंथों से भरा-पूरा पुस्तकालय जैन समाज में अन्यत्र दुर्लभ था। इसकी ख्याति, सुनकर सभी जैन-जैनेतर लोग यहां आते रहते और शोध कार्य करते रहते। अब यहां से बहुत से बहुमूल्य ग्रन्थ चले गये हैं। वी.से.मं की वर्तमान स्थिति से रोना आता है, पर क्या करें, अतीत की पुण्य स्मृतियों से ही संतोष करना पड़ता है। मुख्तार सा. जैसा दिव्य जीवन बहुत ही कमलोगों का रहा होगा। वे सर्वथा निर्व्यसनी थे, यदि कोई व्यसन भी था तो केवल ग्रंथों का, उनकी जीवन चर्या सवस्त्र मुनितुल्य थी। मुख्तार सा. मनुष्य थे अतः कुछ मानवीय दुर्बलताएं होना स्वाभाविक हैं, पर उनके सद्गुणों के आगे सारी दुर्बलताएं छिप जाती थीं। लोग उनकी दुर्बलाताओं को नगण्य मानते थे। उनका शरीर सुगठित और सुंदर था, 85 वर्ष की आयु तक कठोर परिश्रम किया करते थे। सरसावा में देखा है कि उनकी टेबिल शोधग्रंथों से पटी रहती थी और वे प्रतिदिन 16-16 से 18-18 घंटे तक शोधरूप लेखन कार्य में व्यस्त रहते थे, दिल्ली आकर उन्होंने अपनी भूल को समझा और पछताते रहे। जैने समाज या वी.से.मं. की कार्यकारिणी के सदस्य इतने कृतघ्न निकले कि अंतिम दिनों उनकी दैनिक परिचर्या के लिए एक नौकर तक की व्यवस्था न कर सके। मैंने देखा है कि वे अपना सारा काम

स्वयं अपने ही हाथों करते थे, कोई सहायक नहीं था। अंतिम दिनों में वे वर्तमान वीर सेवा मंदिर भवन की इतनी ऊँचाई की सीढ़ियाँ उतरकर मंदिर जाते और अपनी बहिन जयवंती के यहां भोजन कर उतनी ही सीढ़ियाँ चढ़कर वी.से.मं. जा विराजते। जब उनकी शक्ति क्षीण होने लगी और यह रोज-रोज उतरा-चढ़ी से दुखी हो गये तो एटा में अपने भतीजे श्रीचंद जी के यहां चले गये और लगभग ९० वर्ष की आयु में दिवंगत हो गये।

मुख्तार सा. की कृतियों का आंकलन बड़ा कठिन लगता है। उन्होंने अन्य विद्वानों की भांति अपनी कृतियों की Bilography तैयार नहीं की, फलतः उनके संपूर्ण साहित्य सागर का आंकलन अब कठिन सा लगता है। उनके क्रान्तिकारी एवं समाज सुधारक आलेखों का संकलन 'युगवीर निबंधावली' शीर्षक से प्रकाशित कर वी.से.मं. ट्रस्ट ने बड़ा ही उपयोगी कार्य किया है पर अब वह ग्रंथ अलभ्य है, यह कई भागों में छपा है "पुरात जैन वाक्य सूची" शीर्षक महान् ग्रंथ कोष रूप में तैयार करना, यह मुख्तार सा. जैसे विद्वद्वरेण्य ही कर सकते थे, इसमें प्राकृत भाषा के 64 ग्रंथों और 48 टीकाओं से उद्धृत लगभग 25 हजार से अधिक पद्यवाक्यों की अनुक्रमणिका है। इसकी शोध प्रस्तावना और प्रो. कालिदास नाग के प्राक्कथन तथा डॉ. ए.एन. उपाध्याय की भूमिका से ग्रंथ का मणिकांचन संयोग बन गया है। इस तरह का महत्वपूर्ण गंथ 'लक्षणावली' है जो अनुसंधित्सुओं के लिए बड़ा ही उपयोगी है, स्वामी समन्तभद्र पर लिखा उनका शोधपूर्ण ग्रंथ इतिहास की अनेकों गुत्थियों को सुलझाने में समर्थ है, स्वामी समन्तभद्र की सभी कृतियों का अनुवाद, आलेकन एवं महत्वपूर्ण शोध 'परक' प्रस्तावनाओं ने उनकी गरिमा और वैदुष्य को प्रमाणित किया। "रत्नकरण्डश्रावकाचार" की विस्तृत प्रस्तावना, पढ़कर तो ऐसा लगता है कि स्वामी समन्तभद्र मुख्तार सा. के रोम-रोम में समाये हुए हैं। संस्कृत प्रशस्तिसंग्रह प्रथम भाग में अनेकों अनुपलब्ध संस्कृत जैन ग्रंथों की प्रशस्तियां संकलित कर उनमें स्थित राज्य, श्रावक, आचार्य, ग्राम नगर आदि की सूचियां शोधकों को बड़ी ही सहायक होती है। "युक्त्यनुशासन" और "समीचीन धर्मशास्त्र" जैसे ग्रंथों का अनुवाद तो किया ही है, उनकी विस्तृत शोध पूर्ण प्रस्तावनाएं बड़ी ही महत्वपूर्ण हैं।

'लक्षणावली' के कई भाग कोष ग्रंथ का काम देते हैं। 'युगवीर भारती' में उनकी हिन्दी रचनाओं का अच्छा संग्रह है और 'मेरी भावना' एक अकेली ही कृति ने उन्हें अजर-अमर बना दिया है, जिसका प्रकाशन लाखों की संख्या में हुआ है तथा वह अनेकों भाषाओं में अनूदित हुई है। पं. आशाधर जी विरचित! 'अध्यात्म रहस्य' का हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावना महत्वपूर्ण है। श्री रामसेनाचार्य प्रणीत तत्वानुशासन (ध्यानशास्त्र) का हिन्दी अनुवाद और मौलिक गवेषणात्मक प्रस्तावना भी अनुसंधित्सुओं को लाभदायक है।

मुख्तार सा. की विशेषता थी कि वे प्राचीन हस्तलिखित पोथियों और गुटकों की तलाश में रहते थे और जो कोई उत्कृष्ट कृति मिल गई, उसकी अन्य दूसरी प्रति विभिन्न भंडारों से मंगाते और उनका गंभीर अध्ययन कर तुलानात्मक पाठ भेद ढूंढ़ते, फिर शुद्ध पाठ को स्वीकार कर उसका अनुवाद करते और अनुवाद के समय ग्रन्थांतर, आचार्य, ग्राम, राजा, श्रावक आदि का उल्लेख मिलता तो उसी आधार पर खोज-शोधकर विस्तृत मौलिक प्रस्तावना लिख डालते। वे प्राय: वी.से मं. की आर्थिक स्थिति सुधारने हेतु पर्यूषण पर्व, महावीर जयंती, आष्टान्हिका आदि के समय विशिष्ट निमंत्रण पर प्रतिष्ठित व्यक्तियों की सद्भावना को परख कर शास्त्र प्रवचन हेतु जाते ओर वहां के शास्त्र भंडार टटोलते और कोई-कोई नवीन ग्रंथ ढूंढ लाते। इस तरह उनके पास हस्तलिखित पांडुलिपियों का बड़ी मात्रा में संकलन हो गया था जो वी.से.मं में अभी विद्यमान है।

एक बार कानपुर के प्रसिद्ध हकीम श्री कन्हैया लाल जी के आग्रह पर शास्त्र प्रवचन हेतु कानपुर पधारे, हकीम जी के मकान के नीचे एक पंसारी की दुकान थी, जब वे मंदिर जी के लिए जा रहे थे तो उन्होंने पंसारी को एक हस्तलिखित ग्रंथ के पन्ने फाड़कर उनमें सोंठ, हल्दी, मिर्च की पुड़िया बनाते देखा, उनकी पैनीदृष्टि ने ताड़ लिया कि कोई महत्वपूर्ण कृति होनी चाहिए। वे तुरन्त ही पंसारी के पास जाकर हाथ जोड कर बोले भैया यह तो जिनवाणी है, जिसकी आप यह दुर्दशा कर रहे हो। मैं तुम्हें पुड़िया बांधने के लिए बहुत से अखबार लाकर देता हूँ। तुम यह सारा बस्ता मुझे दे दो और कुछ कीमत लेना चाहते हो तो वह भी ले लो। पंसारी भोला था और हकीम जी का

किरायेदार था और मुख्तार हकीम जी के मेहमान थे। उसने निःसंकोच वह बस्ता मुख्तार सा. को दे दिया, बदले में मुख्तार सा. ने उसे कुछ पैसे देने चाहे पर उसने मना कर दिया। मुख्तार सा. बस्ता लेकर मंदिर चले गये और वहां से बहुत से पुराने अखबार खरीद लाये और पंसारी को दे दिये। भोजनोपरांत दोपहर जब उस बस्ते को टटोला तो उसमें बहुत-सी कृतियां मिलीं और एक ऐसी भी कृति मिल गई, जिसकी उन्हें वर्षों से तलाश थी। उनकी प्रसन्नता और आनन्द का अनुभव वे ही कर पा रहे थे, यही उल्लास और आनन्द उनके दीर्घजीवी होने का कारण रहा। यही स्थिति मेरी रही और ऐसे ही आनन्द और उल्लास एवं हर्ष का अनुभव मैंने भी किया है और बहुत सी पोथियां तथा गुटके संकलित किए हैं। ऐसी अनहोनी कृतियां जब अचानक मिल जाती है तो इतना अपार हर्ष होता हे कि यह भुक्तभोगी ही समझ पाता है। मानों चिन्तामणि रत्न मिल गया हो! मेरी इस आयु का राज भी यही है। मुझे समय-समय पर ऐसी आनन्दानुभूतियां हुई हैं।

शत्रोरपि गुणा ग्राह्या दोषा वाच्या गुरोरपि।

शत्रु के भी गुण ग्रहण करने चाहिए और गुरु के भी दोष बताने में संकोच नहीं करना चाहिए।

- वेदव्यास (महाभारत, विराट पर्व, ५१।१५)

नात्यन्तं गुणवत् किंचिन्न चाप्यत्यन्तनिर्गुणम्।
उभयं सर्वकार्येषु दृश्यते साध्वसाधु वा॥

कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसमें सर्वथा गुण ही गुण हों। ऐसी भी वस्तु नहीं है जो सर्वथा गुणों से वंचित ही हो। सभी कार्यों में अच्छाई और बुराई दोनों ही देखने में आती है।

- वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १५।५०)

कुछ संस्मरण

डॉ. (पं.) पन्नालाल साहित्याचार्य, जबलपुर

स्वर्गीय पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार जैन श्रुत के अद्वितीय विद्वान थे स्व-संपादित ग्रंथों के ऊपर उनकी लिखित प्रस्तावनाएँ सर्वमान्य होती थीं। आप इतिहास के अप्रतिम विद्वान थे। माणिकचन्द्र ग्रंथमला से प्रकाशित संस्कृतटीका युक्त रत्नकरण्डश्रावकाचार के ऊपर आपने जो ऐतिहासिक प्रस्तावना लिखी थी। वह परवर्ती विद्वानों के लिए मार्गदर्शक हुई है।

आपने जिनवाणी के प्रकाशनार्थ सरसावा में वीर सेवा मंदिर की स्थापना की और उसके लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। आपके दर्शन का मुझे कई बार सौभाग्य मिला है।

सन् 1944-45 की बात होगी। सामाजिक निमंत्रण पर मैं सहारनपुर के वार्षिक रथोत्सव में शामिल हुआ था उस समय वहां स्व. पं. माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य भी विद्यमान थे। उत्सव के बाद मैं अपने सहपाठी मित्र पं. परमानन्द जी शास्त्री से मिलने के लिए सरसावा गया था, संध्या के समय हम दोनों मित्र कहीं घूमने चले गये। जब रात के 9 बजे वापस आये तब श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार बोले, कहाँ चले गये थे दोनों मित्र। हम आपकी प्रतीक्षा में बैठे हैं। विषय था रत्नकरण्डश्रावकाचार के "मूर्धरूहमुष्ठि वासो, बन्धं पर्यंत बन्धनंचापि। स्थान मुपवेशनं का समयं जानन्ति समयज्ञा:" श्लोक की टीका में मैंने समय का अर्थ काल न लिखकर आचारलिखा था।

"समया शपथा/चार काल-सिद्धांत-संविद:" इत्यमर:॥ इस कोश के अनुसार समय का अर्थ आचार होता भी है सामायिक करने वाले श्रावक को सामायिक में बैठने के पहले अपने केश तथा वस्त्रों को संभाल कर बैठना चाहिए, जिससे बीच में आकुलता न हो। बैठकर या खड़े होकर सामायिक की जा सकती है॥ हाथ की मुट्ठियाँ भी बंधी हों, फैली न हो।

इस अर्थ को देखकर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और कहा की काल का वर्णन तो अगले श्लोक में एक मुक्त या उपवास के समय सामायिक विशेष रुप से करना चाहिए, दूसरे दिन प्रातःकाल उन्होंने वीर सेवा मंदिर सरसावा में ही मेरा शास्त्र प्रवचन रखा। शास्त्र प्रवचन में मैंने प्रकरण प्राप्त अनेकान्त शब्द की व्याख्या करते हुए कहा कि अनेक का अर्थ ऐसा नहीं है कि नीबू खट्टा भी है पीला भी है गोल भी है। किन्तु परस्पर विरोधी नित्य-अनित्य, एक-अनेक आदि दो धर्म ही अनेक कहलाते हैं। विवक्षा वश उन दोनों धर्मों का परस्पर समन्वय किया जाता है। व्याख्या को सुनकर आप बहुत प्रसन्न हुए। अनेकान्त में अनेक शब्द का परस्पर विरोधी दो धर्म ऐसा अर्थ करना संगत है। विरोधी नित्य-अनित्य, एक-अनेक अर्थ होते हैं।

आप समन्तभद्र स्वामी के बहुत ही भक्त थे। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद की ओर से आपका अभिनंदन करने के लिए हम पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य के साथ उनके अभिनंदन के लिए मैनपुरी गये थे। उस समय वे वहाँ विद्यमान थे। सभा में उनकी सेवा में विद्वत् परिषद की ओर से अभिनंदन पत्र पढ़ा गया, अन्य विद्वानों ने भी उनके विषय में बहुत कुछ कहा। जब वे अन्त में अपना वक्तव्य देने लगे, तब उनका गला भर आया और कहने लगे कि समन्तभद्र स्वामी ने हम लोगों का जो उपकार किया है वह भुलाया नहीं जा सकता, मुझे लगता है कि मैं पूर्वभव में उनके संपर्क में रहा हूं।

एक बार पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी ईसरी में विद्यमान थे, प्रसंगवश मैं भी उस समय वहां उपस्थित था। वर्णी जी ने आग्रह किया-सोनगढ़ के निश्चय नय प्रधान प्रवचनों को लक्ष्यकर मुख्तार जी से कहा कि आप तो विद्वान है इस द्वन्द्व को सुलझाइये, उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा जिनागम में निश्चय और व्यवहार द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दो नयों के माध्यम से व्याख्यान किया जाता है। अमृतचन्द्र स्वामी का उन्होंने श्लोक सुनाया:-

व्यवहार निश्चयौ यः प्रबुद्ध तत्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलम् विकलम् शिष्यः॥

समयसार में कुन्द्र-कुन्द स्वामी ने जहाँ निश्चयनय की प्रधानता से कथन किया है, वहां उसके अनन्तर व्यवहार नय यह कहता है, यह भी कहा

है। कुन्द-कुन्द स्वामी की इस प्रवचन शैली पर आज तक किसी ने आक्षेप नहीं किया। पर आज निश्चयनय की अपेक्षा जो प्रवचन हो रहें हैं उनमें एकान्तवाद की झलक दिखती है। इसी कारण विरोध हो रहा है। जन-सामान्य तो विशेष प्रतिभा नहीं रखते, इसलिए सब सुनते रहते हैं पर विशेष विद्वान् एकान्तवाद का विरोध करते हैं।

आदरणीय मुख्तार जी का मुझ पर विशेष प्रेम था और इसके कारण कई दुरुह स्तोत आदि की व्याख्या करने के लिए मुझे लिखते थे। "मरुदेवि स्वप्नावलि" ऐसा स्तोत है, जिसका अर्थ लिखने के लिए मुझे पत्र लिखा। मैंने संस्कृत टिप्पण देकर उसका हिन्दी अर्थ कर उनके पास भेजा, जिसे उन्होंने अनेकांत में प्रकाशित किया। "स्तुति विद्या" का अनुवाद प्रेरणाकर मुझसे लिखाया और उसे अपनी प्रस्तावना के साथ प्रकाशित किया।

एक बार अनेकान्त के मुख पृष्ठ पर दधि विलोडने वाली गोपी का चित्र प्रकाशित किया, जिसे देखकर मैंने पुरुषार्थ सिद्धयुपाय के अंत में आये:-

एके नाकर्षन्ति श्लथयन्ति वस्तुतत्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी नीति-र्मन्थान तंत्रमिव गोपी॥

इस श्लोक के आधार पर "जैनी नीति" नामक एक हिन्दी कविता लिखकर उनके पास भेजी थी। जिसे उन्होंने प्रसन्नता के साथ अनेकान्त पत्र में प्रकाशित किया था। मेरी संस्कृत कविताओं को भी अनेकान्त में बड़े प्रेम से प्रकाशित करते थे। फलस्वरुप मेरे द्वारा लिखित सामायिक पाठ जिसमें विधि पूर्वक छह अंगों का वर्णन था, आपने बड़ी प्रसन्नता से अनेकान्त में छापा था। साथ ही लिखा था कि मुझे गौरव हैं कि आज के विद्वान् भी पूर्वाचार्यों की तरह संस्कृत में रचना करते हैं।

आपने युक्त्यनुशासन, स्वयंभूस्त्रोत आदि कुछ ग्रंथों का अनुवाद कर पृथक्-पृथक् पुस्तकों में छपाया है। आपके द्वारा लिखित 'मेरी भावना' का जितना आदर देश में हुआ है उतना शायद किसी दूसरी कृति का हुआ हो।

श्री 108 उपाध्याय ज्ञानसागर जी के सान्निध्य में तिजारा में इस विद्वत् गोष्ठी का आयोजन किया गया है। यह उपाध्यायश्री कि गुणग्राही दृष्टि का प्रभाव है। क्षुल्लक अवस्था में सागर रहकर बड़ी तन्यमता के साथ जो उन्होंने ज्ञान-अर्जन किया है। उसका एक अनूठा संस्मरण है। इनके साथ श्री क्षुल्लक सन्मति सागर जी सभाओं में बड़े जोर-शोर से प्रवचन करते थे। एक दिन मैंने आपसे अनुरोध किया महाराज जी आप भी बोलिए, उन्होंने उत्तर दिया - अभी कुछ सीख लेने दीजिये, यह बोलने का विकल्प हमारे ज्ञानार्जन में बाधक हो सकता है। उनके चरणों में मेरा बारम्बार नमोऽस्तु स्वीकृत हो। इस जीवन में अब आपके दर्शन असम्भव से हो रहे हैं।

विद्यातपोवित्तवपुर्वयः कुलैः
सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः।
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः
स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम्॥

सज्जनों के लिए गुण-स्वरूप विद्या, तप, धन, शरीर, युवावस्था और उच्चकुल - ये छह दुष्टों के लिए दुर्गुण हैं, जिनके कारण विवेक के नष्ट होने पर अभिमानी और दोष-पूर्ण दृष्टि वाले होकर वे ढीठ लोग महापुरुषों की तेजस्विता को नहीं देख पाते।

-भागवत (४। ३। १७)

किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः।
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितम्॥

गुण और दोष के लक्षण बहुत क्या बताए जाएं? गुण और दोष दोनों की ओर दृष्टि जाना ही दोष है और गुण है दोनों से अलग रहना।

-भागवत (११। १९। ४५)

संस्मरण

पं. अनूपचंद न्यायतीर्थ, जयपुर

सन् 1936-37 की बात है जब मैं गुरुवर्य पं. चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ के सान्निध्य में जैन महापाठशाला-आज का दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर- में प्रवेशिका कक्षा में पढ रहा था। पंडित जी स्वयं कालेज में ही रहते थे एवं वहीं छात्रावास में भोजन करते थे। गर्मी का समय था। प्रातः जब मैं पढ़ने हेतु विद्यालय में गया सो पंडित जी के पास दो व्यक्तियों को वार्तालाप करते हुए देखा-एक व्यक्ति अधेड़-सा लम्बी मूंछों वाला, गेरुआ रंग का कुर्ता तथा टोपी लगाये तथा दूसरा सफेद कुर्ता टोपी लगाये था। धोती सहित सभी वस्त्र खादी के थे। सभी जैन ग्रंथों, ग्रंथ कर्ताओं, ग्रथ भण्डारों तथा पाण्डुलिपियों के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे थे। पंडित साहब ने मुझे भी बैठ जाने का इशारा किया और मैं भी बैठ कर उनकी बाते सुनने लगा।

पंडित जी ने कहा कि ये दोनों सज्जन दिल्ली से पधारे हैं और जैनधर्म साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। इनमें बड़े पं. जुगलशिोर जी मुख्तार हैं और दूसरे पं. परमानन्द जी शास्त्री हैं। मैंने दोनों को प्रणाम किया और आशीर्वाद प्राप्त किया-यह मेरा पहिला परिचय था।

पंडित चैनसुखदास जी ने श्री भंवरलाल जी न्यायतीर्थ, पं. श्री प्रकाशजी एवं श्री रामचन्द्र जी खिन्दूका मंत्री श्री महावीर जी क्षेत्र को बुलवाया और आमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार के ग्रंथों के देखने का प्रोग्राम बनाया तथा वहां गये। सभी वहां के विशाल शास्त्र भण्डार को देख कर आश्चर्य चकित थे। दोनों विद्वानों ने कुछ ग्रंथों को देखा तथा उनमें से कुछ पाइन्ट लिखे। ज्ञात हुआ कि मुख्तार साहब कुछ ऐसे ग्रंथों की प्राचीन पाण्डुलिपियों की खोज में है जो उनके समीक्षा ग्रंथों के लिये उपयोगी हो। दोनों ही विद्वान जयपुर में लगभग 8 दिन ठहरे और रोजाना आमेर जाकर आवश्यक जानकारी लेते रहे।

पंडित साहब ने बताया कि ये वे ही मुख्तार साहब हैं जो "युगवीर" के नाम से विख्यात है तथा सबसे प्रसिद्ध एवं प्रिय रचना "मेरी भावना" के रचयिता हैं। मुख्तार साहब सफल समालोचक एवं ग्रंथों के समीक्षाकार हैं। इनने भट्टारकों द्वारा रचित शिथिलाचार के पोषक अनेक ग्रंथों की समीक्षा कर समाज को सच्चा मार्ग दिखाया है। पं. परमानन्द जी शास्त्री भी अच्छे विद्वान् हैं जो दिल्ली में मुख्तार साहब के सहयोगी हैं तथा उनके पास 'वीर सेवा मन्दिर' में ही कार्यरत हैं। ये प्राचीन ग्रंथों की प्रशस्तियां एकत्रित कर रहे हैं जिससे जैन साहित्य के इतिहास पर पूरा प्रकाश डाला जावेगा।

इसके पश्चात् तो मुख्तार साहब को दो-चार बार जयपुर में पंडित चैनसुखदास जी से अनेक प्रकार की चर्चाऐं करते देखा। पं. परमानन्दजी सदैव उनके साथ आते थे। धीरे-धीरे दोनों विद्वानों से अच्छा परिचय हो गया। जैन साहित्य एवं पुरातत्व की खोज एवं शोध में मेरी रुचि होना इसी मिलन का परिणाम है।

बाबू छोटेलाल जी जैन भी एक ऐसे ही पुरातत्व प्रेमी थे - वे मुख्तार साहब के पूरे भक्त थे। एक दो बार तो वे स्वयं मुख्तार साहब को लेकर जयपुर पंडित चैनसुखदास जी के पास आये थे। ये सभी जैन साहित्योद्धार के कार्य को प्रमुखता देने वाले थे।

शास्त्रे प्रतिष्ठा, सहजश्च बोधः प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी।
कालानुरोधः प्रतिभानवत्त्वमेते गुणाः कामदुधाः क्रियासु॥

शास्त्र में निष्ठा, स्वाभाविक ज्ञान, प्रगल्भता, गुणों के अभ्यास से सम्पन्न वाणी, कार्य के उचित समय का अनुसरण और प्रतिभा की नवीनता - ये गुण कार्यों में मनोरथों को पूर्ण करने वाले होते हैं।

-भवभूति (मालतीमाधव, ३।११)

अनन्त जिज्ञासाओं के पुंज

नीरज जैन, सतना

बीसवीं सदी का पहला चरण एक दृष्टि से, जैन संस्कृति के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण माना जायेगा कि उसी कालखण्ड में जैन इतिहास का नाम लेने वाले विद्वानों का आविर्भाव हुआ और उसी अवधि में जैन साहित्य के पुनरुद्धार का कार्य प्रारम्भ हुआ। जैन आगम और सहित्य का मुद्रण करके प्रसारित करने की पद्धति भी लगभग उसी समयावधि में प्रारम्भ हुई, यद्यपि इसके प्रयास कुछ पूर्व से प्रारम्भ हो चुके थे।

सत्तर-पचहत्तर साल पहले का वह युग सामाजिक परिस्थितियों के हिसाब से कुछ गौरवपूर्ण या महिमा मण्डित युग नहीं कहा जा सकता। आम तौर पर समाज में अशिक्षा का अंधकार फैल रहा था और वह बुरी तरह रुढ़ियों के शिकंजों में जकड़ा हुआ था। उस समाज में नारी की स्थिति तो अत्यंत दयनीय थी। कन्या को पाठशाला भेजना छठवाँ पाप माना जाता था और ''कन्या-विक्रय'' की बलिवेदी पर दस-बारह साल की मासूम लड़कियाँ, पचपन-साठ साल तक के बूढ़े लोगों के साथ, विवाह के माध्यम से आजीवन-अभिशाप भोगने के लिये विवश थीं।

ऐसी दयनीय परिस्थितियों के बीच, शताब्दी के उसी प्रथम चरण में, जैन समाज, संस्कृति और सहित्य के पुनरुद्धार की पृष्ठ-भूमि तैयार हुई और कुछ ऐसे उद्धारकों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने अपना सारा जीवन होमकर अपनी-अपनी निश्चित दिशाओं में, और निश्चित क्षेत्रों, ऐसे महत्वपूर्ण कार्य किये, जो आज शताब्दी के अंतिम वर्ष में भी, मील के पत्थर की तरह हमारे मार्ग-दर्शक हैं और प्रेरणा-स्रोत बने हुए हैं॥ ऐसे महापुरुषों में पुण्यश्लोक की तरह प्रतिष्ठित एक नाम था हमारे परम आदरणीय श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार साहब का। उन्हीं का पुण्य स्मरण इस वार्ता का अभिप्राय है।

अदम्य और अपराजेय व्यक्तित्व–मुख्तार साहब बचपन से ही साहसी और अत्यंत लगनशील, कर्मठ व्यक्तित्व के धनी थे। कहा जाता है कि शायर, सिंह और सपूत लीक छोड़कर, अपना मार्ग आप बनाते हुए चलते हैं, इस आधार पर कहा जा सकता है कि जुगलकिशोर मुख्तार एक ऐसे ही सपूत का नाम था। सैकड़ों पुत्र मिलकर भी जिसकी बराबरी न कर पायें, ऐसा सपूत।

जैन इतिहास, साहित्य और संस्कृति के बारे में उनके मन में अनन्त जिज्ञासाएं थीं और उन्हीं के समाधान में वे जीवन भर पूरी तन्मयता, पूरी ईमानदारी तथा पूरी निस्पृहता के साथ लगे रहे। विघ्न–बाधाएं कभी उन्हें अपने लक्ष्य से विमुख नहीं कर पाईं। असहायपने का अहसास, या यात्रा–पथ का अकेलापन उन्हें कभी अनुत्साहित नहीं कर पाया। उनके संकल्प सदा अदम्य रहे और उनका सादा–सा व्यक्तित्व हर हाल में अपराजेय बना रहा।

यदि हमें बहुत संक्षेप में मुख्तार साहब के जीवन–दर्शन को रेखांकित करना हो तो हम यह कह सकते हैं कि उनकी साधना एक ओर निराकार की आराधना में निहित थी और दूसरी ओर वे साकार के उपासक भी थे। निराकार आराध्य के रूप में उन्होंने "अनेकान्त" को अपना आदर्श बनाया था और साकार उपासना के क्षेत्र में स्वामी समंतभद्र उनके उपास्य देवता थे। मुझे तो लगता है कि भगवान महावीर स्वामी के बाद, मुख्तार साहब के लिये, स्वामी समंतभद्र का ही स्थान था। समंतभद्र की चर्चा और गुणानुवाद करते वे कभी थकते नहीं थे और उन पूज्य आचार्य के स्मरण मात्र से उनके नेत्रों से प्रेम के अश्रु प्रवाहित होने लगते थे। अपने आदर्श–पुरुष के प्रति मुख्तार साहब की इस प्रगल्भता और इस कोमल भावुकता का साक्षात्कार मुझे अनेक बार हुआ है। उस समय उनकी भाव–विभोरता देखते ही बनती थी। वह किसी भी प्रकार कहने या लिखकर बताने की बात नहीं है।

मुख्तार साहब का कृतित्व दर्जनों ग्रन्थों और सैकड़ों शोधपरक लेखों के रूप में हमें उपलब्ध है, पर, मैं ऐसा समझता हूं कि गमक–गुरु आचार्यश्री समंतभद्र स्वामी के दिव्यावदान को जिन पृष्ठों पर उन्होंने बिखेरा है, वे पृष्ठ जुगलकिशोर मुख्तार के हृदय का प्रतिबिम्ब हैं, तथा समंतभद्र आश्रम, अनेकान्त–पत्रिका और वीर–सेवा मन्दिर के रूप में उनका मस्तिष्क प्रतिबिम्बित हुआ

है। अनेकान्त के प्रथम वर्ष में प्रवेशांक के प्रथम पृष्ठ पर उन्होंने अपनी जो "कामना" लिपिबद्ध की थी वह पाँच दोहों के कलेवर में बँधा हुआ उनका समग्र जीवन-दर्शन ही है-

परमागम का बीज जो, जैनागम का प्राण,
"अनेकान्त" सत्सूर्य सो, करो जगत-कल्याण।

"अनेकान्त" रवि-किरण से तम अज्ञान विनाश,
मिटै मिथ्यात्त्व-कुरीति सब, हो सद्धर्म-प्रकाश।

कुनय-कदाग्रह ना रहे, रहे न मिथ्याचार,
तेज देख भागें सभी, दम्भी-शठ-बटमार।

सूख जायें दुर्गुण सकल, पोषण मिले अपार,
सद्भावों का लोक में, हो विकसित संसार।

शोधन-मथन विरोध का, हुआ करे अविराम,
प्रेमपगे रल-मिल सभी करें कर्म निष्काम।

इतिहास और संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिये उनके मन में क्या वरीयता थी इसका परिचय इसी से मिलता है कि "अनेकान्त" के उस प्रवेशांक का पहला लेख मुख्तार साहब का वह सुप्रसिद्ध शोध लेख है जिसके आधार पर बाद में अनेक पुस्तकों का प्रणयन हुआ। उस लेख का शीर्षक है- "भगवान महावीर और उनका समय"। चौबीस पृष्ठों के इस आलेख में उन्होंने भगवान महावीर के जीवन-रस की विधि धाराओं को अद्भुत संतुलन और अपूर्व सामंजस्य के साथ प्रवाहित किया है जो मुख्तार जी के लेखन-कौशल का स्पष्ट प्रमाण है। इस लेख में महावीर-परिचय, देशकाल की परिस्थिति, महावीर का उद्धार कार्य, वीर-शासन की विशेषताएं, महावीर-सन्देश और महावीर का समय आदि अनेक उपशीर्षकों में बाँधकर उन्होंने अपने चिन्तन को सुनिश्चित आकार प्रदान किया है।

"अनेकान्त" के प्रति मुख्तार साहब की निष्ठा के बारे में हम जितना भी कहेंगे, वह थोड़ा ही होगा। उसी प्रवेशांक में महावीर संबंधी लेख के बाद

अनेकान्त पर विस्तृत सामग्री उन्होंने प्रकाशित की है। अनेकान्त-पत्रिका का प्रवेशांक निश्चित ही एक ऐसा बहुमूल्य और महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो मुख्तार साहब की समग्र भावनाओं और संकल्पों को, अधिकृत रुप से रुपायित करता है।

अनेकान्त : साध्य भी और साधना भी-अनेकान्त विद्या पर मुख्तार साहब ने बहुत गम्भीरता पूर्वक और गहराई से विचार किया था। यह अकारण नहीं था कि उन्होंने अपनी पत्रिका का नाम "अनेकान्त" रखा। उसके पीछे उनके मन की आस्था थी जो अनेकान्त को जीवन-निर्माण की संहिता के रूप में स्वीकार कर रही थी। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि - "सत्य-शोधन" का संकल्प पूरा हुआ और उन्होंने उस अनेकान्त दृष्टि की चाबी से वैयक्तिक और सामष्टिक जीवन की व्यावहारिक और पारमार्थिक समस्याओं के ताले खोलकर उनका समाधान प्राप्त किया। उनकी अनेकान्त दृष्टि की शर्तें इस प्रकार हैं-

1. राग और द्वेषजन्य संस्कारों के वशीभूत नहीं होना, अर्थात् तेजस्वी माध्यस्थ-भाव रखना।
2. जब तक मध्यस्थ भाव का पूर्ण विकास न हो, तब तक उस लक्ष्य की ओर ध्यान रखकर केवल सत्य की जिज्ञासा रखना।
3. कैसे भी विरोधी भासमान पक्ष से कभी घबराना नहीं। अपने पक्ष की तरह उस पक्ष पर भी आदरपूर्वक विचार करना और अपने पक्ष पर भी विरोधी पक्ष की तरह तीव्र समालोचक दृष्टि रखना।
4. अपने तथा दूसरों के अनुभवों में से जो-जो अंश ठीक जँचे, चाहे वे विरोधी के ही क्यों न प्रतीत हों, उन सबका विवेक-प्रज्ञा से समन्वय करने की उदारता का अभ्यास करना और अनुभव बढ़ने पर, पूर्व के समन्वय में जहाँ गलती मालूम हो वहीं, मिथ्याभिमान छोड़कर सुधार करना और इसी क्रम से आगे बढ़ना।

- अनेकान्त प्रवेशांक, पृष्ठ 21

जैन पत्रिकाओं के इतिहास का वह ऐसा संक्रान्तिकाल था जब "जैन हितैषी" का प्रकाशन बंद हो चुका था और जैन समाज में एक अच्छे साहित्यिक तथा ऐतिहासिक पत्र की आवश्यकता महसूस हो रही थी। सिद्धान्त विषयक पत्र की आवश्यकता तो उससे भी पहले से महसूस की जा रही थी। इन दोनों आावश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए मुख्तार साहब ने लगभग सत्तरसाल पहले, विक्रम संवत् 1986, ईसवीं सन् 1929 में अपने समंतभद्र आश्रम से "अनेकान्त" पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। अनेक वर्षों तक उन्हें सम्पादक, प्रूफ रीडर, डिस्पैचर और हिसाब रखने वाले अकाउण्टेण्ट आदि के सारे काम स्वयं ही करने पड़े।

अनेकान्त के लिए आर्थिक सहयोग प्राप्त करना भी मुख्तार जी की प्रबल समस्या रही। प्रथम वर्ष ही प्राप्ति से डेवढ़ा व्यय हुआ। वर्ष भर की कुल आमदनी 1678/- हुई और खर्च 2600/- हुआ। इस प्रकार पहले ही वर्ष 922/- का नुकसान उठाना पड़ा। इस पर अपनी चिन्ता बताते हुए मुख्तार जी ने लिखा-

> "अनेकान्त को अभी तक किसी सहायक महानुभाव का सहयोग प्राप्त नहीं है। जैन समाज का यदि अच्छा होना है तो जरूर किसी न किसी महानुभाव के हृदय में इसकी ठोस सहायता का भाव उदित होगा, ऐसा मेरा अंतःकरण कहता है। देखता हूं इस घाटे को पूरा करने के लिये कौन उदार महाशय अपना हाथ बढ़ाते हैं और मुझे प्रोत्साहित करते हैं। यदि नौ सज्जन सौ-सौ रुपया भी दे दें तो यह घाटा सहज ही पूरा हो सकता है।"
>
> –प्रथम वर्ष–अंतिम अंक, पृष्ठ 668

किन्तु जुगलकिशोर मुख्तार की लेखनी में बड़ी शक्ति थी। उनके अभिप्राय निर्मल और समूची दिगम्बर जैन समाज के लिये अत्यंत हितकर थे। उन्हें समाज में समझा गया और शीघ्र ही उनके अभियान में श्रीमान् और धीमान्, दोनों तरह के लोग बड़ी संख्या में जुड़ते चले गये। समंतभद्र आश्रम करोलबाग से उठकर दरियागंज में आया। उसका अपना भवन बना और "वीर-सेवा मन्दिर" का उदय हुआ। स्व. बाबू छोटेलालजी कलकत्ता, स्व.

साहु शान्तिप्रसादजी, ब्र. चन्दाबाईजी, बैजनाथजी सरावगी, श्री जुगमंदरदास जैन, सेठ अमरचन्द जी कलकत्ता, श्री मिश्रीलाल जी काला, गजराजजी सरावगी, नथमलजी सेठी, रतनलालजी झांझरी आदि अनेक महानुभावों ने समय-समय पर मुख्तार जी का भार बटाया।

बौद्धिक वर्ग में श्री नाथूराम प्रेमी, बुद्धिलाल श्रावक और ए. एन. उपाध्ये उनके प्रमुख सहायक रहे। बाद में इस सूची में श्री यशपाल जी जैन तथा डॉ. प्रेमसागर और रतनलाल कटारिया का नाम भी जुड़ा। वीरसेवा मन्दिर के शोधकार्य में और अनेकान्त के सम्पादन में पं. परमानन्दजी और पं. हीरालाल जी का नाम भी उल्लेखनीय है। अनेकान्त के पुराने अंकों को, और संस्था के प्रकाशनों को देखकर ही आज मुख्तार साहब के योगदान का तथा उनके संकल्पों का अंदाजा लगाया जा सकता है। जैन साहित्य और इतिहास के क्षेत्र में उनका जो अवदान है वह सैकड़ों सालों तक उनके यश को जीवित रखने के लिये पर्याप्त है।

मेरे अपने संस्मरण-मुझे इस बात का गौरव है कि अनेक बार मुझे मुख्तार साहब का सान्निध्य प्राप्त होता रहा है। ईसरी में पूज्य गुरुवर श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी महाराज के चरणों में कई दिन तक मुख्तार जी के साथ रहने का अवसर मिला और वीर सेवा मन्दिर में अनेकों बार उनसे मिलने और चर्चा करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरा उनसे पत्रव्यवहार भी होता रहा।

ईसरी में जब हम मिले तब उनकी मानसिकता सामान्य नहीं थी। दुर्भाग्य से उनके तथा बाबू छोटेलालजी के बीच कुछ बातों को लेकर मतभेद और मन-मुटाव उत्पन्न हो गया था जिसके समाधान के लिये दोनों ही महानुभाव पूज्य बाबाजी के पास आये थे। उस समय मैंने प्राय: उन्हें सुना बाद में दिल्ली में जब मिलना हुआ तब मैंने उनकी कालजयी कविता "मेरी-भावना" के बारे में कुछ विनय की। मेरे सुझाव थे कि "पर-धन वनिता पर न लुभाऊं" केवल पुरुषों के लिये ही उपयुक्त है जब कि मेरी-भावना स्त्री-पुरुष और छोटे-बड़े सभी पढ़ते हैं, अत: यह पंक्ति सुधारी जानी चाहिये। इसी प्रकार "धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजा का किया करें" इस पंक्ति में राजा शब्द का अब कोई अर्थ नहीं रह गया है।

मुख्तार साहब बहुत बड़े विद्वान् थे। वे हिमालय थे और उनके सामने मैं एक कंकड़ के बराबर भी नहीं था, परन्तु उनका बड़प्पन भी बेमिसाल था। उन्होंने बड़े ध्यान से मेरी बात सुनी और थोड़ी ही देर में दोनों पंक्तियों का सुधारा हुआ रूप एक चिट पर लिखकर मुझे दे दिया। अब "पर-धन वनिता" के स्थान पर "पर-धन पर-तन पर न लुभाऊं" कर दिया गया था और राजा शब्द को "शासक" से बदल दिया गया था। "धर्मनिष्ठ होकर शासक भी न्याय प्रजा का किया करें," यह बहुत सार्थक पंक्ति बन गई थी। मुख्तार साहब इस सुधार पर एक नोट अनेकान्त में लिखना चाहते थे, पर वह सम्भव नहीं हो पाया।

अंतिम दिनों में वीर-सेवा मन्दिर की गतिविधियों से उन्होंने कुछ तटस्थता धारण कर ली थी। उसके एक प्रस्तावित प्रकाशन को लेकर 2-3-1966 को एटा से उन्होंने मुझे लिखा था - "मैं आपसे यह जानना चाहता हूं कि टीकमगढ़ के श्री पं. ठाकुरदासजी ने "समंतभद्र-भारती" - की जो संशोधित प्रति अपने "प्राक्कथन" के साथ छपाने के लिये भेजी थी, वह छप गई है या कि नहीं? यदि छप गई हो तो उसकी दो या एक प्रति मुझे भिजवाने की कृपा करें। यदि वह अभी तक न छपी हो, और शीघ्र छपने की कोई आशा न हो, तो कृपया उनकी वह संशोधित प्रति, प्राक्कथन सहित मुझे देखने के लिये, शीघ्र रजिस्ट्री से भेजकर अनुगृहीत करें, जिससे यह मालूम किया जा सके कि उन्होंने कहा, क्या संशोधन किया है। इस कृपा के लिये मैं आपका आभारी रहूंगा। उक्त संशोधित प्रति और प्राक्कथन, दोनों ही देखने के बाद आपको जल्दी वापस कर दिये जायेंगे। शेष कुशल मंगल है, योग्य सेवा लिखें।

भवदीय

जुगलकिशोर

पुरातत्व और इतिहास पर काम होता रहे ऐसी सदा बलवती भावना मुख्तार साहब के मन में रही है। 1966 में श्रीमान् बाबू छोटेलालजी के स्वर्गवास के उपरान्त उनकी सामग्री को लेकर जब मैंने उन्हें पत्र लिखा तब उनका बहुत प्रेरणाप्रद पत्र मुझे मिला। 12-4-66 के उस पत्र में उन्होंने मुझे लिखा था- "बाबू छोटेलाल जी की पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री आप अपने

साथ ले आये हैं और उस पर कुछ कार्य करके यत्र-तत्र भटके-बिखरे जैन शिल्पावशेषों को प्रकाशित करते रहने का उद्योग करेंगे, यह जानकर प्रसन्नता हुई। अवश्य ही इसके लिये यथाशक्ति पूरा उद्योग कीजिये, इससे पुरातत्व की कितनी ही सामग्री सामने आयेगी, जिससे उपकार होगा जिसके श्रेयोभागी आप होंगे। कलकत्ता में अब उनके दूसरे कागज-पत्रों की और कौन जाँच-पड़ताल कर रहा है? डायरियों में से कुछकाम की बातें मिलने की जरुर आशा है। मेरे पत्रों की एक फाइल भी अलग से बनाई जानी चाहिये। जो पत्र उन्होंने दूसरों को लिखे हैं और जिनकी नकलें उन्होंने अपने पास रखी हैं, उन महत्व के पत्रों की एक फाइल भी होनी चाहिये, इससे अनेक विषयों में उनके विचारों का पता चल सकेगा और अनेक समस्यायें तथा गलतफहमियां भी हल हो सकेंगीं। ऐसे तात्कालिक पत्रों का इतिहास की दृष्टि से बड़ा महत्व होता है। मेरी राय में तो उनकी यादगार में जो स्मृति-ग्रन्थ निकाला जाने वाला है, उसमें ऐसे महत्व के पत्रों को प्रकाशित कर देना नये लेखों से ज्यादा अच्छा होगा। ऐसे महत्व के पत्र दूसरों से भी मंगवाये जा सकते हैं जो उनकी सच्ची स्मृति का प्रतिनिधित्व कर सकने में समर्थ होंगे।"

मेरा अनुरोध है कि आप "समंतभद्र का मुनि-जीवन और आपात्काल" नामक वह लेख अवश्य ही, गौर के साथ, एकाग्रचित्त होकर पढ़ने की कृपा करें, जो "स्वामी समंतभद्र" इतिहास में माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला से प्रकाशित रत्नकरण्ड श्रावकाचार की प्रस्तावना के साथ और "जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश" ग्रन्थ में प्रकाशित हुआ है।

शेष कुशल मंगल है। योग्य सेवा लिखें।

भवदीय,
जुगलकिशोर

इस प्रकार मेरा यह कहना उचित ही है कि श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार, एक ज्ञान-पिपासु, विद्या-व्यसनी, लगनशील अध्येता और धुरंधर विद्वान थे। उनकी समीक्षक प्रज्ञा और विश्लेषक-बुद्धि इतनी कुशाग्र-पैनी थी कि उन्हें "अनन्त जिज्ञासाओं का पुंज" कहना सर्वथा उपयुक्त है। हर आगमाभ्यासी चिन्तक को उनके प्रेरक व्यक्तित्व से प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये।

राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक

डॉ. ज्योति जैन, खतौली

'ईति भीति व्यापे नहीं जग में वृष्टि समय पर हुआ करे
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजा का किया करे।

रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले प्रजा शांति से जिया करे
परम अहिंसा धर्म जगत में फैल सर्वहित किया करे।'1

मेरी भावना की इन पंक्तियों में राष्ट्र के अभ्युदय की जो कामना की गयी है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। ये पंक्तियां क्यों, संपूर्ण मेरी भावना में जो राष्ट्र कल्याण की कामना की गयी है वह न केवल जैन साहित्य अपितु भारतीय साहित्य की अनुपम धरोहर है। वस्तुत: कहा जाये तो मेरी भावना सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय कविता है और मुख्तार साहब राष्ट्रीय कवि।

कवि या लेखक भविष्य दृष्टा होता है। वह जो लिखता है वह कालातीत और देशातीत होता है। मुख्तार साहब ऐसे ही कवि/लेखक थे। उनके निबंध उस समय, समय की कसौटी पर खते उतरे थे और आज भी उतर रहे हैं। उनमें राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी है। उस जमाने में जब अंग्रेजों के विरुद्ध एक शब्द भी लिखना आफत मोल लेना था, मुख्तार साहब ने सितम्बर 1921 में 'देश की वर्तमान परिस्थिति और हमारा कर्त्तव्य' जैसा लेख लिखा। जिसमें देश की हालत और अंग्रेजों के अत्याचार का विरोध किया गया था। 1947 में अनेकांत में लिखे गये राष्ट्रीय भावना से सराबोर उनके ये शब्द आज भी सत्य सिद्ध हो रहे हैं–

"भारत की स्वतंत्रता को स्थिर/सुरक्षित रखने और उसके भविष्य को समुज्जवल बनाने के लिए इस समय जनता और भारत हितैषियों का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वे अपने नेताओं को उनके कार्यों में पूर्ण सहयोग प्रदान करें। इसके लिए सबसे बड़ा प्रयत्न देश में धर्मान्धता अथवा महजबी पागलपन दूर

करके पारस्परिक प्रेम, सद्भाव, विश्वास और सहयोग की भावनाओं को उत्पन्न करने का है। इसी से अन्तरंग शत्रुओं का नाश होकर देश में शांति और सुव्यवस्था की प्रतिष्ठा हो सकेगी और मिली हुई स्वतंत्रता स्थिर रह सकेगी।"[2]

मुख्तार साहब राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत एक महान् विभूति थे। उन्होंने जनता में देश भक्ति जाग्रत करने वाले अनेक निबंध लिखे, जिनका उद्देश्य समाज, देश, राष्ट्र में वैचारिक क्रांति करना था। समाज को स्वस्थ बनाकर उसकी विकृतियों का परिहार करना, आपका उद्देश्य था। उनके इन्हीं क्रांतिकारी, राष्ट्रीय और सामाजिक विचारों के कारण डॉ. नेमीचन्द शास्त्री ने ठीक ही कहा है 'वे केवल युग निर्माता ही नहीं, युग संस्थापक ही नहीं, अपितु युग युगान्तरों के संस्थापक हैं उनके द्वारा रचित विशाल वाङ्मय वर्तमान और भविष्य दोनों को प्रकाश देता रहेगा।'[3]

मुख्तार सा. भारत के उन देशभक्तों में से थे, जिन्होंने परतंत्रता के दुःख को समझा, स्वतंत्रता का मूल्य जाना और उस दिशा में निरंतर प्रयत्न करते रहे। मुख्तार सा. महात्मा गांधी से बहुत प्रभावित रहे। गांधी जी जैसी देशभक्ति, सच्चरित्रता और जीवों के प्रति दया-करुणा का भाव अन्यत्र दुर्लभ है। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय से ही मुख्तार सा. का खादी पहनने का नियम था, साथ में वह चरखा भी कातने लगे थे। जब प्रथम बार गांधी जी गिरफ्तार हुए तो मुख्तार सा. ने नियम बना लिया कि जब तक महात्मा गांधी कारागार से मुक्त नहीं होंगे तब तक चरखा काते बिना भोजन ग्रहण नहीं करेंगे। उनका यह नियम चलता रहा तथा अब वे इतना सूत कात लेते थे जिससे उनके सारे कपड़े बन जाते थे। खादी भण्डार से सूत देकर ही वे कपड़े खरीदते थे, रुपयों से नहीं। सत्याग्रह आन्दोलन में जितने व्यक्ति भाग लेते हुए गिरफ्तार हो जाते मुख्तार सा. यथाशक्ति उनके परिवार वालों की तन मन और धन से मदद करते थे।[4] 'धनिक सम्बोधन' कविता में उन्होंने धनिकों की देशोद्धार के लिए धन देने की अपील की है। एक पद्य दृष्टव्य है-

'भारतवर्ष तुम्हारा तुम हो भारत के सत्पुत्र उदार,
फिर क्यों देश-विपत्ति न हरते करते इसका बेड़ा पार,
पश्चिम के धनिकों को देखो, करते हैं वे क्या दिन रात
और करो जापान देश के धनिकों पर कुछ दृष्टि निपात।'[5]

जैसा कि मैं ऊपर कह चुकी हूं कि युगवीर जी की सबसे लोकप्रिय कविता मेरी भावना है, जिसे बच्चों से लेकर बूढ़े तक गुनगुनाते हैं। वस्तुत: मेरी भावना एक राष्ट्रीय कविता है। कवि का यह एक छोटा-सा काव्य मानव जीवन के लिए ऐसा रत्नदीप हैं जिसका प्रकाश सदा अक्षुण्ण बना रहेगा। कवि ने इसमें विश्व बंधुत्व, कृतज्ञता, न्यायप्रियता, सहनशीलता का सुंदर चित्रण किया है।

राष्ट्रीयता का भावात्मक आधार धार्मिकता भी है। अध्यात्म एक ऐसा तत्व है जो राष्ट्र में सुख शांति और समृद्धि उत्पन्न करता है। मुख्तार सा. ने मेरी भावना में न केवल मनुष्यों अपितु प्राणी मात्र के कल्याण की बात की है-मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे....[6]

मुख्तार सा. के मौलिक निबंधों में राष्ट्र के प्रति अगाधप्रेम की धारा दिखाई देती है। अपने एक लेख में उन्होंने लिखा है-''हमें पशुबल का उत्तर आत्मबल के द्वारा सहनशीलता से देना होगा और इसी में हमारी विजय है। हमें क्रोध को क्षमा से, अन्याय को न्याय से, अशांति को शांति से, और द्वेष को प्रेम से जीतना चाहिये। हमारा यह स्वतंत्रता का युद्ध एक धार्मिक युद्ध है वह किसी खास व्यक्ति अथवा जाति के साथ नहीं बल्कि उस शासन पद्धति के साथ है जिसे हम अपने लिए घातक और अपमानमूलक समझते हैं। हमें बुरे कामों से जरूर नफरत होना चाहिए, परन्तु बुरे कामों को करने वालों से नहीं, उन्हें तो प्रेमपूर्वक हमें सन्मार्ग पर लाना है।''[7]

जैन धर्म अहिंसा प्रधान होने पर भी राष्ट्र के लिए बलिदान देने में कभी पीछे नहीं रहा है।[8] भामाशाह और आशाशाह के अवदान को कैसे विस्मृत किया जा सकता है। आजादी के आंदोनल में (1857-1947) शहीद हुये अमरचंद बांठिया लाला हुकुमचन्द जैन, उदयचंद जैन, साबूलाल वैशाखियां को कैसे भुलाया जा सकता है।[9] यहां तक कि भारत के संविधान के निर्माण में जैनों का योगदान रहा है। श्री रतनलाल मालवीय, श्री अजितप्रसाद जैन, श्री कुसुमकांत जैन आदि संविधान सभा के सदस्य थे।[10] जैन पत्र-पत्रिकाओं ने भी आजादी के आंदोलन में महत्ती भूमिका निभायी थी।[11]

राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में सामान्य संस्कृति एवं परम्पराओं का बहुत महत्व है। सामान्य संस्कृति का अभिप्राय उन आचार-विचार एवं रीति रिवाजों से है जो एक समूह के मनुष्यों को सूत्र में बांधे रखती है। सांस्कृतिक चेतना के आधार पर ही राष्ट्रीय चेतना विकसित होती है। जैनधर्म की समृद्धिशाली सांस्कृतिक परम्परायें रही हैं। जैन धर्म की मूल सांस्कृति विरासत अहिंसा हमारे राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य आधार रही है। भगवान ऋषभदेव और उनके अनुयायियों का अहिंसा सिद्धांत विश्व को सद्भावना, शांति और मैत्री का पाठ पढ़ाने वाला है। मेरी भावना के पद्य दस में अहिंसा के द्वारा सभी के कल्याण की कामना मुख्तार सा ने की है–

'परम अहिंसा धर्म जगत में फैल सर्वहित किया करे।'[12]

इसी प्रकार भारत की स्वतंत्रता उसका झंडा और कर्त्तव्य लेख में उन्होंने अहिंसा से ही सभी के कल्याण की बात कही है। 'जिनपूजाधिकार मीमांसा' लेख उस समय का बहुचर्चित लेख रहा है इसमें मुख्तार सा. ने सभी लोगों को जैन धर्म की उपासना के अधिकार का प्रतिपादन किया है। अपनी और अपनी जाति की आलोचना करना कितना कठिन है इससे सामाजिक बुराईयां दूर होकर कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है। 'जैनियों का अत्याचार' शीर्षक लेख में मुख्तार सा. ने जैनों की कमियां बतायी हैं उन्हें मुख्तार सा. जैसा दबंग व्यक्ति ही लिख सकता था।

भाषात्मक एकता राष्ट्रीयता के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भाषा किसी जनसमूह के समस्त व्यक्तियों को यह क्षमता प्रदान करती है कि उसके माध्यम से वे अपनी संस्कृति एवं आदर्श सिद्धांतों का आदान-प्रदान कर सकें। मुख्तार सा. के निबंध चाहे वे राजनैतिक हों, धार्मिक या सामाजिक हों सभी की भाषा हिन्दी रहीं है। अपने विचारों के आदान-प्रदान के लिए बहुप्रचलित भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए, यह एक सामान्य सिद्धांत है। मुख्तार सा. का सन् 1917 में लिखा 'सुधार का मूल मंत्र' लेख मानों आज की ही बात कह रहा हो 'यदि आप चाहते हैं कि हिन्दी भाषा का भारत वर्ष में सर्वत्र प्रचार हो जाये और आप उसे राष्ट्र भाषा बनाने की इच्छा

रखते हैं तो हिन्दी साहित्य का जी जान से प्रचार कीजिए, स्वयं हिन्दी लिखिए, हिन्दी बोलिए हिन्दी में पत्र व्यवहार, कारोबार, और हिन्दी में वार्तालाप कीजिए, हिन्दी पत्रों और पुस्तकों को पढ़िए, उन्हें दूसरों को पढ़ने के लिए दीजिए अथवा पढ़ने की प्रेरणा दीजिए, हिन्दी में लेख लिखिए, हिन्दी में पुस्तकें निर्माण कीजिए ...'

सर्वसाधारण में हिन्दी का प्रेम उत्पन्न कीजिए सब कुछ हो जाने पर आप देखेंगे कि हिन्दी राष्ट्र भाषा बन गयी।[13]

प्रस्तुत पंक्तियों से स्पष्ट है कि आजादी के 50 वर्ष बाद भी आज हिन्दी भाषा की समस्या जस की तस है। लेखक की यह ललकार आज भी उतनी ही सार्थक है।

भारत में विभिन्न जातियां निवास करती हैं फिर भी उनमें राष्ट्रीय एकता के भाव सदैव विद्यमान रहते हैं। मैं तो यहां तक कहना चाहती हूं कि राष्ट्रीयता के नाम पर भारत के सभी निवासी एक भारतीय बन जाते हैं। यद्यपि समय-समय पर देश में जातीयता की भावना सिर उठाती रही है, कभी-कभी तो साम्प्रदायिक दंगों जैसी भयावह स्थिति से भी देश को गुजरना पड़ा है। मुख्तार सा. ने इस बीच में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है- 'इस गृह कलह के विष बीज विदेशियों ने चिरकाल से बो रखे हैं।"[14]

सच्ची राष्ट्रीयता में किसी का शोषण नहीं होता, यहां विचार स्वातन्त्र्य और व्यक्ति स्वातन्त्र्य का दमन करने की चेष्टा नहीं की जाती। राष्ट्रीयता न परका कुछ छीनना चाहती है न अपना कुछ देना चाहती है। वह तो प्रत्येक नागरिक को न्याय के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है। मुख्तार सा. ने मेरी भावना के दो पद्यों में इसी तथ्य को उद्घाटित किया है-

देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्या भाव धरूं[15]
कोई बुरा कहे या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे
लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा भी भय या लालच देने आवे
तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पग डिगने पावे।[16]

राष्ट्रीयता राजनैतिक संचेतना के बिना अधूरी हैं। युगवीर जी ने अपने समय में धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में जो क्रांतिकारी वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार की थी, वह आज भी जीवित दिखाई दे रही है वे जहां एक ओर जैन समाज की तथाकथित बुराईयों को प्रकाश में लाये, वहीं उन्होंने सामाजिक, कुरीतियों और राजनैतिक विचारों को भी उजागर किया। यही कारण कि उनके लेख आज भी सामयिक हैं। उनके तर्कों का आज भी कोई काट नहीं है। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने शायद इसी कारण उन्हें साहित्य का भीष्मपितामह कहा है।[17]

राष्ट्र की स्थिति की उन्हें सदैव चिंता रही, देश की वर्तमान परिस्थिति और हमारा कर्त्तव्य लेख में लिखे भाव मानों वर्तमान दशा को प्रगट कर रहे हों आजकल देश की हालत बहुत नाजुक हो रही है, वह चारों ओर से अनेक आपत्तियों से घिरा है, जिधर देखो उधर से ही बड़े-बड़े नेताओं और राष्ट्र के शुभचिन्तकों की गिरफ्तारी तथा जेल यात्रा के समाचार आ रहे हैं।[18]

इस समय सरकार का नग्न रूप बहुत कुछ दिखाई देने लगा है और यह मालूम होने लगा है कि वह भारत की कहां तक भलाई चाहने वाली है, जो लोग पहिले ऊपर के मायामय रुप को देखकर या बुरके के भीतर रूप राशि की कल्पना करके ही उस पर मोहित थे, वे भी अब पर्दा उठ जाने पर तथा आच्छाइयों के दूर हो जाने से अपनी भूल को समझने लगे हैं और यह देश के लिये बड़ा शुभ है।[19]

'देश की किश्ती (नौका)' इस समय भंवर में फंसी हुई है और पार होने के लिये संयुक्त बल के सिर्फ एक ही धक्के की प्रतीक्षा कर रही है। ऐसी हालत में वह भंवर में क्यों फंसी, गहरे जल में क्यों उतारी गयी और क्यों भंवर की ओर खेई गयी, इस प्रकार के तर्क-वितर्क का, किसी के शिकवे-शिकायतें सुनने का अवसर नहीं है।[20]

सच कहा जाये तो मुख्तार सा. 'न भूतो नः भविष्यति' व्यक्तित्व के धनी ऐसे लेखक, कवि, पत्रकार, आलोचक, विद्वान्, समाज सुधारक, क्रान्ति दृष्टा और राष्ट्रवादी थे। जिन्हें न केवल जैन समाज अपितु भारतीय समाज

युगों-युगों तक याद करेगा। उनका व्यक्तित्व नारिकेल-सम था, वे सामाजिक दायित्व की रक्षा हेतु कड़े से कड़ा कदम उठाने के लिये तैयार रहते थे। उनके व्यक्तित्व में जो कठोरता थी, वह स्वभावजन्य न होकर सिद्धांतजन्य थी। अपनी राष्ट्रीय भावना के कारण वे सदा-सदा स्मरण किये जाते रहेंगे।

सन्दर्भ

1. मेरी भावना, पद्य 10
2 युगवीर निबधावली, प्रथम खण्ड पृष्ठ 429-430
3 डॉ नेमीचंद शास्त्री, पं जुगलकिशोर मुख्तार कृतित्व और व्यक्तित्व पृ. 80
4 वही-पृ 23
5 धनिक संबोधन, कविता पद्य 4
6 मेरी भावना, पद्य 5
7. युगवीर निबंधावली, प्रथम खण्ड P 213
8 विस्तृत विवरण के लिए मेरी 'स्वराज्य और जैन महिलायें, पुस्तक देखें'
9 विस्तृत विवरण के लिए 'अमर जैन शहीद' देखें,
10. विस्तृत विवरण के लिए जैन गजट में प्रकाशित आलेख संविधान सभा में जैन (17 सित 1998)
11. विस्तृत विवरण के लिए जैन गजट (12 फरवरी, 1998)
12 मेरी भावना पद्य 10
13 युगवीर निबंधावली, प्रथम खण्ड पृष्ठ 5
14. युगवीर निबंधावली, प्रथम खण्ड P 429
15. मेरी भावना, पद्य 4
16. मेरी भावना, पद्य 7
17. पं जुगल किशोर मुख्तार कृतित्व एवं व्यक्तित्व P 80
18 युगवीर निबंधावली-प्रथम खण्ड P 206
19. युगवीर निबंधावली-प्रथम खण्ड वही P 207
20. युगवीर निबंधावली-प्रथम खण्ड वही P 207

जैन-विद्या शोध के युग-पुरोधा

डॉ. नंदलाल जैन, रीवा, म. प्र.

मेरी विचारधारा को वैज्ञानिक रूप देने में मेरा अध्ययन क्षेत्र तो उत्तरदायी है ही, पर उसमें अनेक संतों एवं विद्वानों का भी योगदान है। इनमें अधिकांश आधुनिक प्राच्य या पाश्चात्य विद्या के न तो स्नातक ही थे और न विभिन्न कोटि के अध्यापक, पर वे जैन विद्या के गंभीर उपासक एवं शोधक व्याख्याता अवश्य रहे। इनमें पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' (1877-1968) भी एक हैं। ये जैन (दि.) पंडित परम्परा के द्वितीय युग (1800-1900 ई.) के विद्वान् हैं जिनमें से अधिकांश ने स्वयमेव जैन धर्म-दर्शन का अध्ययन ही नहीं किया, अपितु वे समाज पर आश्रित भी नहीं रहे। इन्होंने विकृत धार्मिक मान्यताओं एवं कुरीतियों के प्रति समाज में जागरूकता उत्पन्न की, धार्मिक शिक्षा एवं सिद्धांतों का प्रचार किया एवं अनेक संस्थायें स्थापित की। इनमें ब्र. शीतलप्रसाद, बैरिस्टर चंपतराय, जे.एन. जैनी, कामताप्रसाद जैन आदि ने तो विदेशों में भी धर्म प्रचारार्थ भ्रमण किया एवं अंग्रेजी में जैन साहित्य के अनुवाद एवं नव-साहित्य सर्जन द्वारा उसे पश्चिम में प्रसारित किया। इसी पीढ़ी के मुख्तार सा. तथा पं. नाथूराम जी प्रेमी (1881-1960) ने (दिगम्बर) जैन विद्याओं में उदात्त दृष्टि से शोधकार्य का श्रीगणेश किया और अनेक शोधपूर्ण लेखों तथा ग्रंथों के द्वारा जैनाचार्यों, जैन इतिहास एवं मान्यताओंके विषय में जन-साधारण का ध्यान आकृष्ट किया। इस युगल को ही आधुनिक जैन-विद्या शोध का युग-पुरोधा एवं प्रेरक माना जा सकता है। अपने युग के विद्वानों में ये दोनों ही विद्वान् सर्वाधिक दीर्घजीवी रहे। इससे इनके जीवन की साधना पर सात्विकता का अनुमान लगाया जा सकता है।

जैन पंडित/शिक्षक परंपरा के तीसरे युग में इनके गंभीर अध्ययन एवं शोध की टक्कर के कुछ ही विद्वान् हुए हैं। यह युगल परम्परा-संवर्धक एवं उन्नायक बनी। इसीलिये इन्हें परंपरापालकों के अनेक प्रकार के विरोध का

सामना करना पड़ा। पर ये वीर थे, और विरोधों को उदात्त भाव से सहते हुए अपनी गंभीर शोध करते रहे, जिसे अनेक विद्वानों ने आगे बढ़ाया। यही नहीं, उन्हें बाबू छोटेलाल जी कलकत्ता जैसे प्रेरक अर्थ-सहयोगी तथा अनेक शोध-सहयोगी विद्वान् डॉ. दरबारी लाल कोठिया पं. परमानंद शास्त्री भी मिले। उन्होंने जैन विद्याशोधकों की एक पीढ़ी ही तैयार की।

सरसावा में जन्मे मुख्तार सा. का कार्यक्षेत्र, सरसावा, सहारनपुर तथा दिल्ली रहा। प्रारंभ में उनका पारिवारिक जीवन सुखद रहा, पर 40 वर्ष की अवस्था में उनकी पत्नी के देहांत तथा 1920 में एक शारीरिक व्याधि के कारण उन्हें भयंकर आघात लगा, पर उन्होंने अपनी साहित्य सेवा की गति कम नहीं की। उन्होंने 1896 से लेख लिखना प्रारम्भ किया था और अपने अंतिम समय तक, 1968 तक वे उस काम में लगे रहे। लगभग सात दशक की यह साहित्य-सेवा आज जैन शोध एवं साहित्य की पुनीत धरोहर है।

श्री मुख्तार सा. ने शोध के अतिरिक्त भी, अनेक ऐसे कार्य किये, जिनसे उन्हें 'धर्मद्रोही' तक की उपाधि को झेलना पड़ा। आपकी लेखन विद्या का प्रारंभ तो 19 वर्ष की अवस्था से ही हो गया था, पर 29 वर्ष की अवस्था तक वह परिपक्व हो गई एवं अपना चमत्कार दिखाने लगी। आपने 'जैन गजट' एवं 'जैन हितैशी' के संपादन के समय सामाजिक प्रतिष्ठा पाई एवं संपादकीय प्रतिष्ठा पाई। आपने 37 वर्ष की अवस्था में सूरजभान वकील के साथ अपनी मुख्तारी छोडी और स्वयं को समाज एवं साहित्य-सेवा में एवं धार्मिक आचार-विचारों के आलोडन से आपकी विचारधारा क्रांतिकारी बनी, लेकिन सशक्त एवं प्रामाणिक रहा, कवित्व मुखर रहा जिससे अंध-विश्वास और अंध मान्यतायें दूर भागने लगीं। इसीलिए आपकी गति भी ब्र. शीतल प्रसाद जी के समान हुई। 1929 में आपने दिल्ली में 'समंतभद्राश्रम' की स्थापना की एवं शोधपत्रिका 'अनेकांत' का प्रकाशन प्रारंभ किया। उसके संपादन एवं स्वलिखित सामग्री से विद्वत् समाज में आपकी काफी प्रतिष्ठा हुई। समन्तभद्राश्रम का वर्तमान रुप 'वीर सेवा मंदिर' आपकी निष्ठा, प्रतिष्ठा एवं उत्कंठा का जीवन प्रतीक है जो आपके अवसान के बाद टिमटिमा-भर रहा है। उसे पुनर्जीवन देना जैन समाज का परम कर्त्तव्य है।

लेखन विद्या

आपकी शोधपूर्ण लेखन-विद्या के दो स्वरूप स्पष्ट हैं,

(1) सामाजिक और धार्मिक लेखन–आपने 1916 में 39 वर्ष की आयु में 'मेरी भावना' लिखी और अपनी जीवन-साधना का घोषणा-पत्र दिया। यह व्यक्तिगत ही नहीं, सार्वजनिक कर्त्तव्य पथ का भी आदर्श सिद्ध हुआ। इसके अनेक भाषाओं में अनुवाद हुए हैं और वह करोड़ों की संख्या में प्रकाशित एवं वितरित हुई है, होती रहती है और होती रहेगी।

इसके अनुरूप ही आपने समाज में व्याप्त अनेक कुप्रथाओं और धारणाओं के विरोध में शास्त्रीय आधार दिये और उनमें सुधार का बिगुल बजाया उन्होंने गृहस्थ धर्म पर अध्ययन करते-करते जैन धर्म की मूल परम्परा में आई अनेक विकृतियों का मूल खोजा और उसके लिए भट्टारक प्रथा को उत्तरदायी माना, यद्यपि इस प्रथा से जैन धर्म सुरक्षित एवं संरक्षित भी रहा। इस अध्ययन के फलस्वरूप आपने 'ग्रंथ-परीक्षा' के चार भाग लिखकर परंपरागत संस्कारों पर कड़ा आघात किया। उनके अनुसार, मूल जैन परम्परा में बहुत कुछ मिश्रण हुआ हैं। उसमें पर्याप्त संशोधन की आवश्यकता है। यद्यपि इससे उत्तर भारत में तो भट्टारक प्रथा समाप्त हो गई, पर दक्षिण भारत में यह अब भी प्रभावशाली बनी हुई है। उनके लेखन के 80 वर्ष बाद अब भट्टारकों की मयूर-पिच्छी एवं उनके प्रति किये जाने वाले अभिनंदन पर भी अंगुलियां उठने लगी हैं।

सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने अंतर्जातीय विवाहों के समर्थन में 'विवाह समुद्देश्य' तथा 'विवाह क्षेत्र प्रकाश' नामक शास्त्रीय पुस्तकें लिखीं जो अभी भी अकाट्य हैं। यद्यपि अभी भी समाज का कुछ अंश इसका विरोधी है पर यह प्रथा अब काफी प्रचलन में आती जा रही है। अब इसके अनुसरण में सामाजिक दंड लुप्त हो गया है। इसी प्रकार, आपने जिन पूजाधिकार मीमांसा के माध्यम से 'दस्सा पूजाधिकार' का समर्थन दिया और कोर्ट में साक्ष्य भी दिया। इससे स्वामी सत्यभक्त के समान आपको असफलतः जाति च्युत भी किया गया। पुनः आपने 'पूजा' पर विविध कोटि का साहित्य भी सर्जन किया।

उनके कवित्व रूप को व्यक्त करने वाली तीन पुस्तकों के प्रकाशन का उल्लेख पाया जाता है। मेरी भावना, युग भारती और वीर पुष्पांजलि। इनमें समाज सुधार एवं कर्त्तव्य की प्रेरणा है। लोगों को आश्चर्य है कि कवि हृदय युगवीर विद्रोही कैसे हुआ?

(2) **शोध परक साहित्य लेखन**–जैन विद्या शोध के युग-पुरोधा के रूप में मुख्तार सा. (1) गवेषणात्मक निबंधकार (2) भाष्यकार (3) समीक्षक (4) इतिहासकार (5) प्रस्तावना-लेखक (6) संपादन कला विशारद एवं (7) पांडुलिपि अध्येता के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। अनेक लेखकों ने उनके शोधपरक कार्यों का संक्षेपण किया है। मेरी दृष्टि में इन्हें दस बिंदुओं में विभाजित किया जा सकता है।

(1) उन्होंने आचार्य पात्र केसरी और आचार्य विद्यानंद के विषय में यह प्रमाणित किया है कि आ. पात्र केसरी अकलंक से भी पूर्ववर्ती हैं और आ. विद्यानंद अकलंक से उत्तरवर्ती हैं।

(2) 'पंचाध्यायी' ग्रंथ के लेखक के रूप में उन्होंने लाटी संहिता आदि ग्रंथों के लेखक कवि राजमल को प्रमाणित किया।

(3) उन्होंने समंतभद्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर दो-तीन वर्षों तक गंभीर अध्ययन किया और उनके समय आदि के विषय में ही प्रकाश नहीं डाला, अपितु उन्होंने उनके समग्र साहित्य पर टीका या भाष्य लिखे। 'जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश' के 32 लेखों में से 12 लेख समंतभद्र से ही संबंधित हैं।

(4) उमा स्वाति और तत्वार्थ सूत्र पर भी उन्होंने गवेषणापूर्ण अनेक लेख लिखे हैं। उन्होंने मूल तत्वार्थ सूत्र को दिगम्बर परम्परा एवं उमास्वामिकृत माना है। उन्होंने सिद्धसेनगणि के संदेहास्पद मतों एवं बारहवीं सदी के रत्नसिंहसूरि के सटिप्पण तत्वार्थाधिगम सूत्र के आधार पर तत्वार्थभाष्य की स्वोपज्ञता अमान्य की है। श्वेताम्बर विद्वानों ने इस टिप्पण का उल्लेख तक नहीं किया है। उनकी इस मान्यता पर अनेक विद्वानों ने मतभेद प्रदर्शित किया है। फूलचंद्र शास्त्री उसे गृद्धपिच्छाचार्य कृत

मानते हैं जो परवर्तीकाल में गृह उमास्वामिकृत हो गया। नाथूराम प्रेमी ग्रंथकार को यापनीय मानते हैं जबकि सागरमल जैन उन्हें पंथभेद से पूर्व दूसरी-सदी की निर्ग्रंथ परम्परा का मानते हैं। मुख्तार सा. के एतद्विषयक तर्क एवं सूचनायें उनके गंभीर अध्ययन की प्रतीक हैं। उनके शोध से ही यह विषय आगे बढ़ा है।

(5) उन्होंने मूलाचार, अनगारधर्मामृत तथा चारित्र भक्ति के दिगम्बर ग्रंथों का और आवश्यक, उत्तराध्ययन तथा प्रज्ञापनावृत्ति के समान श्वेतांबर ग्रंथों के उद्धरणों से यह बताया है कि प्रथम और अंतिम तीर्थंकरों ने तथा मध्यवर्ती तीर्थंकरों के संघ के सदस्यों की योग्यतानुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से उपदेश दिये। उन्होंने इससे यह भी संकेत दिया है जब तीर्थंकरों तक ने द्रव्य, क्षेत्र काल व भाव की स्थितियों के अनुरूप आदेश देने की परंपरा अपनाई, तब वर्तमान पीढ़ी इस परम्परा के प्रतिकूल क्यों जा रही है? आज के अनेक विद्वान् महावीर कालीन ग्रामीण संस्कृति में विकसित सिद्धांतों का वर्तमान औद्योगिक एवं नगरीय संस्कृति में पूर्णतः परिपालन का आदेश देकर जैन परम्परा के अनुकूल काम नहीं कर रहे हैं। उन्हें उनके शासन भेद एवं श्रावकाचार संबंधी लेखों से शिक्षा लेना चाहिये। इस परम्परा का पालन ही जैन धर्म की वैज्ञानिकता का प्रतीक है।

(6) श्रुतावतार कथा के माध्यम से उन्होंने 'वीर शासन जयंती' का शुभारम्भ कराकर एक नई परम्परा को प्रतिष्ठित किया इस प्रकार वे केवल परंपरा-संवर्धक एवं शोधक ही नहीं थे, वे परंपरा-प्रतिष्ठापक भी थे।

(7) उन्होंने भगवती आराधना, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा, सन्मतिसूत्र एवं तिलोयपण्णत्ति पर गवेषणापूर्ण निबंध लिखे हैं।

(8) उन्होंने अनेक ग्रंथों की समीक्षा कर 'ग्रंथ समीक्षा' के चार भाग लिखे जिनसे समाज में खलबली मची।

(9) उन्होंने एक दर्जन से अधिक ग्रंथों की शोधपूर्ण प्रस्तावनायें लिखीं।

(10) श्री गोयलीय जी ने उनकी संपादन कला और कोटि पर अच्छा प्रकाश डाला है। इस कारण उन्हें अनेक विद्वानों का कोप भाजन भी बनना पड़ा। वे अपूर्ण या बिना प्रमाण के कोई लेख प्रकाशित नहीं करते थे। पूरा लेख पढ़ने के बाद उसकी कमियों पर टिप्पणियां भी लिखते थे।

'जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश' नामक ग्रंथ में उनकी विविध कोटि की 26 कृतियों के नामोल्लेख हैं। उसके बाद 1968 तक आपकी 9 कृतिया और प्रकाशित हुई हैं। उन सबका एकत्रित संकलन एक महत्वपूर्ण कार्य होगा।

उपाधियां

उनकी शोध एवं संपादन कला से प्रभावित होकर वीर शासन जयंती, कलकत्ता ने 1950 में उन्हें 'जैन वाङ्मयाचार्य' की उपाधि दी थी। उस समय वे 73 वर्ष के थे। डॉ. ज्योतिप्रसाद जी उन्हें 'जैन साहित्य का भीष्म पितामह' मानते हैं। प्रभाकर जी उन्हें 'पथ-द्रष्टा' मानते हैं। सतीश जी ने उन्हें 'आचार्य' कहा है। कुछ लोगों ने प्रारम्भ में उन्हें 'धर्मद्रोही' की उपधि भी दी थी। आज के उपाधि एवं सम्मान बहुल युग में उनके लिए ये पदवियां नगण्य ही मानी जावेगी। वस्तुतः परंपरापोषी समाज प्रगतिशील विचारकों एवं संस्कृति संवर्धकों के प्रति उपेक्षा भाव ही रखता है। वह तो परंपरापोषकों को ही सम्मानित करता है। उसे संरक्षण में रुचि है, संवर्धन में नहीं। उदाहरणार्थ, मेरे ही तुलनात्मक लेख हस्तिनापुर, अहमदाबाद, सहारनपुर एवं किशनगढ़ आदि के विवरणों में प्रकाशित नहीं हुए। यही कारण है कि पूर्व और पश्चिम जगत की विद्वत्मंडली में दिगम्बर जैन धर्म की प्रतिष्ठा नगण्य है। यह उन्नत बने, यही कामना है, यही युगबोध है और यही युगवीर का संदेश है।

सन्दर्भ

1. जैन, नंदलाल : पं. जगन्मोहन लाल शास्त्री साधुवाद ग्रंथ, रीवा, म प्र पेज 27
2. गोयलीय, अयोध्याप्रसाद : जैन जागरण के अग्रदूत, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, 1956 पे. 240

3. जैन, सतीश कुमार : प्रोग्रेसिव जैन्स आव इंडिया श्रमण साहित्य संस्थान, दिल्ली 1976 पेज 37

4. शास्त्री, लाल बहादुर, आदि : विद्वत् अभिनंदन ग्रंथ, दि. जैन शास्त्री परिषद्, बड़ौत, 1976 पे. 247

5. युगवीर, जुगलकिशोर मुख्तार : 'जैन साहित्य और इतिहासकार विशद प्रकाश', वीर शासन संघ, कलकत्ता, 1956

6. जैन, सगरमल : 'तत्वार्थसूत्र और उसकी परंपरा', पार्श्वनाथ विद्यापीठ काशी, 1994.

क्षान्तिश्चेत्कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोस्ति चेद्देहिनां
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम्।
किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि
व्रीडा चेत्किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्॥

यदि मनुष्य के पास क्षमा है तो कवच की क्या आवश्यकता? यदि क्रोध है तो शत्रुओं की क्या आवश्यकता? यदि स्वजातीय हैं तो अग्नि की क्या आवश्यकता? यदि मित्र हैं तो दिव्य औषधियों की क्या आवश्यकता? यदि दुर्जन हैं तो सर्पों की क्या आवश्यकता? यदि निर्दोष विद्या है तो धन की क्या आवश्यकता? यदि लज्जा है तो आभूषण की क्य आवश्यकता? यदि काव्य-शक्ति है तो राज्य की क्या आवश्यकता?

-भर्तृहरि (नितिशतक, २१)

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंग न च वयः।

गुणियों में गुण ही पूजा के स्थान होते हैं, लिंग अथवा वय नहीं।

-भवभूति (उत्तररामचरित, ४।११)

जुगलकिशोर मुख्तार : सद्भावना के पर्याय

डॉ. प्रेमचन्द जैन, गंजबासोदा

बात 1954 की है, जब मैं बरेली (भोपाल) के एक गाँव गगनवाड़ा में शासकीय विद्यालय का एक शिक्षक नियुक्त हुआ था। आसपास के ग्रामों में नियुक्त प्राय: सभी शिक्षक बरेली में ही निवास करते थे। हमारे सहायक जिला शालानिरीक्षक श्री एम. पी. माहेश्वरी एक धार्मिक आचरण वाले संप्रदाय निरपेक्ष सहिष्णु प्रकृति के सदाचारी व्यक्ति थे। सायंकाल लगभग हम सभी शिक्षक उनके निवास पर एकान्त में, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर चर्चा किया करते थे। एक दिन श्री माहेश्वरी ने सुझाव दिया कि सायंकाल एक सामूहिक प्रार्थना प्रारंभ की जावे। भक्ति भाव से ओत-प्रोत अनेक प्रचलित प्रार्थनाओं के प्रस्ताव आए। चूँकि वे सभी किसी न किसी धार्मिक आस्था वाले सम्प्रदाय से सम्बन्धित थी, उन पर मतैक्य न हो सका। अंत में मैंने "मेरी भावना" का सस्वर वाचन किया तो आश्चर्यजनक रूप से सभी और हमारे शाला निरीक्षक ने एकमत से सामूहिक प्रार्थना के रूप में इसे स्वीकार कर लिया। उस समय फोटो कापी तो होती नहीं थी, अत: इस पुस्तिका की कम से कम 50 प्रतियाँ मंगवाने का दायित्व सौंपा गया उस समय मेरे अग्रज पं. ज्ञानचन्द्र जी "स्वतंत्र" सूरत में जैन मित्र के संपादक थे। मैंने तुरन्त उन्हें पत्र लिखा और उनकी सौजन्यता से हमें "मेरी भावना" दैनिक सायं प्रार्थना के रूप में हमारे आचार का एक अंग बन गयी। पं. जुगलकिशोर मुख्तार की यह एक छोटी-सी कृति ही उसी तरह उन्हें अमर रहने के लिए पर्याप्त है जिस तरह प्राचीन काव्य के क्षेत्र में नरोत्तमदास ने मात्र "सुदामाचरित" लिखकर कहानी के क्षेत्र में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने "उसने कहा था" लिखकर, बहादुर शाह जफर की "लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े बयार में" जायसी अपनी पद्मावत द्वारा, कबीर रहीम अपने कुछ दोहों साखियों के बल पर साहित्य के क्षेत्र में अजर-अमर हो गये हैं। जिस तरह प्रत्येक हिन्दू परिवार के

घर में तुलसीदास की रामायण सहज रूप से उपलब्ध रहती है और जिस तरह रामायण की चौपाइयाँ जन-जन में लोकप्रिय हैं, उसी प्रकार प्रत्येक जैन के घर में "मेरी भावना" की प्रति अवश्य मिलेगी, आबाल-वृद्ध, पुरुष-महिला सभी को मेरी भावना कंठाग्र होगी। जैन गीतों, भजनों, स्तोत्रों, स्तवन, जिनवाणी संग्रह आदि समस्त प्रकाशनों में, श्री मुख्तार जी की मेरी भावना को स्थान निरपवाद रूप से मिलता है। संभवत: कदाचित ही ऐसा कोई आधुनिक जैन लेखक हो जिसकी कोई विशेष रचना अभी तक प्रकाशित सभी जिनवाणी संग्रहों, पूजा-पाठ संग्रहों, विनती संग्रहों, स्तोत्र-स्तवन संग्रहों आदि में निरपवाद रूप से सम्मिलित की गयी हो। इस दृष्टि से मुख्तार साहब निर्विवाद रूप से बुधजन, द्यानतराय प्रभृति कवियों की श्रेणी में स्थान पाते हैं।

"मेरी भावना" प्रार्थना में सद्‌भावना विशुद्ध मानवीय धरातल पर संप्रदाय निरपेक्ष, हृदय स्पर्शी, अंतरंग के तार झंकृतकर सद्‌वृत्ति की ओर उन्मुख करने वाली एक ऐसी प्रेरणास्पद अनुपम अद्वितीय काव्यकृति है, जो प्रत्येक बालक या श्रोता को विश्वमैत्री, सत्संगति, सदाचरण, अचौर्यत्व, सत्यवादिता, संतोषामृतपान, निरभिमानिता, परोपकारता, कारुण्य-भाव, दुर्जनों के प्रति माध्यस्थ भाव, समता, कृतज्ञता, गुणग्राहिता निर्लोभता, न्यायवादिता, निर्भीकता, सर्वोदय, सर्वे सुखिन: भवंतु, सर्वत्र मांगल्यभाव, शांति, समता, प्रजावात्सल्य, अहिंसा आदि सद्‌गुणों की ओर प्रेरित करती है। कवि की भावना के अनुरूप यदि जगत के सभी जीव उक्त सद्‌गुणों के ग्राहक बन आचरणोंन्मुख हो जाये तो संसार की सभी समस्याएँ समाप्त हो जाये। वस्तुत: समाज में निर्धनता या प्रचुरता, दुर्बलता या शक्ति सम्पन्नता, नीच या ऊंच आदि की समस्या उतनी नहीं है जितनी अज्ञानतावश बुराइयों की ओर प्रवृत्त होने की है। समाज की सभी बुराइयाँ और समस्याएँ हमारे राग-द्वेष और सद्‌असद् भावों से संचालित हैं और कवि ने बुराइयों के मूल स्रोत भावों को ही परिशुद्ध करने का प्रयास किया है और विशेषता यह है कि किसी भी विशेष धर्म, धर्मगुरू, धर्मग्रन्थों का नाम लिए बिना कवि ने रामायण, महाभारत, गीता, बाइबिल, कुरान, गुरु ग्रन्थ साहिब और जैन आर्ष ग्रन्थों का सार इस छोटी सी रचना में "गागर में सागर" के समान भर दिया है। रागद्वेष कामादिक

जीतने का उल्लेख कर "वीतरागता" का, सब जग जानने की ओर संकेत कर "सर्वज्ञता" का और मोक्षमार्ग का उपदेशक कह कर (हितोपदेशिता) नामक गुणों का सरल, सहज प्रवाह, किन्तु प्रभावशीलता सहित सच्चेदेव को एक मात्र उपास्य दर्शाने का पांडित्य अन्यत्र कम देखने को मिलता है। इसी प्रकार यथाकथित राग-द्वेषी साधु सन्यासियों की आलोचना किए बिना विषय-वासना से दूर, समता भाव के धनी, स्व-पर हितकारी, निष्काम प्रवृत्ति और निष्पृहता नामक गुणों का वर्णन कर सच्चे साधु की संगति को प्राणीमात्र के दुख-दरिद्र को हरने वाली सिद्ध कर दी है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

साहित्यकार सामान्यतः साहित्य की एक या दो विधाओं में साहित्य सृजन करते हैं। पं. जुगलकिशोर मुख्तार ने साहित्य की लगभग समस्त विधाओं में समान रूप से अधिकार पूर्वक साहित्य सृजन कर साक्षात् रूप से सरस्वती के वरदपुत्र का सम्मान प्राप्त किया है। कुछ समीक्षक उन्हें मूलतः सफल कवि की संज्ञा देते हैं तो दूसरे एक कुशल निबन्धकार, तो अन्य उन्हें एक उत्कृष्ट तटस्थ समीक्षक, मेधावी भाष्यकार, सिद्धहस्त संपादक-पत्रकार, तथ्यान्वेषी इतिहासकार, पारखी प्रस्तावना लेखक के रूप में विशेषज्ञता का प्रमाण-पत्र देते हैं।

काव्यकला के कुशल कलाकार : प्रगटाते हृदयोद्गार

आपकी काव्य रचनाएँ 'युगवीर' उपनाम से हैं। मुख्तार साहब मानव मनोविज्ञान के मर्मज्ञ थे। वे जानते थे कि अध्यात्म एवं दर्शन के जटिल सिद्धान्तों का संप्रेषण कविता के माध्यम से सरलतापूर्वक किया जा सकता है। कविता के माध्यम से भावों को उद्वेलित कर मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों का मार्गान्तरीकरण एवं शोधन सरलता से संभव है। अतः उन्होंने अत्यन्त क्लिष्ट पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किए बिना धर्म और दर्शन के गूढ़ सिद्धांतों को कविता की सरल भाषा में वर्णनकर उनके मूल भावों को हृदयंगम करा दिया है। "युग भारती" नाम से प्रकाशित उनके काव्य संग्रह में संस्कृत व हिन्दी दोनों भाषाओं की स्फुट काव्य रचनाएँ हैं। समन्तभद्र स्तोत्र एवं मदीया

द्रव्य पूजा संस्कृत की उत्कृष्ट भक्तिपरक रचनाएँ हैं। हिन्दी रचनाओं को उपासना खंड, मानवता खंडा, सम्बोधन खंड, सत्प्रेरणाखंड आदि में विभक्त कर उसको अधिक उपयोगी बना दिया है। मेरी भावना का विस्तृत विवेचन यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि कवि युगवीर एक सिद्धहस्त काव्य रचनाकार हैं, जिन्होंने सरल और सीधी भाषा में भावों का इतना उन्नत अंकन किया है जो मनोवैज्ञानिक रूप से हृदय पर सीधी चोट कर उसे झकझोर कर देते हैं। एक बानगी देखिये: अस्पृश्यता निवारण के अपने अडिग विचारों को 'मानव धर्म' नामक कविता के माध्यम से स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं-

> 'गर्भवास और जन्म समय में कौन नहीं अस्पृश्य हुआ?
> कौन मलों से भरा नहीं है? किसने मल-मूत्र न साफ किया?
> किसे अछूत जन्म से तब फिर कहना उचित बताते हो?
> तिरस्कार भंगी चमार का करते क्यों न लजाते हो?'

निबन्धकार : विषय-वस्तु का विस्तार

काव्य मनीषी होने के साथ-साथ मुख्तार सा. एक महान निबन्धकार के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। दो खंडों में प्रकाशित 'युगवीर निबन्धावली' उनकी ऐसी अद्भुत कृति है। जिसमें विषय-वस्तु की विविधता उन्हें मूलत: एक चिन्तक, अध्येता, सुधारक, दार्शनिक और राष्ट्र प्रेमी के रूप में प्रस्तुत करती है। उन्होंने अध्यात्म, दर्शन, न्यायनीति, आचार, भक्ति, समाज सुधार, राजनीति, राष्ट्रीयता, संस्कृति, इतिहास, समालोचना, समीक्षा, मनोविज्ञान, व्यंग्य-विनोद, शिक्षा आदि अनेक विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है।

अन्धविश्वास और रूढ़ियों पर प्रहार करते हुए समसामयिक समस्याओं का सूक्ष्म, विशद एवं सटीक विवेचन के साथ-साथ उनका तार्किक एवं सप्रमाणिक समाधान उनके निबन्धों की विशेषता है। कुछ निबन्धों के शीर्षक मात्र से समसामयिक वस्तु-विषय-वैविध्य, उनकी सूझ-बूझ और विश्लेषणात्मक पकड़ स्पष्ट हो जाती है यथा: - 'नौकरों से पूजा कराना', 'जाति पंचायतों का दंड विधान', 'जाति भेद पर अमितगति', 'विवाह समुद्देश्य', 'बड़ा दानी-छोटा दानी', 'जैनियों की दया', 'हमारी दुर्दशा क्यों', 'स्व-पर

विवेकी कौन', 'पापों से बचने का गुरूमंत्र', 'सेवाधर्म', 'उपासना तत्त्व', 'वीतराग की पूजा क्यों ?', 'म्लेच्छ कन्याओं से विवाह', 'सन्मति विद्या' आदि।

भाष्यकार : आर्ष ग्रन्थों का आधार

वस्तुतः मूल लेखक से भाष्यकार का कार्य अधिक कठिन होता है, क्योंकि उसे अपने भाष्य में ग्रन्थ के मूल भावों को यथावत् बनाए रखने के साथ-साथ उसके प्रत्येक पद एवं प्रयोगित विशेष शब्दों का अर्थ और उसके रहस्यगत भावार्थ को स्पष्ट करना पड़ता है। भाष्य में भाष्यकार के अपने व्यक्तिगत विचारों का कोई स्थान नहीं है। उसे तटस्थ भाव से विषय-वस्तु का विश्लेषण करना होता है तथा संभावित शंकाओं का उचित समाधान भी अन्य ग्रन्थों की सहायता से करना होता है। मुख्तार सा. ने आचार्य समन्तभद्र के ग्रन्थों सहित अन्य आचार्यों के ग्रन्थों, स्तोत्रों आदि पर सफलतम भाष्य लिखे हैं, यथा-रत्नकरण्डश्रावकाचार भाष्य (समीचीन धर्मशास्त्र), (स्वयम्भूस्तोत्र भाष्य, देवागम), (आप्तमीमांसाभाष्य), (युक्त्यानुशासन भाष्य, तत्वानुशासन भाष्य, अध्यात्मरहस्य भाष्य, योगसार, प्राभृत भाष्य, कल्याण मंदिर स्तोत्र भाष्य), (कल्याण कल्पद्रुम) आदि।

समीक्षक/ग्रन्थ परीक्षक: आर्ष परम्परा के रक्षक

ग्रन्थ परीक्षक के रूप में मुख्तार सा. ने जैन दर्शन और संस्कृति पर बड़ा उपकार किया है। दो भागों में प्रकाशित ग्रन्थ परीक्षा ने जैन धर्म और दर्शन के क्षेत्र में नकली लेखकों को बेनकाब कर संस्कृति संरक्षण का महत् कार्य किया। लेखक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करने की लालसा से जिनसेन (जिनसेनाचार्य नहीं) श्रुतसागर, सोमसेन आदि भट्टारकों ने मूल ग्रंन्थों को तोड़-मरोड़ कर वैदिक संस्कृति के आचार्यों के ग्रन्थों से परस्पर विरोधी तत्वों को मिला-जुला कर 'उमास्वामी श्रावकाचार', 'कुन्द कुन्द श्रावकाचार', 'त्रिवर्णाचार', भद्रबाहु संहिता आदि प्रकाशित कराए। चूँकि ये ग्रन्थ संस्कृत/प्राकृत भाषा में थे, अतः अज्ञानवश जैन धर्मावलम्बी इन्हें जिनवचन/जिनोपदेश मानकर स्वाध्याय करते थे। मुख्तार सा. ने जैन वाङ्मय के गहन अध्ययन द्वारा

इन ग्रन्थों का आलोचन सप्रमाण सिद्धकर जैन धर्म व संस्कृति के रक्षण में अपना महान योगदान दिया।

इतिहासकार; भ्रांतियों का निरवार

अपनी पैनी शोध दृष्टि और गवेषणात्मक वृत्ति, अनवरत अध्ययन और विश्लेषणात्मक शैली द्वारा मुख्तार सा. ने जैन मूलग्रन्थों के लेखकों के रचनाकाल का निर्धारण किया है। समन्त भद्राचार्य के सम्बन्ध में डॉ. के. बी. पाठक ने कुछ शंकाएँ प्रगट की थी। उनके निराकरणार्थ मुख्तार सा. ने बौद्ध साहित्य का गहन अध्ययन कर प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का सप्रमाण निवारण किया। इसी प्रकार तत्वार्थाधिगम-भाष्य और तत्वार्थ सूत्र का सूक्ष्मपरीक्षण कर उन्हें पृथक-पृथक लेखकों की रचना सिद्ध की। 'पंचाध्यायी' ग्रन्थ के रचयिता' राजमल्ल, सिद्ध किया। वीरशासन जयन्ती की तिथि, श्रावण कृष्णा प्रतिपदा का निर्धारण, उन्हीं के गवेषणापूर्ण निबन्ध द्वारा प्रमाणित की गयी है। कुछ अन्य ऐतिहासिक शोध निबन्धों में 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा और स्वामी कुमार', 'सन्मतिसूत्र और सिद्धसेन', 'श्रुतावतार कथा' आदि गिनाए जा सकते हैं।

प्रस्तावना लेखक/संपादक-पत्रकार: लेखनकला का विस्तार

इसके अतिरिक्त पं. जुगलकिशोर मुख्तार ने अनेक मूल ग्रन्थों का संपादन एवं उनकी अतिमहत्त्वपूर्ण विस्तृत प्रस्तावनाएँ लिखी हैं। ये प्रस्तावनाएँ मूलग्रन्थ को खोलने वाली कुँजी के समान हैं, जिनमें संपूर्ण ग्रन्थ की विषय-वस्तु एवं ग्रन्थकार का जीवन परिचय आदि मिल जाता है। इससे ग्रन्थ का आद्योपान्त स्वाध्याय करने की रूचि एवं उत्सुकता बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ 'स्वयम्भूस्तोत्र', 'युक्त्यानुशासन', 'देवागम', 'तत्वानुशासन', 'समाधितंत्र', 'पुरातन जैन वाक्य सूची', 'समन्तभद्र भारती' आदि गिनाई जा सकती हैं। कुछ प्रस्तावनाएँ तो इतनी विस्तृत, ज्ञानप्रद एवं विश्लेषणात्मक हैं कि वे एक स्वतंत्र समीक्षात्मक ग्रन्थ का रूप ले लेती हैं। जिसमें ग्रन्थकार के साथ-साथ अनेक पूर्व और पश्चात्वर्ती आचार्यों के ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन मिल जाता है।

एक जुलाई 1907 से 31-12-1909 तक उनके संपादन काल में 'जैन गजट' की ग्राहक संख्या पाँच गुनी बढ़ जाना, उनकी श्रम-साध्यता, विद्वत्ता, लोकप्रियता एवं स्पष्टवादिता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। बाद में 'जैन हितैषी' के भी वे लगभग 12 वर्षों तक संपादक रहे। अप्रैल 1929 में उन्होंने समन्तभद्राश्रम की स्थापना कर 'अनेकान्त' मासिक के प्रकाशन एवं संपादन का भार ग्रहण कर साक्षात अनेकान्तवाद का अलख जगाया।

पं. जुगलकिशोर मुख्तार: अपने युग के शिशु

राजनीति के समीक्षकों ने मध्यकालीन पोपशाही जिन्होंने स्वर्ग के प्रमाण-पत्रों का विक्रय तक प्रारंभ कर दिया था के विरुद्ध शंखनाद करने वाले 15वीं शताब्दी के इटली के राजनीतिक विचारक मेकियावेली को 'अपने युग का शिशु' कहा जाता है, क्योंकि उसने अपनी रचनाओं में मध्यकालीन धर्मान्धता, ईसाई धर्म गुरू पोप की विलाशिता और राज्य कार्यों में धर्मगुरूओं के हस्तक्षेप का तार्किक किन्तु प्रखर विरोध किया और प्राचीन कालीन धार्मिक एवं सामाजिक सहिष्णुता, ज्ञान-विज्ञान की प्रगति का वाहक बनकर पुनः जागरण का संदेशवाहक बना। तत्कालीन समाज में उसका विरोध भी हुआ, क्योंकि उसकी विचार-शृंखला समय से काफी पूर्व की थी।

16वीं-17वीं शताब्दी में जब उसकी रचनाओं का मूल्यांकन हुआ, तब उसके महत्व को समझा गया और आज तो यह स्थिति है कि पूरा राजनीतिक विश्व, राजनीति शास्त्री और सक्रिय राजनीतिज्ञ उसकी रचनाओं को 'राजनीति का बाइबिल' मान कर अध्ययन करते हैं। भारतीय प्रशासनिक सेवा की परीक्षा में मेकियावेली पर प्रश्न पूँछे जाते हैं। मेरे मत में जैन वाङ्मय के अनुशीलन, समाज-सुधार, अंधविश्वासों और रूढ़ियों पर प्रहार करने के कारण पं. मुख्तार भी अपने युग के शिशु की श्रेणी में आते हैं। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कतिपय भट्टारकों ने ग्रन्थकार कहलाने की लालसा में वैदिक वाङ्मय के अंशों को कहीं मूलरूप में, कहीं तोड़-मरोड़ कर ऐसे जाली जैन ग्रन्थ रच दिये थे, जिनसे हमारी मूल संस्कृति प्रदूषित हो रही थी। मुख्तार सा. ने 'ग्रन्थ परीक्षा' लिखकर उनका भंडाफोड़ किया, तब उनके अनुगामी धर्मान्ध मुख्तार सा. के विरोधी बन गए। इसी प्रकार अस्पृश्यता

विषय पर लिखी उनकी काव्य एवं गद्य रचनाओं से उन्होंने अनेक साधर्मियों का विरोध मोल ले लिया। 'विवाह समुद्देश्य', 'विवाहक्षेत्र प्रकाश', 'म्लेच्छ कन्याओं से विवाह', 'जाति भेद पर अमितगति' नामक उनके निबन्धों ने सम्पूर्ण जैन समाज को आंदोलित कर दिया था। उन्होंने डंके की चोट पर लिखा था कि कुल-गोत्र-जाति आदि का बन्धन विवाह में बाधक नहीं है। इसी प्रकार मुनियों और त्यागियों की शास्त्र प्रतिकूल शिथिलाचारी प्रवृत्तियों की खुली आलोचना की और दस्सा-बीसा, शूद्र, म्लेच्छ, उच्च-नीच आदि के सम्बन्ध में फैली भ्रान्त धारणाओं की तर्क परक और शास्त्रोक्त प्रमाण सहित समीक्षा की। इसके लिए उन्हें जाति बहिष्कार की धमकी भी मिली। चूँकि उनके ये विचार तत्कालीन समाज की भ्रान्तधारणाओं के अनुकूल नहीं थे। अत: उनका विरोध हुआ, किन्तु आज शनै: शनै: समाज इसी लीक पर आता जा रहा है। अन्तर्जातीय विवाह एक वास्तविकता एवं समयानुकूल समस्या का निदान बनता जा रहा है। अस्पृश्यता की गंभीर समस्या नहीं है, स्वतंत्र और सम्यक् आलोचना से जाति बहिष्कार जैसी प्रतिक्रिया नहीं होती। समाज सुधार सम्बन्धी उनके विचार आज भी जीवन्त हैं। उनकी सीख और उपदेश आज अनुकरणीय और ग्रहणीय बनते जा रहे हैं। अत: हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि वे अपने युग के शिशु थे और उनकी रचनाएँ नि:संदेह रूप से कालजयी हैं और रहेंगी।

भवति सुभगत्वमधिकं विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य।

दूसरों के गुण को प्रख्यात करने वाले सज्जन पुरुष का सौन्दर्य और भी अधिक हो जाता है।

-सुबन्धु

गुणांल्लोकोत्तराञ्शृण्वन्नस्यानुभवगोचरान्।
भविता पूर्वभूपालकृत्ये सप्रत्ययो जन:॥

अनुभव-गोचर उसके अलौकिक गुणों को सुनकर लोगों को पहले के उत्तम राजाओं के कार्य में विश्वास होगा।

-कल्हण (राजतरंगिणी, ८।१५५७)

कालजयी दृष्टि के धनी

डॉ. सुरेश चन्द जैन, दिल्ली

विद्वानेव जानादि विद्वज्जन परिश्रमम्। मुख्तार उपनाम से विख्यात श्री जुगलकिशोर जी की साहित्यसाधना जिन-आगमों के सत्यान्वेक्षण की उत्कट इच्छा के साथ ही साथ उनका अवदान सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय सर्वोन्नति भावना की सर्वोच्च दृष्टि है। सामाजिक चेतना दृष्टि का विकास व निर्माण समाज में प्रचलित धारणाओं विश्वासो रुढ़ियों के मध्य चलने वाले अन्तर्द्वन्द्व के रूप में प्रकट होता है। मूलतः समाज व्यक्तियों का समूह है और समाज में प्रचलित धारणा सांस्कृतिक चिन्तन से जुड़ी होती है या जोड़ दी जाती हैं। कालान्तर में यही धारणायें स्वार्थवश रुढ़ियों में परिवर्तित होकर सांस्कृतिक-सामाजिक चिन्तन को या तो दूषित करती है या समाप्त प्रायः करने में प्रवृत्त हो जाती हैं। इन सभी अन्तर्द्वन्द्वों के मध्य ही व्यक्ति और समाज प्रगति का मार्ग चुनता है। मूलतः किसी भी व्यक्ति या समाज की प्रगति और समुन्नति का आधार उसकी विहंगम दृष्टि पर केन्द्रित होता है। यथा दृष्टि तथा सृष्टि से समाज व देश गतिमान होता है। मुख्तार सा. की दृष्टि शुद्ध तार्किक न होकर आगमनिष्ठ व्यावहारिक एवं संवेदनाओं से परिपूर्ण थी। उन्होंने आगम और सन्निहित तथ्यों-कथ्यों को सत्यान्वेषी दृष्टि से खोजा और इसका प्रतिपादन भी निष्पक्षता के साथ किया।

क्रान्ति द्रष्टा और - सर्वोदयी दृष्टि

जब सन 1914 में महात्मा गांधी के नेतृत्त्व में सत्याग्रह अनुप्रणित स्वतन्त्रता आन्दोलन ने जोर पकड़ा तो उन्होंने भी मुख्तारगिरी छोड़कर सामाजिक-धार्मिक सत्याग्रह पर विशेष ध्यान देना प्रारम्भ किया। उनका दृढ़विश्वास था कि सत्याग्रह आन्दोलन की सफलता सामाजिक और धार्मिक धरातल पर वास्तविक ठोस परिवर्तनों पर निर्भर है। अन्धश्रद्धा से लड़ने का जज्बा पैदा हो। इस सन्दर्भ में मर्मान्तक चोट करते उनके लेख "जैनियों में दया का

अभाव" "जैनियों का अत्याचार" 'नौकरों से पूजा कराना' 'जैनी कौन हो सकता है' जाति पंचायतों का दण्ड विधान आदि सामाजिक क्रान्ति दृष्टि के सूचक हैं। मुख्तार सा. का यह विश्वास था कि व्यक्ति इकाई के सुधार से ही समाज का पुनरुत्थान सम्भव है। जब तक समाज अन्तर्विरोध, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों की चहार दीवारी में कैद रहेगा तब तक न व्यक्ति की चेतना जागेगी और न ही उसमे राष्ट्र के प्रति समर्पण का भाव उत्पन्न होगा। सन. 1916 में मुख्तार सा. (युगवीर)द्वारा रचित 'मेरी भावना' का निम्नलिखित पद्यांश उनकी उदात्त, सर्वोदयी और व्यक्तिनिष्ठ क्रान्ति का द्योतक हैं-

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे,
दीन दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे।
दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे॥

श्रमण संस्कृति की सर्वोदयी भावना का प्रतीक पद्यांश केवल कविकृत कल्पना की सृष्टि नहीं वरन् तत्कालीन सामाजिक विषमताओं के मध्य धार्मिक अनुचिन्तन की फलश्रुति थी। सामाजिक जीवन में यथार्थ अन्तर्विरोधों को उजागर करता कविहृदय 'समताभाव' की सर्वोदयी भावना अभिव्यक्त करता है। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धि र्भवति तादृशी' के आलोक में मुख्तार सा. ने सामाजिक चिन्तनधारा को धार्मिक धरातल से जोड़ने में सेतुबन्ध का कार्य किया है। इतना ही नहीं, धार्मिक धरातल पर फैली अनेक विसंगतियों पर इतनी गहरी चोट की कि तत्कालीन धर्मान्ध रुढ़िग्रस्त सामाजिकों में दोष उत्पन्न हो गया, लेकिन उन्होंने उसका सामना आगमनिष्ठ तार्किक दृष्टि से किया। अपनी सत्यान्वेषण परक दृष्टि तज्जन्य अवधारणाओं से उन्हें कोई कभी विचलित नहीं कर सका।

आचार्य समन्तभद्र के 'रत्नकाण्डश्रावकाचार पर भाष्य स्वरुप 'समीचीन धर्मशास्त्र' के रूप में प्रकाशन हुआ तो अनेक परम्परागत विद्वानों और साधुवर्ग ने नाम परिवर्तन को लेकर अनेक आरोप प्रत्यारोप किए; परन्तु वे अडोल और अकम्प बने रहे। स्वतन्त्रयोत्तर काल की चतुर्दिक आर्थिक, भौतिक प्रगति ने भरतीय सामाजिक परिवेश को जिस द्रुतगति से प्रभावित किया है, उससे सभी

परम्परायें हतप्रभ है। श्रमण परम्परा भी देश की आर्थिक राजनीतिक एवं नैतिक अध:पतन की दिशा की और अभिमुख है जिससे सभी में चिन्ता व्याप्त है।

मुख्तार सा. ने सो आ. समन्तभद्र के रत्नकरण्ड श्रावकाचार के 'देशयामि समीचीनं धर्मं कर्म निबर्हणम्' को आधार बनाकर उपर्युक्त नाम रखा था, परन्तु आजकल 'किसने मेरे ख्याल में दीपक जला दिया' 'वो लड़की' जैसी कृतियाँ धार्मिक कृति के रूप में घर-घर पहुंचाने का उपक्रम किया जा रहा है। भगवान महावीर तथा परवर्ती आचार्यों के नाम पर गुरु-शिष्य परम्परा से यद्वा तद्वा प्रतिष्ठापना चल रही है। इसे कालदोष की संज्ञा दी जाय या विचारशून्यता अथवा निहित स्वार्थान्ध वृत्ति का सूचक माना जाय।

सामाजिक चेतना एवं धार्मिक न्याय के पक्षधर

सतत् जागरुकता जीवन्त समाज की रीढ़ है और यह जागरुकता सामाजिक चेतना के कारण अतीत है। सामाजिक चेतना को स्फूर्ति प्रदान करने में सामाजिक न्याय को महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारतीय संविधान भी सामाजिक न्याय की महत्ता को स्वीकार करता है, परन्तु वास्तविक जीवन में सामाजिक न्याय से समाज व देश अभी भी कोसों दूर है। मुख्तार सा. की दृष्टि में सामाजिकन्याय मात्र वचन तक सीमित नहीं होना चाहिए वरन् वास्तविक जीवन में जीवन्त होना चाहिए। अन्याय उन्हें मनसा वाचा कर्मणा सह्य नहीं था। मेरी भावना में ही उनकी नि:स्वार्थ न्यायप्रियता की झलक मिलती है-

> कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
> लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।
> अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे,
> तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावे॥

उपर्युक्त पद्यांश उनकी न्यायप्रियता का ही संसूचक नहीं है अपितु श्रमण संस्कृति के सर्वोच्च आदर्श और मान दण्ड निर्भयता, निर्लोभवृत्ति, सत्याचरण को आत्मसात् करता हुआ तदनुरूप बनने के लिए प्रेरित करता है। आज के सन्दर्भ में उक्त मानदण्ड मात्र चर्चा के विषय रह गए हैं या आदर्श

वाक्य में प्रयुक्त होने तक ही उनकी सीमा रह गई है। सम्पूर्ण राजनैतिक-सामाजिक परिवेश लोभ में आकण्ठ निमग्न है और अब तो धार्मिक क्षेत्र भी लोभ से आवृत्त हो चुका है। यद्वा तद्वा व्याख्यायें, भाष्य और कल्पित अवधारणाओं को आगम के परिप्रेक्ष्य में सुस्थापित करने का विधिवत् सुनियोजित दुष्चक्र, प्रवहमान है। इस के मूल में है - धर्म की आड़ में धनार्जन एवं ख्याति की प्रबल आकांक्षा। इस अतृप्त आकांक्षा को पूरा करने के लिए याथातथ्य कथन शैली का अभाव तो हो ही रहा है साथ ही सत्याग्रही दृष्टि और सत्याग्रह-भाव भी तिरोहित हो रहा है। धन और ख्याति का व्यामोह कालदोष के व्याज से यथार्थ तथ्य कथ्य को समाप्त कर रहा है और आज का विद्वत्वर्ग कारवां गुजर जाने की बाट जोह रहा है। यह हर प्रसंग को ऊपर से गुजर जाने देने में विश्वास कर रहा है। ऐसी स्थिति में आगम रक्षा का पूरा भार यतिवर्ग ढ़ो रहा है, जिससे उनकी साधना में भी स्खलन हो रहा है और विज्ञजन गहरी निद्रा में निश्चिन्त है।

ग्रन्थ परीक्षा-सम्यदृष्टि का पाथेय-मुख्तार सा. ने इस ग्रन्थ के माध्यम से तत्कालीन प्रभावी भट्टारकों द्वारा जैन सन्दर्भों में अपमिश्रण किये गए अनेक वैदिक प्रसंगों को सप्रमाण उद्घाटित किया। परिणामस्वरुप उन्हें खत्म कर देने (जान से मारने) तक की धमकी दी गई, जिसका उन्होंने दृढ़ता से सामना किया।

आज भट्टारक परम्परा का अस्तित्व उस रूप में तो नहीं है जिस रूप में अतीतकाल में था, फिर भी आजकल अनेक ऐसे सन्दर्भ हैं, जिनमें अपमिश्रण का कार्य धर्म और परम्परा की ओट में किया जा रहा है और उस ओर विज्ञ-जनों की राजनिमीलक दृष्टि मिश्रित ही हास्यास्पद और चिन्तनीय है। कहीं रजनीश साहित्य का अपमिश्रण हो रहा है; तो कहीं व्याकरणाश्रित भाषा सुधार को सुनियोजित योजना के अन्तर्गत मूल-आगमों का स्वरुप निखारे जाने का प्रयत्न चल रहा है तो कहीं पर अपनी विद्वत्ता को प्रतिष्ठापित करने के लिए ग्रन्थ सन्दर्भों को ही परिवर्तित कर दिया जा रहा है। यह अपमिश्रण अनेकान्त जिनशासन की प्रभावना का अंग तो नहीं ही बन सकता है। हाँ, इसे स्वार्थपूर्ति का साधन और तदनुरूप आचरण की संज्ञा अवश्य दी जा सकती है। मुख्तार

सा. जैसी निर्भीक, तथ्यपरक, कालजयी दृष्टि के आलोक में सांस्कृतिक स्वरूप को देखे जाने की आज सर्वाधिक आवश्यकता है। उनके द्वारा संचालित 'अनेकान्त' पत्र उसका जीवन्त प्रमाण है।

पुरुषार्थ और साहस–श्रमण सांस्कृतिक परम्परानुसार मुख्तार सा. को जिनशासन के प्रभावक आचार्यों में जिस महिमामण्डित आचार्य ने सर्वाधिक प्रभावित किया था, वे थे महान् तार्किक आचार्य समन्तभद्र। आचार्य समन्तभद्र की कृतियों पर तथ्य और आगम के परिप्रेक्ष्य में जिस गम्भीरता के साथ उन्होंने चिन्तन-मनन और व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं वह आज भी अनुसन्धितषुओं के लिए प्रेरक और अनुकरणीय हैं। आ. समन्तभद्र के पुरुषार्थ और साहस का अनुककरण करते हुए ही उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया और साहित्य साधना में अनवरत लीन रहे।

आजकल तो शीघ्रातिशीघ्र प्रतिफल की प्रत्याशा में साहस का स्थान चापलूसी ने और पुरुषार्थ का स्थान तिकड़म ने लिया है। फलतः नाना उपाधियों और पुरस्कारों की प्राप्ति की होड़ में पुरुषार्थ जन्य प्रतिफल का प्रायः अभाव देखा जाता है परिणामस्वरुप उनकी साहित्य साधना का प्रभाव अत्यल्प होता है, जब कि मुख्तार सा. के सम्पर्क में आए व्यक्तियों पर उनकी कर्मठता, साहस और पुरुषार्थमय साहित्य साधना का निरन्तर प्रभाव परिलक्षित हुआ था। अतीत की गौरवशाली परम्परा के सशक्त हस्ताक्षरों में से पूज्य श्रीगणेशप्रसाद जी वर्णी, पं. नाथूराम जी प्रेमी, सूरजभानु जी वकील, ब्र. पं. चन्दाबाई जी, श्री बाबू राजकृष्ण जैन दिल्ली आदि प्रमुख व्यक्तित्व हैं जिन पर मुख्तार सा. के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का स्थायी प्रभाव था। वर्तमान पीढ़ी भी उनकी साहित्य साधना से अभिभूत है अन्तर है तो बस यही कि पुरानी पीढ़ी अनुकरण और अनुसरण का प्रयास करती थी, जब कि वर्तमान पीढ़ी प्रशंसात्मक गुण स्तुति कर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेती है।

साहस और पुरुषार्थ के प्रतीक मुख्तार सा. ने पहले सरसावा में और बाद में दिल्ली में वीरसेवा मन्दिर की स्थापना की और उसके सोद्देश्य सफल संचालन में आजीवन जुटे रहे तथा परम्परया पं. पद्मचन्द शास्त्री ने उनका अनुकरण करते हुए जिस साहस और पुरुषार्थ का परिचय दिया है वैसा आगे

हो सकेगा इसकी सम्भावना क्षीण प्राय: ही है क्योंकि आज प्राच्य संस्थाओं को संचालित करने की अपेक्षा युगानुरूप व्यवसायीकरण की प्रवृत्ति हावी है। प्रात: स्मरणीय पू. वर्णी जी द्वारा सुस्थापित प्राच्य संस्थायें मृत प्राय: है उनकी ओर कदाचित् ही लोगों की दृष्टि जाती है। ऐसी स्थिति में सामाजिक एवं धार्मिक शिक्षण कान्ति के प्रतीक इन महत्वपूर्ण केन्द्रों के नष्ट हो जाने पर 21 वीं शताब्दी निश्चित रूप में रिक्तता का अनुभव करेगी। संस्था संचालन में मुख्तार सा. की कालजयी दृष्टि थी उनकी धारणा थी कि सामाजिक सम्पत्ति की सुरक्षा व्यक्तिगत सम्पत्ति की सुरक्षा से भी अधिक महत्वपूर्ण है। व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का यथेच्छा उपयोग और नष्ट तक कर सकता है परन्तु सामाजिक सम्पत्ति के कण मात्र को भी नष्ट करना उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है। इस धारणा के ठीक विपरीत आज सामाजिक सम्पत्ति की सुरक्षा करने की बात तो दूर उसके नष्ट होने की प्रतीक्षा की जाती है या उस पर अपना स्वत्व स्थापित करने के लिए साम दाम दण्ड भेद की कुचेष्ठायें की जा रही हैं। सामाजिक दायित्व की भावना का प्राय: अभाव देखा जा रहा है और व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति का भाव चरमोत्कर्ष पर है। यदि ऐसे में दृष्टि नहीं बदली तो सामाजिक संस्थाओं का भविष्य निश्चित ही अन्धकारमय है या तो वे व्यावसायिक केन्द्र बन जायेंगे या कालकवलित हो जायेंगी।

'युगवीर'

मुख्तार सा. कवि जगत में युगवीर नाम से जाने जाते हैं। उनकी मेरी भावना समग्र रुप में युग चिन्तन का प्रतिनिधित्व करती है। समता, सहिष्णुता, मैत्री, वात्सल्य, करुणा, निर्भीकता जैसे उदात्त गुणों का अभिव्यक्त करती मेरी भावना मात्र युगवीर मुख्तार सा. की वैयक्तिक भावना ही नहीं है वह तो समग्रत: सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संवेदनाओं को व्यक्त करती हुई अजस्र शान्ति स्रोत स्वरुप है जिसकी धारा न कभी अवरुद्ध होने वाली है न ही उसे किसी विश्राम की आवश्यकता है।

आज समाज में एक नहीं अनेक वीर-वीरांगनायें हैं मिलन के रुप में अनेकानेक आयोजन हो रहे हैं, परन्तु परस्पर की दूरियाँ यथावत् है। इन आयोजनों में न कहीं वात्सल्य की भावना प्रस्फुटित होती दिखती है और न ही

मैत्री भाव का कोई चित् दृष्टिगोचर होता है। वैभव और प्रदर्शन की वस्तु बन कर रहे जाते हैं ये बड़े-बड़े आयोजन। आश्चर्य तब होता है जब इन आयोजनों में सहभागी-गणमान्य व्यक्ति इनकी निरर्थकता पर सवाल उठाते हुए भी सार्थकता के विषय में कभी चिन्तन मनन नहीं करते। कुछ घण्टों का यह आयोजन परस्पर प्रशंसा और वीर-वीरांगनाओं के प्रदर्शन के साथ-साथ समाप्त हो जाता है। इसे सत्संग भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सत्संग में तो कथा-श्रवण आदि होता है। परस्पर सुख-दुःख की चर्या भी हो जाती है। परन्तु इनमें तो इसका सर्वथा अभाव पाया जाता है। ये आयोजन सामाजिकता और सौहार्द बढ़ाने में सहायक हुए हों ऐसी कोई उदाहरण सामने नहीं आया।

भगवान महावीर के अनुयायी होने के कारण तो हम सभी वीर हैं पर क्या हम परम्परागत रूप में या सांस्कृतिक सामाजिक किसी भी दृष्टि से वास्तविक 'वीर' हैं यह चिन्तनीय है। 'युगवीर' जैसा सशक्त व्यक्तित्व सदियों में होता है लेकिन उसकी अनुगूंज कई-शताब्दियों तक लोगों को रोमाञ्चित करती है।

संक्षेपतः मुख्तार सा. के अनेक गुण, उनकी संघर्षशीलता, नारिकेल समाहारा व्यक्तित्व, निर्भीक आगमोक्त निरुक्तियाँ, स्थापनायें, अवधारणायें आज के स्वार्थान्ध युग में प्रकाश स्तम्भ के समान हैं। यदि उनके व्यक्तित्व के अनुजीवी गुणों का अनुकरण करें तो न केवल श्रमण संस्कृति के उन्नयन में अपना सक्षम योगदान कर सकेंगे वरन् भावी पीढ़ी भी कृतज्ञता के साथ स्मरण करेगी।

कर्मठ सतत् साहित्य साधना के शक्तिपुंज युगवीर मुख्तार सा. और उनकी कालजयी दृष्टि को श्रद्धासहित नमन।

मुख्तार सा. की काव्य-मनीषा

डॉ. रमेशचन्द जैन, बिजनौर, उ.प्र.

जैन साहित्य के इतिहास के सूक्ष्म अन्वेषक सुप्रसिद्ध लेखक श्री जुगलकिशोर मुख्तार एक अच्छे कवि भी थे। उनकी छोटी सी कृति 'मेरी भावना' जन-जन का कण्ठहार बन गयी है। अभी तक उसकी लाखों प्रतियाँ छप गई हैं। अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती, मराठी, कन्नड़ आदि अनेक भाषाओं में उसके अनुवाद हो चुके हैं। अनेक विद्यालयों, कारखानों, बन्दीगृहों इत्यादि स्थानों पर प्रतिदिन उसका पाठ होता है। अनेक पत्र पत्रिकाओं में उनकी कवितायें प्रकाशित हुई हैं। 1920 ई. में आरा के श्री कुमार देवेन्द्र प्रसाद जी ने उनकी एक कविताओं का संकलन 'वीर पुष्पाञ्जलि' के नाम से प्रकाशित किया था, जिसमें कुल 13 कवितायें संगृहीत थीं। वह संग्रह अब अप्राप्य हैं। 1960 ई में अहिंसा मन्दिर प्रकाशन, दरियागंज, देहली से उनकी कविताओं का एक संकलन युगवीर भारती के नाम से प्रकाशित हुआ था, जिसका प्राक्कथन सुप्रसिद्ध हिन्दी लेखक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा था। चतुर्वेदी जी ने अनुसार इन कविताओं में उनके (मुख्तार सा. के) सुसंस्कृत हृदय की उदार भावनायें पूरी मात्रा में विद्यमान हैं इस नवीन संग्रह में उन्होंने अपनी उन रचनाओं का संकलन किया था, जो उन्होंने सन् 1901 से लेकर 1956 के बीच प्रस्तुत की थीं। ये रचनायें 6 खण्डों में विभक्त की गई हैं। पहला खण्ड है - उपासना खण्ड, दूसरा भावना खण्ड, तीसरा सम्बोधन खण्ड, चौथा सत्प्रेरणा खण्ड, पांचवाँ संस्कृत वाग्विलास खण्ड और छठा प्रकीर्ण पुष्पोद्यान खण्ड। प्रारम्भ में वीर-वन्दना में वे कहते हैं -

शुद्धि-शक्ति की पराकाष्ठा को अतुलित प्रशान्ति के साथ।
पा सत्तीर्थ प्रवृत्त किया जिन, नमूँ वीरप्रभु साञ्जलि-माथ॥ १॥
जीते मय उपसर्ग-परिषह जीते जिनने मद को मार,
जीती पञ्चेन्द्रियाँ जिन्होंने औ क्रोधादि कषायें चार।

राग-द्वेष-कामादिक जीते, मोह शत्रु के सब हथियार,
सुख-दु:ख जीते, उन वीरों को नमन करूँ मैं बारंबार॥

मुख्तार सा. 'युगवीर' के नाम से कवितायें लिखते थे। युगवीर के अनुसार वीर वाणी समस्त प्राणियों को तारने के लिए जलपान के समान है। यह संसार में अमृत के समान प्रकट हुई है। अनेकान्तमयी उनकी वाणी स्यात् पद से लांछित है तथा न्याय और नीति की खान है। यह सब कुवादो का नाश कर सतज्ञान को विस्तारित करती है। वीर वाणी नामक कविता में वे कहते हैं-

अखिल जग-तारन को जल-यान।
प्रकटी वीर, तुम्हारी वाणी, जग में सुधा समान॥
अनेकान्तमय स्यात्पद लांछित नीति-न्याय की खान।
सब कुवाद का मूल नाश कर, फैलाती सतज्ञान॥

मुख्तार सा. उन्हें उपास्य मानते हैं, जिन्होंने मोह को जीत लिया। जिन्होंने काम, क्रोध, मद, लोभ जैसे सुभटों को पछाड़ दिया। मायारूपी कुटिलनीतिरूप नागिन को मारकर अपने आप की रक्षा की। जिनकी ज्ञान ज्योति से मिथ्यात्वरूपी अन्धकार का लोप हो गया जिनकी इन्द्रिय रूपी विषय लालसा कुछ अविशष्ट नहीं रही। जिसने असंग व्रतका वेष धारण कर समस्त तृष्णा रूपी नदी को सुखा दिया। जो दु:ख में उद्विग्न नहीं रहते तथा सुख में चित्त को लुभाते नहीं हैं। जो आत्मरूप में संतुष्ट रहकर निर्धन और धनी को समान मानते हैं, जो निन्दा और स्तुति को समान मानते हैं तथा जो प्रमादरहित तथा निष्पाप होते हैं। उनका साम्यभाव रूपी रस के आस्वादन से समस्त हृदय का सन्ताप मिट जाता है। जो धैर्य रखकर अहंकार और ममकार के चक्र से निकल गए हैं तथा विश्व प्रेम का नीर पीकर निर्विकार और निर्बैर हो गए हैं। ऐसी आत्मओं को उपास्य मानकर मुख्तार सा. कहते हैं-

साध आत्म-हित जिन वीरों ने किया विश्व कल्याण।
युग मुमुक्षु उनको नित ध्यावे, छोड़ सकल अभिमान॥
मोह जिन जीत लिया, वे हैं परम उपास्य॥

मेरी द्रव्य पूजा नामक रचना में मुख्तार सा.द्रव्य पूज्य से अधिक भावपूजा को महत्त्व देते हैं। प्रत्येक द्रव्य भगवान् को अर्पित करने में उन्हें कुछ न कुछ अशुद्धि दिखाई देती है। उदाहरणार्थ नीर क्यों अशुद्ध है, देखिए-

कृमि कुल कलित नीर है, जिसमें मच्छ कच्छ मेंढक फिरते।
है मरते और वहीं जनमते, प्रभो मलादिक भी करते।
दूध निराले लोग छुड़ाकर, बच्चे को पीते-पीते,
है उच्छिष्ट अनीति-लब्ध, यों योग्य तुम्हारे नहीं दीखे॥

यदि अष्टद्रव्य में कुछ न कुछ दोष है, तो वस्त्राभूषण वगैरह भगवान् को क्यों नहीं अर्पित किए जाँय। इसका उत्तर मुख्तार सा. देते हैं-

यदि तुम कहो 'रत्नभूषण-वस्त्रादिक क्यों न चढ़ाते हो,
अन्य सदृश, पावन हैं, अर्पण कराते क्यों सकुचाते हो।
तो तुमने निःस्तर समझ जब खुशी-खुशी उनको त्यागा,
हो वैराग्य-लीन-मति स्वामिन्! इच्छा का तोड़ा तागा॥
तब क्या तुम्हें चढ़ाऊँ वे ही, करूँ प्रार्थना ग्रहण करो।
होगी यह तो प्रकट अज्ञता तब स्वरुप की सोच करो।
मुझे धृष्टता दीखे अपनी और अश्रद्धा बहुत बडी,
हेय तथा संत्यक्त वस्तु यदि तुम्हें चढ़ाऊँ घड़ी घड़ी॥

कवि की दृष्टि में द्रव्यपूजा और भावपूजा यह है -

इससे 'युगल' हस्त मस्तक पर, रखकर नम्रीभूत हुआ,
भक्ति सहित मैं प्रणमूँ तुमको बार-बार गुण लीन हुआ।
संस्तुति शक्ति समान करूँ औ सावधान हो नित तेरी;
काय-वचन की यह परिणति ही अहो! द्रव्यपूजा मेरी॥
भाव भरी इस पूजा से ही होगा, आराधन तेरा,
होगा तब सामीप्य प्राप्त औ सभी मिटेगा जग फेरा।
तुझमें मुझमें भेद रहेगा, नहिं स्वरुप से तब कोई,
ज्ञानानन्द-कला प्रकटेगी, थी अनादि से जो खोई॥

आयुकर्म में पीड़ित हुआ प्राणी यदि अपने आपको स्थिर मानता है तो यह उसका अज्ञान है-

यम से अतिशय पीड़ित अपनी आयु सभी जन जानो,
दिन हैं गुरुतर खंड उसी के, यह निश्चय उर आनो।
उनको नित निज सन्मुख खिरते लखकर भी जो प्राणी,
अपने को स्थिर मान रहा है, वह क्यों नहिं अज्ञानी॥

जैनियों को अपने पूर्वजों की याद दिलाते हुए मुख्तार सा. कहते हैं-

पूर्वज हमारे कौन थे? वे कृत्य क्या-क्या कर गये?
किन-किन उपायों से कठिन भव-सिन्धु को भी तर गए?
रखते थे कितना प्रेम वे निजधर्म देश समाज से?
पर-हित में क्यों संलग्न थे, मतलब न था कुछ स्वार्थ से?

विधवाओं के सम्बोधित करते हुए मुख्तार सा कहते हैं कि शोक करना अध्यात्म के क्षेत्र में पाप का बीज बोना है। इसका फल आगे अनेक दु:खों का संगम होना है। शोक से कोई लाभ नहीं होता है। शोक करना अकर्मण्य बन जाना है। जो व्यक्ति शोक करता है, वह आत्मलाभ से वंचित होकर पीछे पछताता है। पापरूपी वृक्ष के दो फल हैं - 1. इष्ट वियोग और 1. अनिष्ट संयोग। इस पाप के फल को जो नहीं खाता है और पापरूपी वृक्ष का बीज जला देता है, वह इस लोक और पर लोक में सुख प्राप्त करता है। अत: पति वियोग के दु:ख में जलकर पाप कमाना अच्छा नहीं है, किन्तु अच्छा यही है कि अपने योग को स्व-पर हित साधन में लगायें। जो व्यक्ति स्वार्थी हैं, वे दया नहीं करेंगे। उनसे दया की अभिलाषा छोड़ तुम स्वावलम्बी बनो और अपनी आशा पूर्ण करो। तुम सावधान होकर अपना बल बढ़ाओ और समाज का उत्थान करो। इस नीति पर सदैव ध्यान करो कि दैव दुर्बलों का घातक है। अन्त में कवि विवेक जागृत करने का उपदेश देता है।

हो विवेक जागृत भारत में इसका यत्न महान करो।
अज्ञ जगत को उसके दु:ख दारिद्रय आदि का ज्ञान करो।

फैलाओ सत्कर्म जगत में, सबको दिल से प्यार करो,
बने जहाँ तक इस जीवन में औरों का उपकार करो॥

धनिकों को सम्बोधन करते हुए 'युगवीर' ने कहा कि हाय, भारत में कितने वस्त्रहीन और क्षुधापीड़ित जन घूम रहे हैं। कितनों ने ही असहाय होकर धर्म-कर्म बेच दिया है। जो भारत सब देशों का गुरु, महामान्य और सत्कर्म प्रधान था, वह गौरवहीन होकर, पराधीन बनकर अपमान सह रहा है। हे धनिकों! भारत की यह दशा देखकर क्या तुम्हें सोच विचार नहीं आता है? क्या तुम पड़े-पड़े इसी प्रकार दुःख के पारावार को देखते रहोगे। क्या जिसके धन से धनिक हुए हो, उसकी बात भी नहीं पूछते हो? क्या तुम जिसकी गोद में पले हुए हो, उस पर उत्पात होता हुआ देखोगे? आगे वे धनिकों का आह्वान करते हैं-

भारतवर्ष तुम्हारा, तुम हो भारत के सत्पुत्र उदार,
फिर क्यों देश-विपत्ति न हरते, करते इसका बेड़ापार?
पश्चिम के धनिकों को देखो, करते हैं वे क्या दिनरात,
और करो जापान देश के धनिकों पर कुछ दृष्टि निपात॥

मुख्तार सा. की कविता 'अजसंबोधन' उनके संवेदनशील हृदय, परदुःखकातरता और निराशा की स्थिति में भी आशा की किरण ढूंढ़ने वाली है। बकरे को संबोधित करते हुए वे कहते हैं - हे बकरे! तुम खिन्न मुख क्यों हो, तुम्हें किस चिन्ता ने घेरा है? तुम्हारा पैर उठता न देखकर मेरा चित्त खिन्न हो रहा है। देखो, तुम्हारी पिछली टाँग पकड़कर वधिक उठाता है? वह जोर से चलने को धक्का देता जाता है।

कभी वधिक तुम्हें उल्टा कर देता है, कभी दो पैरों से खड़ा कर देता है। कभी दाँत पीसकर तुम्हारे कान ऐंठता है। कभी तुम्हारी क्षीण कुक्षि में खूब मुक्के जमाता है। कभी यह नीच तुम्हारे अण्डकोषों को खींचकर पुनः पुनः तुम्हें चलाता है।

इस घोर यातना को सहकर भी तुम कभी कदम नहीं बढ़ाते हो, कभी दुबकते हो, कभी पीछे हटते हो और कभी ठहरते जाते हो, मानों तुम्हारे

सम्मुख बलिष्ठ सिंह खड़ा हो। इस समय आर्तध्यान से पूर्ण में की आवाज निकलती है।

शायद तुमने यह समझ लिया है कि अब हम मारे जायेंगे, इस दुर्बल और दीन दशा में भी नहीं रहने पायेंगे। इसी कारण तुम्हारे हृदय में इस जग से उठ जाने का शोक छाया हुआ है। इसीलिए तुम्हारा प्राण बचाने का यह सब यत्न है।

पर तुम क्या इस प्रकार बच सकते हो। जरा सोचो तो। तुम्हारा ध्यान कहाँ है? तुम तो निर्बल हो, यह घातक सबल, निष्ठुर और करुणाहीन है। सब जगह स्वार्थ साधना फैल रही है। तुम्हारे लिए न्याय नहीं है जब रक्षक ही भक्षक हो गए हैं तब तुम्हारी फरियाद कौन सुनेगा।

इससे अच्छा यही है कि प्रसन्नतापूर्वक तुम वध्यभूमि में जाकर अपना सिर झुकाकर वधिक की छुरी के नीचे रख दो। उस समय यह कहकर आह भरो कि महावीर के सदृश कोई नया अवतार हो, जो सब जगह दया का सन्देश फैलाए-

इससे बेहतर खुशी-खुशी तुम बध्य भूमि को जा करके,
वधक-छुरी के नीचे रख दो, निज सिर स्वयं झुका करके।
'आह' भरो उस दम यह कहकर "हो कोई अवतार नया,
महावीर के सदृश जगत में फैलाए सर्वत्र दया।"

इसी प्रकार मीन संवाद में भी मछली की पीड़ा का कवि ने हृदय को उद्वेलित करने वाला चित्र खींचा है।

पै मीन ने अन्तिम श्वास खींचा।
मैं देखता हाय! खड़ा रहा ही
गूँजी ध्वनि अम्बर-लोक में यों
'हा! वीर का धर्म नहीं रहा है॥'

मुख्तार सा. की होली होली है, कविता होली का रंग जमाने के साथ-साथ स्वानुभूति की प्रेरणा दे रही है-

ज्ञान-गुलाल पास नहिं, श्रद्धा-रंग न समता-रोली है!
नहीं प्रेम-पिचकारी करमें, केशर शान्ति न घोली!!
स्याद्वादी सुमृदंग बजे नहिं, नहीं मधुर रस बोली है!
कैसे पागल बने हो चेतन! कहते 'होली होली है!!
ध्यान-अग्नि प्रज्जवलित हुई नहिं, कर्म-धन न जलाया है!
असद्भाव का धुआँ उड़ा नहिं सिद्धस्वरुप न पाया है!!
भीगी नहीं जरा भी देखो, स्वानुभूति की चोली है!
पाप-धूलि नहिं उड़ी, कहो फिर कैसे 'होली-होली है'!!

मुख्तार सा. हिन्दी के समान संस्कृत काव्य रचना में भी निपुण थे। युगवीर भारती में उनकी ये दस कवितायें संकलित हैं-

१. वीरजिनस्तोत्र २. समन्तभद्र स्तोत्र ३. अमृतचन्द्र सूरि-स्तुति ४. मदीया द्रव्यपूजा ५. जैनादर्श, ६. अनेकान्त जयघोष ७. स्तुति विद्या-प्रशंसा ८. सार्थक जीवन ९. लोक में सुखी १०. वेश्यानृत्य स्तोत्र। शीर्षक इसी प्रकार हिन्दी में हैं, किन्तु पद्यरचना संस्कृत में है। उदाहरणार्थ मदीया द्रव्य पूजा का एक पद्य देखिए-

नीरं कच्छप-मीन-भेक कलितं तज्जन्म-मृत्याकुलम्।
वत्सोच्छिष्टमिदं पयश्च कुसुमं घृतं सदा षट्पदैः।
मिष्टान्नं च फलं च नाऽत्र घटितं यन्मक्षिका स्पर्शितम्
तत्किं देव! समर्पयेऽहमिति मच्चित्तं तु दोलायते॥

इस प्रकार मुख्तार सा. की काव्यमनीषा भावनामयी संस्कारमयी, हृदयहारिणी, चेतश्चमत्कारी और सौन्दर्यवती है, जो काव्यरस से ओतप्रोत होने के साथ-साथ प्रेरणा प्रदायिनी भी है।

एक श्रेष्ठ ग्रन्थपाल

डॉ. शोभालाल जैन, जयपुर - 3

श्री पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन करते हुए मैंने उनके अनेक रूपों से जैसे-कवि, युगवीर, निबंधकार, भाष्यकार, समीक्षक एवं ग्रन्थ परीक्षक, प्रस्तावना लेखक, पत्रकार एवं सम्पादक आदि से अवगत हुआ। लेकिन उनके विशाल व्यक्तित्व एवं चरित्रात्मक गुणों का अध्ययन करते हुए मुझे उनमें एक और रूप के दर्शन हुए, स्पष्ट प्रतीति हुई, जो है एक श्रेष्ठ ग्रन्थपाल का।

मुख्तार सा. व्यवसायिक रूप से इस सेवा में नहीं थे। इसलिये विद्वानों, अनुसंधान कर्ताओं ने उनके इस रूप को अनदेखा किया हो, या उनको इस सेवा से जोड़ना उचित नहीं समझा हो कुछ भी हो सकता है। चूंकि मैं इस सेवा में व्यवसायिक रूप से जुड़ा हुआ हूं, इसलिये मैंने देखा कि एक श्रेष्ठ ग्रन्थपाल में जो गुण होना चाहिये वे, सभी उनमें विद्यमान थे। विद्वानों की संगठनात्मक क्षमता, पुस्तकों एवं पाठकों से प्रेम आदि ग्रन्थपाल के विशेष गुण स्वीकार किये हैं। मुख्तार सा. के उन गुणों की चर्चा यहाँ प्रासंगिक है।

(1) संगठनात्मक क्षमता-समुख्तार सा. में संगठनात्मक क्षमता बड़ी शकितशाली थी। मुख्तार सा. ने अपनी वकालत से अर्जित द्रव्य से वीर सेवा मंदिर भवन का निर्माण करा कर उसे उत्तम लाइब्रेरी से युक्त बनाया था। जिसमें उत्तम कोटि के जैनाजैन ग्रंथों का भण्डार था। विभिन्न प्रकार के कोश ग्रंथ भी विद्यमान थे। विशाल पुस्तकालय जो ग्रंथों से भरी अलमारियों से सुशोभित था। इसके बाद दिल्ली में जब वीर सेवा मन्दिर का विशाल भवन बनकर तैयार हो गया तो मुख्तार सा. सदल-बल विशाल ग्रंथालय के साथ सरसावा से दिल्ली पधार गये। काष्ठ और शीशे की चमकती हुई अलमारियाँ वहीं छूट गयी, और स्टील की अलमारियां दरियागंज भवन में अलंकृत हो गयी। इसका परिचय उन्होंने समन्तभद्राश्रम की स्थापना एवं 'अनेकान्त'

पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ कर दिया। बिना ग्रन्थालय के किसी संस्थान की स्थापना एवं पत्रिका का प्रकाशन संभव नहीं है। और 'अनेकान्त' पत्रिका उस समय शोध पत्रिका के रूप में ही प्रकाशित हो रही थी।

पं. मुख्तार सा. इस आश्रम के पीठाध्यक्ष और वरिष्ठ-निदेशक थे। अत: उनकी संगठनात्मक क्षमता असन्दिग्ध थी। बाद में समन्तभद्राश्रम वीर सेवा मन्दिर के रूप में परिवर्तित हो गया।

(2) पुस्तकों एवं पाठकों से प्रेम-वीर सेवा मन्दिर ने शोध संस्थान (प्रतिष्ठान) का जब रूप ले लिया, तब उसके निदेशक और ग्रंथपाल मुख्तार सा. ही थे, तथा पं. दरवारी कोठिया, पं. परमानन्द शास्त्री, पं. ताराचन्द्र न्यायतीर्थ, एवं पं. शंकरलाल न्यायतीर्थ शोधार्थी के रूप में अनुसन्धान कार्य कर रहे थे। बिना ग्रन्थालय एवं ग्रन्थपाल के शोध-संस्थान और अनुसंधान सम्भव नहीं है। और पुस्तकों एवं पाठकों से प्रेम किये बिना ग्रन्थालय एवं ग्रन्थपाल संभव नहीं है।

प्रत्येक पुस्तकालय कर्मचारी का मुख्य उद्देश्य होता है कि - पाठक को उसकी पुस्तक से, और पुस्तक को उसके पाठक से मिलाना। किसी ने सच ही कल्पना की है कि ग्रन्थपाल उस पुरोहित के समान होता है जो पुस्तक रूपी वधू को पाठक रुपी वर से मिलाने का कार्य करता है। ऐसा व्यक्ति यह कार्य नहीं कर सकता, जिसे पुस्तकों एवं पाठकों से प्रेम नहीं हो। मुख्तार साहब यह कार्य स्वयं करते थे, क्योंकि अपने संस्थान के निदेशक और ग्रन्थपाल वे स्वयं थे।

(3) सेवा-भावना-पुस्तकालय व्यवसाय एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें कुछ देकर या सेवाकर आनन्द का अनुभव किया जाता है। कविता और साहित्य रचना में भी कवि और साहित्यकार एक अपूर्व आनन्द का अनुभव करता है। संस्कृत काव्यशास्त्री मम्मट ने कविता या साहित्य रचना के निम्नलिखित उद्देश्य बतलाये हैं-

> काव्यं यशसेऽर्थ कृते व्यवहार-विदे शिवेतरक्षतये।
> सद्यः परिनिवृत्त्ये कान्ता सम्मिततयोपदेश-युजे॥
>
> काव्यप्रकाश।१।२

साहित्य रचना छः उद्देश्यों के लिये की जाती है-

1. यश के लिये।
2. धन के लिये।
3. लोक व्यवहार के लिये।
4. समाज कल्याण के लिये।
5. स्वः आनन्द के लिये।
6. मृदु सम्प्रेषण के लिये।

डॉ. रंगनाथन ने ग्रन्थपाल के निम्नलिखित उद्देश्य बतलाए हैं-

1. व्यक्तिगत लाभ या स्वार्थ।
2. समाज कल्याण।
3. सर्जनात्मक तथा विरेचनात्मक आनंद।
4. देशीय धर्म।

०ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि मम्मट ने साहित्य रचना के तथा डॉ. रंगनाथन ने गन्थपाल के जो उद्देश्य बतलाए हैं वे एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं।

मुख्तार सा. कवि और सहित्यकार तो थे ही साथ में एक श्रेष्ठ ग्रन्थपाल भी थे। उन्होंने समाज कल्याण के लिये बहुत कार्य किये। आपका व्यक्तित्व साधक, स्वाध्यायी-तपस्वी का था। जिसने सदा-देना ही सीखा है लेना नहीं अपना जीवन और सम्पत्ति ज्ञानमन्दिर के निर्माण के लिये अर्पित कर दी। वे मूर्ति और मन्दिरों की अपेक्षा ज्ञानमन्दिरों के निर्माण को श्रेयस्कर समझते थे।

(4) प्रत्युत्पन्नमतित्वता-यह सभी क्षेत्रों में उपयोगी है, लेकिन ग्रन्थपाल को पाठक की सेवा करने में अधिक सहायता करती है, तथा प्रत्येक परिस्थिति में उचित निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है।

एक बार की घटना है कि मुख्तार सा. के कुछ अन्तरंग मित्रों को 'अनेकान्त' की कुछ पुरानी फाइलों की आवश्यकता पड़ी। वे फाइलें मुख्तार सा. के पास सुरक्षित थीं। जब उन लोगों ने उन फाइलों को दिल्ली ले जाने की

आज्ञा मांगी तो मुख्तार सा. ने स्पष्टरूप से मना कर दिया। उनका कहना था कि फाइलों को यहीं देख लीजिए, और यदि दिल्ली ले जाना आवश्यक हो तो मैं स्वयं इन्हें लेकर दिल्ली चलूंगा, वे स्वयं उन फाइलों को लेकर दिल्ली गये और मित्रों का कार्य हो जाने पर उन्हें वापिस लौटा लाए।

(5) मृदुभाषी और व्यवहार कुशल–निःसन्देह मुख्तार सा. का व्यक्तित्व उदार था, जहां से ज्ञान की जलराशि प्रवाहित होती थी जिसके स्पर्श मात्र से पण्डितों के हृदय शीतल हो जाते थे। पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी, पंडित नाथूराम प्रेमी, बाबू सूरजभानु वकील, ब्र. पं. चन्द्राबाई जी आरा, बाबू राज कृष्ण जी दिल्ली, साहू शान्तिप्रसाद जी आदि सभी आपकी ज्ञान साधना से प्रभावित थे, तथा आपकी व्यवहार कुशलता एवं मृदुसंभाषण की प्रशंसा करते थे।

निष्कर्ष–पं. जुगल किशोर मुख्तार सा. का व्यक्तित्व एक साथ कई विधावाओं से सम्पृक्त था। उन जैसा परिश्रमी और निष्काम सरस्वती की उपासना करने वाला क्वचित् कदाचित् ही दृष्टिगोचर होता है।

मुख्तार सा. ने कई विधाओं में कार्य किया, जैसे - कविता, निबंध, भाष्य, वैयक्तिक निबंध, संस्मरण, प्रस्तावनाएं-लिखना, आचार्य और कवियों की तिथियां निर्धारित करना आदि। ये कार्य एक व्यक्ति द्वारा एक जन्म में शायद ही संभव हों, लेकिन मुख्तार साहब ने ये सब कार्य किये।

ग्रन्थपाल ही एक ऐसा प्राणी है जो भूत, वर्तमान, एवं भविष्य में उत्पन्न होने वाले ज्ञान से, विषयों से जूझता है, उन्हें ग्रन्थालय में व्यवस्थित करता है, पाठक को उसके अभीष्ट विषय पर ज्ञान उपलब्ध कराता है। पुस्तक उपलब्ध करता है।

अतः मुख्तार सा. के अनेक रूपों में श्रेष्ठ ग्रन्थपाल का रूप भी सामने आता है। इसके साथ यदि उन्हें एक श्रेष्ठ ग्रंथपाल भी कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी और न मुख्तार सा. का अनादर ही होगा, बल्कि उनके सम्मान में एक और कड़ी जुड़ जायगी। अस्तु वे एक श्रेष्ठ ग्रन्थपाल भी थे।

सन्दर्भग्रन्थ

1 पुस्तकालय और समाज
ले डॉ. पांडेय एस के शर्मा
ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली पृ. 17
2. पुस्तकालय और समाज। पृ. 23
3 काव्य प्रकाश, मम्मट
4. श्री पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर'
कृतित्व और व्यक्तित्व। पृ. 27
6 वही। पृ 26

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचिमनो यद्यस्तितीर्थेन किम्।
सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मंडनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना॥
भवत्यरूपोऽपि हि दर्शनीयः स्वलंकृतः श्रेष्ठतमैर्गुणैः स्वैः
दोषैः परीतो मलिनीकरैस्तु सुदर्शनीयोऽपि विरूप एव॥

अपने श्रेष्ठ गुणों से अलंकृत होकर कुरूप मनुष्य भी दर्शनीय हो जाता है, किन्तु गंदे दोषों से व्याप्त होकर रूपवान भी कुरूप हो जाता है।

-अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १८। ३४)

न च निकषपाषाणशकलं विना
निजगुणमाविष्करोति काञ्चनी रेखा।

सुवर्ण की रेखा भी कसौटी के पत्थर के टुकड़े बिना अपने गुण को प्रकट नहीं कर पाती।

-कर्णपूर (आनन्दवृन्दावन चम्पू, ८। १५)

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

श्रीमती माधुरी जैन 'ज्योति', जयपुर

जिनवाणी के पंथ पर, संसार में चलता है कोई-कोई।
मोक्ष मंजिल पाने के लिए, बढ़ता है कोई-कोई॥
सब प्रवीण हैं संसार की बातें करने में मगर।
श्री 'युगवीर की तरह, साहित्य साधना करता है कोई-कोई॥'

प्राचीन काल से ही भारत वसुन्धरा जैन मनीषियों से सुशोभित रहीं हैं। इस पृथ्वीतल पर यदि कोई ऐसा देश है, जो मंगलमयी पुण्यभूमि कहलाने का अधिकारी है, जहाँ आत्मोन्मुखी प्रत्येक आत्मा को अपना अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने के लिये पहुँचना अनिवार्य है, जहाँ मानवता ने ऋजुता, उदारता, शुचिता एवं शान्ति का चरम शिखर स्पर्श किया हो तथा इससे भी आगे बढ़कर जो अन्तर्दृष्टि एवम् आध्यात्मिकता का घर हो तो वह है भारत-भूमि।

यह वही पुरातन भूमि है जहाँ, ज्ञान ने अन्य देशों में जाने से पूर्व अपनी आवास भूमि बनायी थी। जिसे महानतम ऋषियों व मनीषियों की चरण रज निरन्तर पवित्र करती रही है। इसी श्रृंखला में अद्वितीय प्रतिभा के धनी, मनस्वी व्यक्ति का रूप संजोये, हिमालय जैसा उन्नत और प्रशान्त महासागर जैसा गम्भीर व्यक्तित्व समेटे, निन्दा एवं प्रशंसारूप प्रचण्ड पवन के झाकों से अपने कर्त्तव्य पथ से विचलित न होने वाले, वाङ्मय एवं समाज के उत्थान की भावना से परिपूर्ण, ऐसे 'युगवीर' को जन्म देने का (सौभाग्य) श्रेय सरसावा की पावन भूमि को प्राप्त हुआ।

सहारनपुर जिले के सरसावा कस्बे में मार्ग शीर्ष शुक्ला एकादशी विक्रम सं. 1934 को सन्ध्या काल में माता भूई-देवी की कुक्षि से देदीप्यमान नक्षत्र के समान, इस धरा पर अवतरित हुए।

पिता श्री नत्थुमल जी जब अपने इस भविष्णु बालक को निहारते तो वे उसे घण्टों एकटक दृष्टि से देखते रह जाते थे। वे यह नहीं समझ पाते कि यह आकर्षण पुत्र के रूप का है या उसके आन्तरिक गुणो का।

अर्थात् पिता की यह कल्पना यथार्थ भी थी क्योंकि उनका यह शिशु जड़ सम्पदा नहीं, ज्ञान सम्पदा का प्रकाश अपने में समेटे हुए दिव्य साहित्य सृजनहारा बनने वाला था। क्योंकि

''दुनियाँ में धन दौलत वाले तो अनेकों होते हैं।
मगर 'युगवीर की तरह धर्म का प्रचार करने वाले बिरले ही होते हैं॥''

माता-पिता ने शिशु का नामकरण संस्कार सम्पन्न किया और नाम रक्खा जुगलकिशोर। यह नाम भी अपना महत्व स्थापित करता है। जीवन में साहित्य और इतिहास इन दोनों धाराओं का एक साथ सम्मिलन होने से यह युगल-जुगल तो है ही, पर नित्य नवीन क्रान्तिकारी विचारों का प्रसारक होने के कारण किशोर भी है। शिक्षा- बालक जुगलकिशोर अपूर्व प्रतिभा का धनी था। उसने पाँच वर्ष की उम्र में ही उर्दू-फारसी की शिक्षा प्रारम्भ कर दी। बालक सबसे बड़ा गुण था, मैं आज्ञाप्रधानी नहीं परीक्षा प्रधानी बनूँगा। अत: हर बात को तर्कणा शक्ति से बुद्धि की कसौटी पर कसकर ही ग्रहण करते थे।

गुरूजन और अभिभावक उसकी तर्कणा शकित से परेशान हो जाते थे। मौलवी साहब विद्यार्थियों को बात-बात पर कहा करते थे कि क्या तुम जुगलकिशोर हो, जो इस प्रकार का तर्क कर रहे हो। विलक्षणता - बालक जुगलकिशोर की स्मरण शक्ति गजब की थी, किसी भी चीज को कंठस्थ करने में उसे महारथ हासिल थी उसने रत्नकरण्डश्रावकाचार, तत्वार्थसूत्र, भक्तामर स्तोत्र आदि ग्रन्थों को कण्ठस्थ कर डाला। मकतब के मुंशी जी अन्य शिष्यों को आगाह करते रहते थे, कि अपना पाठ शीघ्र ही समाप्त करो, अन्यथा जब जुगलकिशोर जम जाएगा, तो फिर किसी को पढ़ने नहीं देगा। प्रतिभा और श्रम का ऐसा मणिकांचन संयोग क्वाचित्-कदाचित् ही दृष्टिगोचर होता है। बालक जुगलकिशोर अपने मौलवी साहब की दृष्टि में दूसरा विद्यासागर ही था, जो बिना पढ़ाये ही छोटी-छोटी पुस्तकों को चट कर जाता था।

पाँचवीं कक्षा तक संस्कृत, अंग्रेजी की शिक्षा भी आपने सरसावा में प्राप्त की। फिर सहारनपुर सरकारी स्कूल में नौवीं कक्षा तक अध्ययन किया तथा इन्ट्रेंस की परीक्षा प्राइवेट रूप में दी।

स्कूल छोड़ने की भी आपकी एक कहानी है। वह कहानी यह है कि आप प्रतिदिन जैन शास्त्रों का स्वाध्याय करते थे। छात्रावास के जिस कमरे में आप निवास करते थे, उस कमरे के ऊपर यह लिख दिया गया था- "None is alloud to enter with shoes" एक दिन एक मुसलमान छात्र जूता पहने हुए, इनके इस कमरे में मना करने पर भी चला आया। निर्भीक जुगलकिशोर ने उसे धक्के देकर कमरे से बाहर निला दिया। उस छात्र ने अपने साथ किये गये इस अभद्र व्यवहार के सम्बन्ध में अपना प्रार्थना-पत्र प्रधानाध्यापक को दिया। प्रधानाध्यापक ने मुसलमान छात्र का पक्ष लेकर जुगलकिशोर के ऊपर आर्थिक दण्ड का निर्णय सुनाया। स्वाभिमानी जुगल किशोर इस घटना से विचलित हो गया और उसने स्कूल से अपना नाम कटाकर प्राइवेट परीक्षा दी।

ऐसे दृढ़ विचारों के संजोए, जब लेखनी साहित्य साधना के लिये बढ़ी तो सहज में ज्ञानामृत की वर्षा होने लगी। सरिता का प्रवाह उद्धाम वेग से फूट पड़ा। मनुष्य की सफलता का परिचायक है उसका साहस, लगन।

जहाँ लगन है वहाँ पुरुषार्थ है। जिन्हें कुछ कर गुजरने की साध होती है वे कोई बहाना नहीं बनाते क्योंकि गुलाब के फूल काँटों में ही शोभा पाते हैं। पं. युगवीर जी के जीवन में न जाने कितने उतार चढ़ाव आये, पर उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। जीवन के शैशव में ही आपकी अन्तः ज्योति ने यह स्पष्ट देख लिया था कि परतन्त्र भारत के धर्म के दुर्भाग्य का कारण अविद्या, असंगठन और मान्य आचार्यों के विचारों के प्रति उपेक्षा भाव है। ऐसे पारदर्शी-

गुणात्मक व्यक्तित्व-के धनी 'युगवीर' के जीवन को कविता और गवेषणात्मक निबन्धों की ओर मोड़ने का श्रेय भी उनके जीवन में घटित एक घटना को है। 1899 ई. के आस-पास जब वे पाँचवीं कक्षा के छात्र थे। उस समय घर में मंगल बधाई गाये जाने का अवसर था। एकत्रित हुई विशिष्ट

नारियाँ अश्लील गीत गाने लगी। उन्होंने तत्काल गाने वाली नारियों को रोक दिया और कुछ ही क्षणों में एक सुन्दर बधाई लिख डाली–

'गावो री बधाई सखि मंगलकारी'[5]

यह रचना उनका अहंभाव नहीं अपितु पीड़ा से कराहती हुई भारतीय संस्कृति की मुक्ति का भी संकेत था। क्योंकि भारतीय संस्कृति पावन तोया गंगा है। इसमें दो नदियाँ आकर मिली हैं, श्रमण और वैदिक। 'संस्कार: इति संस्कृति'। समपूर्वक 'कृ' में भाव अर्थ में 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर संस्कृति शब्द व्युत्पन्न होता है जिसका अर्थ है, संस्करण, परिमार्जन, शोधन आदि। आचार्य हरिभद्रसूरि ने श्रमण की व्याख्या इस प्रकार की है।

"श्राम्यन्तीति श्रमण: तपस्यन्ते इत्यर्थं। अर्थात जो कष्ट सहता है, तप करता है, अपने पुरुषार्थ पर विश्वास करता है वही श्रमण है। श्रमण पुरुषार्थ का और जिन से बना जैन उस शब्द के प्रति फल की व्याख्या, व्यापकता, विशालता, सार्वभौमिकता आदि अर्थों में करता है।[6]"

इस प्रकार यह संस्कृति समस्त पुरुषार्थी समाज की संस्कृति है, ये न यूरोपियन है, न एशियन, न भारतीय अपितु प्राणी मात्र का अन्तस्तल है।

पं. जुगलकिशोर जी ने अपनी इसी सांस्कृतिक विरासत को अपनी सुरुचिपूर्ण प्रवृत्तियों के कारण अक्षुण्ण रखा। उन्होंने कहा हमारे संस्कार पर्वों में गाये जाने वाले गीत हमारे साहित्य एवं संस्कृति की अक्षय निधि हैं, इन्हें हमें संरक्षित बनाकर रखना है। लेकिन आज हम अपनी अविद्या के कारण इन पुनीत पर्वों की रक्षा नहीं कर पाते और इसी प्रसंग से उनकी कवित्व शक्ति का सोया हुआ देवता जाग्रत हो उठा। उनकी सहधर्मिणी ही उनके लिये कविता की पहली पंक्ति सिद्ध हुई। ऐसा लगा मानों हीरे के ऊपर शान रख दी गयी हो।

व्यवसाय–के रूप में जब निर्वाह हेतु आपने मुख्तारी का प्रशिक्षण प्राप्त किया मुख्तारी का पेशा ग्रहण किया। उन दिनों यह पेशा अत्यधिक आकर्षण का केन्द्र था, इसमें पर्याप्त रुपयों की आमदनी होती थी। वकीलों

की संख्या कम तथा पारिश्रमिक अधिक था। अतः साधारण जनता भारी भरकम फीस देने में सर्वथा असमर्थ थी। मुख्तार लोग फौजदारी मुकदमों में बहस भी किया करते थे। ये मुकदमे मौखिक गवाही पर ही अधिक चलते थे, अतः मुख्तार लोगों की आमदनी साधारण वकीलों से भी अधिक थी। मुख्तार जी ने झूठ पर आधारित इस पेशे में रहकर भी कभी झूठ का आश्रय नहीं लिया, फिर भी वादी-प्रतिवादी इन्हें अपना मुकद्मा सुपुर्द कर निश्चिन्त हो जाते थे। आपने 10 वर्षों तक मुख्तारी की और इसीलिए इस नाम से प्रसिद्ध हुए।

वाङ्मय का स्वाध्याय मुख्तारी पेशे के लिए बाधक था, अतः इस पेशे को छोड़कर मात्र साहित्य-साधना में संलग्न हो गये।

12 फरवरी, 1914 ई. का दिन जैन वाङ्मय के लिए ज्योति पर्व था, जिस दिन पं. मुख्तार जी ने सर्वतोभावेन अपना समर्पण जैन धर्म की सेवा के लिए कर दिया।

करुणा तथा आदर्श के प्रतीक-मुख्तार जी स्वभाव से नवनीत से भी अधिक कोमल थे। दूसरों के कष्ट देखकर वे करुणा से विगलित हो जाते थे। उनके व्यक्तित्व में सिद्धान्त रक्षा हेतु कठोरता, मितव्ययिता एवं कर्त्तव्य-परायणता एक साथ समाहित थी। नारिकेल सम व्यक्तित्व के धनी निश्चयतः आप एक कर्मयोगी थे।

उनके भीतर अक्खड़ता एवं निर्भीकता दर्शनीय थी। इस युग पुरुष को ये दोनों गुण, हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी और युगपुरुष निराला से प्राप्त हुए थे। आपने लेखन, सम्पादन और कवित्व-प्रणयन द्वारा माँ भारती के भण्डार को समृद्ध किया-

अपूर्व साहस के धनी-पं. जी अत्यन्त सहिष्णु व्यक्ति थे, आप श्रम करने में जितना अधिक दक्ष थे, उतने ही विरोधियों का विरोध सहन करने में। 'ग्रन्थ परीक्षा' के विरोध में पोपों ने उन्हें पापी, धर्म व आर्ष विरोधी कहा, पर वे अपने कार्यों और विचारों से अडिग बने रहे। उनके इस साहस के लिए कहा जा सकता है-

"मानव जीवन संघर्षों की, एक मधुर मुस्कान है।
पग-पग पर जिसकी लहरों में, एक नया तूफान है॥
तूफानों के बीच भँवर में, फँसता जब इन्सान है।
फिर भी धैर्य नहीं जो खोता, बनता वही महान है॥"

उनके जीवन की सफलता के साधन, साहस, धैर्य और पुरुषार्थ हैं। अस्वस्थ अवस्था में भी आप अपनी कलम को अनवरत रूप से प्रवाहमान रखते थे।

बाबू छोटेलाल ने मुख्तार सा. जैसी जैन विभूति का मूल्यांकन किया और कलकत्ते में 'वीरशासन महोत्सव' का आयोजन कर उन्हें 'वाङ्मयाचार्य' की उपाधि से विभूषित किया। उन्हीं के सहयोग से भारत की राजधानी में 'वीर सेवा मंदिर' का विशाल भवन निर्मित हो गया। इस ट्रस्ट से देवागम स्तोत्र एवं तत्वानुशासन जैसे कई ग्रन्थ प्रकाशित हुए। वास्तव में मुख्तार सा. वे पीठाध्यक्ष थे, जो जहाँ बैठ जायें वहीं पर एक ज्ञानतीर्थ खड़ा कर देते थे। वे जहाँ रहते थे, वहीं शोध प्रतिष्ठान स्थापित हो जाता था।

इसीलिये उनक निकट सम्पर्क में आने वाले पूज्यपाद पं. गणेशप्रसाद वर्णी, पं. नाथूराम जी प्रेमी, बाबू सूरजभानु जी वकील, ब्र. पं. चन्दाबाई जी, आरा, श्री बाबू राजकृष्ण जी दिल्ली, श्रीमान् साहू शान्तिप्रसाद जी कलकत्ता आदि प्रमुख है। इन सभी व्यक्तियों पर मुख्तार सा. की ज्ञानसाधंना का स्थायी प्रभाव है सभी इनके पाण्डित्य की प्रशंसा करते हैं।[8]

भट्टारकों का भण्डाफोड़-जैन धर्म में भट्टारकों का स्थान अत्यन्त सम्माननीय रहा है। कुछ भट्टारक ब्राह्मण जैन हुए वे प्रतिभा से नगण्य होते थे। वे विभिन्न ग्रन्थों से कुछ अंश चुराकर 'कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा भानुमती ने कुनवा जोड़ा' वाली उक्ति को सार्थक करते थे। इस स्तेयकला में वे इनते प्रवीण होते थे, कि बड़े-बड़े दिग्गज पण्ड़ित भी उनकी इस चोरी को पकड़ नहीं पाते थे। हजारों वर्षों का इतिहास में श्री मुख्तार ही अनुपम विलक्षणता के धनी ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने भट्टारकों की चोरी को पकड़ा और उसे परीक्षार्थ जैन समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। फलत: ग्रन्थ परीक्षा के रूप में शोध-खोज

प्रकाशित हुई। ग्रंथ प्रकाशित होते ही जैन समाज में खलबली मच गयी। दुराग्रहियों ने उन्हें जान से मारने की धमकी तक दी, पर वे किंचित् मात्र भी विचलित नहीं हुए। अन्त में बाध्य होकर तथाकथित नेताओं को भी उनकी रचनायें स्वीकार करनी पड़ीं।

लोहमान व्यक्तित्व–जैन वाङ्मय के इतिहास में इनका लोहा मान लिया गया। यही कारण है कि डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने उन्हें साहित्य का भीष्म पितामह कहा है। यदि उन्हें साहित्य का पार्थ भी कहा जाये तो कम ही है।

'युगवीर' यह उनका उपनाम बहुत ही सार्थक और सारगर्भित है। वे इस युग के वास्तविक 'वीर' है, स्वाध्याय वाङ्मय-निर्माण, संशोधन, सम्पादन प्रभृति कार्यों में कौन ऐसा वीर है जो उनकी समता कर सके? वे केवल युग निर्माता ही नहीं, युग संस्थापक ही नहीं, अपितु युग-युगान्तर निर्माता और संस्थापक है। उन्होंने अपने अद्वितीय व्यक्तित्व से 'युगवीर' नाम को सार्थक किया है।

पारिवारिक कटु अनुभव–"जो-जो देखी वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रें" यह उक्ति पं. जुगलकिशोर के जीवन में पूर्णरूपेण खरी उतरती है। माता-पिता का वियोग, दो पुत्रियों का बचपन में ही वियोग होने से आपका हृदय चलायमान हो गया। इतना ही नहीं 15 मार्च, 1919 को उनके जीवन की आशालता पर तुषारापात होकर कल्पनाओं का महल सदैव के लिए ढह गया। 25 वर्षों की जीवन संगिनी ने उनका साथ छोड़ दिया। ऐसी विषमता में भी मुख्तार जी ने अपनी साहित्य साधना को अक्षुण्ण रखा।

कृतित्व–जिनवाणी के सच्चे सपूत पं. जी के साहित्य साधना का श्रीगणेश सन् 1896 ई. से हो चुका था। अध्ययन और मनन द्वारा वे निष्पत्तियों को ग्रहण करते थे। निबन्ध व कविता लिखना, समाज सुधारक क्रान्तिकारी भाषणों द्वारा समाज को उद्बोधन करना तथा करीतियों और अन्धविश्वासों का निराकरण कर यथार्थ आर्षमार्ग का प्रदर्शन करना आदि आपके संकल्प थे।

संस्थापक तथा सम्पादक के रूप में–आपने सर्वप्रथम जैन गजट के सम्पादक का भार ग्रहण कर अहिंसा और अनेकान्त की शंख ध्वनि द्वारा समाज का परिष्कार किया। जैन हितैषी का भी 1931 तक सम्पादन करते रहे। संस्थापक के रूप मे विभिन्न संस्थाओं के संस्थापक रहे। 21 अप्रैल 1929 में आपने अनेकांत का सम्पादन कार्य प्रारम्भ किया। अनेकांत की सम्पादित नीति जन रुचि की नहीं जनहित की थी। इसकी स्पष्ट झलक अन्तिम 5 दोहों में देखा जा सकता है।

शोधन-मथन विरोध का, हुआ करे अविराम।
प्रेम पगे रल मिल सभी करें कर्म निष्काम॥

राष्ट्रप्रेम की भावना-से ओत-प्रोत आपका कार्य क्षेत्र मात्र जैन इतिहास और समाज तक ही सीमित न था, किन्तु उनके कार्यों का विस्तार राष्ट्र के कार्यों तक हो चुका था। खादी पहनना, चरखा कातना आदि उनके नित्य नियम में सम्मिलित था। जब प्रथमबार महात्मागाँधी गिरफ्तार हुए तो मुख्तार साहब ने नियम ग्रहण किया कि जब तक गाँधी जी कारागार से मुक्त न होंगे, तब तक चरखा खते बिना भोजन ग्रहण नही करूंगा। सत्याग्रह आन्दोलन में जो भी भाग लेता था आप यथाशक्ति उनके परिवार वालों की तन, मन, धन से मदद करते थे।

दिल्ली में समन्तभद्राश्रम की स्थापना कर विद्वानों को संगठित कर पुरातत्व वाक्य सूची, लक्षणावली जैसे कार्यों को संकलन व सम्पादन कर, इस आश्रम के पीठाध्यक्ष साथ ही वरिष्ठ निदेशक के पद को मुख्तार जी ने सुशोभित किया। फिर यह 'समन्तभद्राश्रम' वीर सेवा मन्दिर से परिवर्तित हो दिल्ली से सरसावा चला गया।

'करत-करत अभ्यास के जड़मति होय सुजान' उक्ति को सार्थक करता हुआ धीरे-धीरे साहित्य साधना का यह मन्दिर छोटा सा शोध प्रतिष्ठान बन गया। जिसमें न्यायतीर्थ पं. दरवारीलाल कोठिया, पं. परमानन्द शास्त्री, पं. ताराचन्द न्यायतीर्थ, पं. शंकरलाल न्यायतीर्थ आदि शोधार्थी के रूप में वाङ्मय का अनुसंधान करते थे।

निःसन्देह कहा जा सकता है कि ज्ञानपीठ की स्थापना से पूर्व यही एक ऐसी दिगम्बर संस्था थी, जिसमें अनुसंधान और प्रकाशन दोनों कार्य एक साथ सम्पन्न होते थे। पं. जी ने अपनी सारी सम्पत्ति ट्रस्ट को दे दी।

कवि के रूप में–मुख्तार जी की कवितायें भारती का शृंगार हैं। आपके काव्य में माधुर्य का मधुर निवेश प्रसाद की स्निग्धता, पदों की सरसशय्या, अर्थ का सौष्ठव, अलंकारों की अनुपम छटा सर्वत्र देखी जा सकती है। आपके कवित्व में कला पक्ष की अपेक्षा भाव पक्ष अधिक मुखर है। मानव हृदय की परिवर्तनशील प्रवृत्तियों का चित्रण संस्कृत वागविलास में मुखरित है। उनकी भावना है कि समन्तभद्र अपनी वाणी के द्वारा हमें सन्मार्ग प्रदान करें–यथा–

यद् भारती–सफल–सौख्य विद्यायिनीद्धि तत्व–तरूपण–परा नयशालिनी वा।
युक्त्याऽऽगमेन च सदाऽप्य विरोधरूपा सदृर्त्य दर्शयतु शास्तृसमन्तभद्रः॥

'मदीयाद्रव्यपूजा' भाव की दृष्टि से उच्च कोटि की कविता है। कवि ने वीतरागता को ही परम उपास्य कहा है। विजयी प्रभु को उपास्य बताते हुए उन्होंने लिखा है–

"इन्द्रिय विषय लालसा, जिसकी, रही न कुछ अवशेष।
तृष्णा नहीं सुखा दी सारी, घर असंग व्रत वेष॥"

कवि का रुपालंकार का प्रयोग भी दृष्टव्य है–

धर्मामृतपी, सभी भव्य चातक हरषाये,
आन्दोलित थे हृदय कहत कुछ बन नहीं आवे।
हेयाऽऽदेय विवेक लहरथी जग में छाई,
निजकर में स्वोत्थान पतन की बात सुहाई॥

राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत मेरी भावना के कारण मुख्तार जी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के समान अमर रहेंगे। उनकी मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भावना के कारण कहा जा सकता है–

"जब तक सूरज चाँद रहेगा, मुख्तार जी का नाम रहेगा।"

उन्होंने मानवता खण्ड के अन्तर्गत अनित्यभावना सम्बोधन खण्ड को छह भागों में विभक्ति किया है। मानव धर्म शौर्य कविता में अछूतोद्धार का सजीव चित्रण किया है-

गर्भवास औ 'जन्म समय में कौन नहीं अस्पृश्य हुआ?
कौन मलों से भरा नहीं ? किसने मल मूत्र न साफ किया?
किसे अछूत जन्म से तब फिर, कहना उचित बताते हो?
तिरस्कार भंगी चमार का करते क्यों न लजाते हो?'

निबन्धकार के रूप में-आप निबन्धकार के रूप में द्विवेदी जी से भी एक कदम आगे थे। आपने वर्णात्मक, शोधात्मक एवं वैयक्तिक निबन्धों का संग्रह 'युगवीर निबन्धावली' दो खण्डों में किया है। प्रथम खण्ड में 41 और द्वितीय में 65 निबन्ध संगृहीत है। प्रथम खण्ड के निबन्ध सामाजिक, राष्ट्रीय, विश्लेषणात्मक, आचारमूलक, भक्तिपरक, दार्शनिक, सुधारात्मक या जीवन शोधक विषय के हैं।

द्वितीय खण्ड के निबन्ध 5 भागों में वर्गीकृत हैं-1. उत्तरात्मक, 2. समालोचनात्मक, 3. स्मृति परिचयात्मक, 4. विनोदसमीक्षात्त्मक और 5. प्रकीर्णक।

भाष्यकार के रूप में-भाष्य शब्द का अर्थ है किसी एक भाषा की किसी उक्ति, संदर्भांश या मूलग्रंथ के अर्थ को भाव की दृष्टि से अक्षुण्ण रखते हुए अर्थात् अर्थ या भाव को उसी भाषा या अन्य भाषा में अपनी ओर से शका-समाधान पूर्वक कथित या निहित तथ्यों की पुष्टि करता है व्याकरण के अनुसार भाष्य शब्द भाष+ण्यत्. से बना है, इसका अर्थ है बोलना, व्याख्या या वृत्ति लिखना।

आपने अपनी अमर लेखनी द्वारा आ. समन्तभद्र की प्रायः समस्त कृतियों पर भाष्य लिखे हैं। भाष्यकार वह होता है जो भूलभावों के अक्षुण्ण रखता हुआ सरल और स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत करता है।

शंका-समाधान पूर्वक विषय का पूरा स्पष्टीकरण करते हुए रोचकता एवं प्रवाह उत्पन्न करना भाष्यकार के लिये अनिवार्य है। अतलतलस्पर्शी पाण्डित्य के साथ गहराई में छिपे हुए तथ्यों का विश्लेषण-विवेचन भी अपेक्षित रहता है। भाष्यकार की सबसे प्रमुख विशेषता, तटस्थता और ईमानदारी की है। अद्यावधि आपके द्वारा (युगवीर के) प्रणीत निम्न भाष्य उपलब्ध हैं - 1. स्वयंम्भूस्तोत्राभाष्य 2. युक्त्यनुशासन भाष्य, 3. रत्नकरण्डश्रावकाचार भाष्य 4. देवागम-आतमीमांसा भाष्य 5. अध्यात्मरहस्य भाष्य 6. तत्त्वानुशासन भाष्य 7. योगसार प्राभृत भाष्य 8. कल्याणमन्दिरस्तोत्रभाष्य

युगवीर की भाष्य शैली की निम्नलिखित विशेषतायें हैं

1. अभिव्यंजना शक्ति की प्रबलता 2. शब्दों का उचित सन्निवेश 3. अभिधागत शब्दों की स्पष्ट व्याख्या 4. यथार्थता 5. वैयक्तिकता भावों विचारों की प्रेषकीयता। 6. औचित्य का संयोजन 8. सामग्री चयन में अत्यन्त सतर्कता।

इतिहासकार के रूप में-मुख्तार सा. ऐसे प्रथम इतिहासकार है जिन्होंने विद्यानंद और अकलंक से पात्रकेशरी का पूर्ववृर्त्तित्व सिद्ध किया है। ऐतिहासिक रचनाओं में तत्त्वार्थाधिगम भाष्य और उसके सूत्र सम्बन्धी शोध निबन्ध है। कार्तिकेयानुप्रक्षा और स्वामिकुमार नाम ऐतिहासिक लेख आपके मौलिक शोध है। मुख्तार सा. की कथन शैली तटस्थ इतिहासकार की है। मुख्तार जी ने जैन साहित्य पर कई दृष्टियों से अभिनव प्रकाश डाला है।

पत्रकार के रूप में-किसी भी समाज के विकास में पत्रकारिता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। पत्र पत्रिकाओं का साहित्य, स्थायी साहित्य से कम मूल्यवान नहीं होता है। पं. जुगलकिशोर जी का पत्रकार जीवन एक जुलाई 1907 से प्रारम्भ हुआ जो आजीवन जारी रहा।

अतः श्रम एवं अध्यवसाय जीवनोत्थान के लिये आवश्यक गुण हैं हमें गुणों का समवाय आ. मुख्तार सा. के व्यक्तित्व में प्राप्त होता है। उनका मस्तिष्क ज्ञानी का, हृदय योगी का और शरीर कृषक का था।

निःसन्देह मुख्तार सा. के व्यक्तित्व में उदात्त भावना तथा कृतित्व में ज्ञानराशि प्रवाहित है। उनके द्वारा की गई साहित्य की साधना जन-जन में ज्ञान धारा को प्रवाहित करती रहेगी।
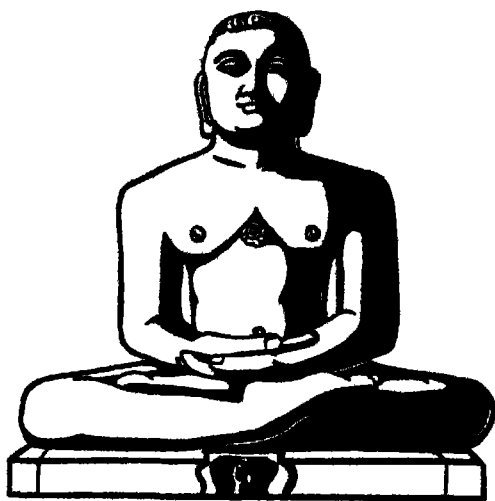
द्वितीय खण्ड

कृतित्व
काव्य
समीक्षा

2. कृतित्व काव्य - समीक्षा

1. युगवीर जी की अमरकृति - मेरी भावना - पं. अनूपचंद न्यायतीर्थ
2. युगवीर की राष्ट्र को अमूल्य देन - मेरी भावना - डॉ. कृष्णा जैन
3. मेरी भावना बनाम जनभावना - एक समीक्षा - डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल
4. मेरी भावना - एक समीक्षात्मक अध्ययन - लालचन्द्र जैन 'राकेश'
5. मेरी भावना - आगमोक्त भावनामूलक सारांश संकलन - पं. शिवचरण लाल जैन
6. युगवीर भारती की समीक्षा - डॉ. प्रेमचन्द्र रांवका
7. युगवीर भारती के सम्बोधन खण्ड का समीक्षात्मक अध्ययन - श्रीमती कामिनी जैन 'चैतन्य'
8. युगवीर भारती के सत्प्रेरणा खण्ड की समीक्षा - श्रीमती सिन्धुलता जैन
9. युगवीर भारती का संस्कृत वाग्विलास खण्ड - समीक्षात्मक अध्ययन - डॉ. विमलकुमार जैन
10. 'मीन-संवाद' बनाम मानव धर्म - डॉ. कमलेश कुमार जैन

युगवीर जी अमर कृति - मेरी भावना

पं. अनूपचन्द न्यायतीर्थ, जयपुर

सरसावा के संत आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार का नाम जैन साहित्यजगत में कौन नहीं जानता। ये साहित्य जगत के एक चमकते हुए सितारे हैं। उन्होंने अपना जीवन यद्यपि मुख्तारकारी से प्रारम्भ किया, किन्तु कभी असत्य व अन्याय का पक्ष नहीं लिया। मुख्तार साहब एक समाज सुधारक क्रांतिकारी युग पुरुष कुरीतियों एवं अंधविश्वासों को जड़ से उखाड़ने वाले निर्भीक और निडर व्यक्तित्व के धनी थे। उनका जीवन तपे हुए सोने के समान निखरा हुआ था। वे सफल समालोचक, निष्ठावान् दृढ़ श्रद्धानी एवं अपनी बात के पक्के थे। वे सहृदयी उदार नारियल के समान ऊपर से कठोर एवं अन्दर से कोमल थे। धर्म, समाज, साहित्य एवं राष्ट्र के प्रति पूर्ण समर्पित थे। वे सफल पत्रकार, निबन्धकार तथा समीक्षक के साथ-साथ अच्छे कवि भी थे। उनकी अमर कृति 'मेरी भावना' युगवीर अर्थात् 'जुगलकिशोर' के नाम को सार्थक करती है। आज मुख्तार साहब नहीं हैं किन्तु 'मेरी भावना' ने उनके नाम को अमर कर दिया है। 'मेरी भावना' का मेरे मानस पटल पर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि जब से मैने होश संभाला है इसका नित्य प्रति पाठ करता हूं। यह एक राष्ट्रीय कविता है, जिसमें विश्व मैत्री, कृतज्ञता, न्यायप्रियता, सहनशीलता, समताभाव, नैतिकता, देशोद्धार आदि विचारों की प्रधानता है।

प्रस्तुत निबंध में मेरी भावना पर ही विशेष ध्यान आकर्षित करना है।

मेरी भावना में कवि ने गागर में सागर भर दिया है। सारे सिद्धांत ग्रंथों, पुराणों एवं आगम का सार काव्य रुप में प्रस्तुत किया है।

विवेच्य मेरी भावना में 11 पद्य हैं जो सभी पठनीय एवं माननीय हैं। पहिले पद्य में कवि ने अपने इष्टदेव के प्रति भक्ति प्रकट करते हुए कहा है कि मेरा तो केवल वही आराध्य है जो वीतरागी हो सर्वज्ञ हो, मोक्ष-मार्ग का

प्रणेता हो और हितोपदेशी हो, उसे बुद्ध, महावीर, जिनेन्द्र, हरिहर, विष्णु, ब्रह्मा, महेश आदि किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। इस पद्य में कवि ने अर्हन्त-सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप ही निरूपित कर दिया है।

दूसरे पद्य में सर्वसाधु का स्वरूप बताते हुए उनके प्रति अपनी निष्ठा प्रकट की है। आचार्य समन्तभद्र ने जो साधु का स्वरूप 'विषयाशा-वशातीतो निरारंभो परिग्रहः' आदि रत्नकरण्डश्रावकाचार में बतलाया है। अर्थात् जिनके इन्द्रियविषय-कषायों की चाह नहीं, जो समताभाव के धारी हैं स्व-पर के कल्याण के कर्ता हैं, निःस्वार्थ सेवी तथा दूसरों के दुःख को दूर करने में तत्पर रहते हैं, वे ही सच्चे साधु हैं।

तीसरे और चौथे पद्य में कवि ने पांच पापों - हिंसा, झूंठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के प्रति विरक्ति दर्शाते हुए अपनी भावना व्यक्त की है तथा ऐसे त्यागी साधुओं की संगति करने एवं उन्हीं के समान आचरण करने की जिज्ञासा प्रकट की है, जो इन पापों से मुक्त हो। क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों को छोड़कर सरल और सत्य व्यवहार के द्वारा जीवन मे परोपकार करते रहने की भावना भायी है।

'मेरी भावना' के पांचवे और छठे पद्य में विश्व-मैत्री का भाव प्रकट करते हुए दीन-दुखियों पर करुणाभाव, दुर्जन तथा कुमार्ग गामियों के प्रति अक्षोभ, गुणी जनों के प्रति प्रेम, तथा गुणग्रहण के भाव प्रकट किये हैं। परनिन्दा न करने तथा पराये दोष ढकने का सकल्प किया है।

सांतवे तथा आठवें पद्य में कवि ने अपनी भावना प्रकट करते हुए कहा है कि मैं सदा न्याय-मार्ग पर चलता रहूं, मुझे कोई बुरा कहे या अच्छा, लक्ष्मी रहे या न रहे किसी की परवाह नहीं है सुख-दुख में समता भाव रखना, इष्ट वियोग और अनिष्ट योग में सहनशीलता धारण करना ही मेरा मुख्य उद्देश्य हो। इस सम्बन्ध में निम्न पद्य चिन्तनीय है-

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे
लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जावे।

अथवा कोई कैसा भी भय या लालच देने आवे
तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पग डिगने पावे।

आगे कवि दृढ़ता के साथ कहता है।

होकर सुख में मग्न न फूलें दुख में कभी न घबरावे
पर्वत नदी शमशान भयानक अटवीं से नहिं भय खावे।
रहे अड़ोल अकम्प निरन्तर यह मन दृढ़तर बन जावे
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में सहनशीलता दिखलावे॥ *

अन्तिम तीन पद्यों में कवि ने मंगल कामना प्रकट करते हुए कहा है कि संसार के सभी प्राणी सुखी रहें, वैर-विरोध-अभिमान से दूर रहें, घर-घर में धर्म की चर्चाऐं हो, कहीं भी कुकृत्य नहीं रहे, मनुष्य जन्म का सर्व श्रेष्ठ फल यही माने कि ज्ञान और आचरण को उन्नत बनायें।

संसार में किसी प्रकार का भय नहीं हो, समय पर वर्षा हो अर्थात् अतिवृष्टि या अनावृष्टि नहीं हो, सरकार का धर्म हो कि जनता के प्रति न्यायवान् हो, सभी निरोग और स्वस्थ रहे, अकाल की छाया नहीं पड़े, सम्पूर्ण जनता शांति से रहे तथा जगत में अहिंसा धर्म का प्रसार होकर सभी का कल्याण हो।

यह मंगल कामना ठीक उसी प्रकार से प्रकट की गयी है जैसी कि पूजा के अंत में शान्ति पाठ में की गयी है।

अन्तिम पद्य में उपहार स्वरूप भावना प्रकट करते हुए महामनीषी कविवर युगवीर जी कहते हैं कि संसार में सभी आपस में प्रेम से रहे, मोह को शत्रु मान कर उससे दूर रहें, किसी को अप्रिय और कठोर शब्द नहीं कहें, सभी राष्ट्र की उन्नति में लगे तथा वस्तु के वास्तविक स्वरुप को अर्थात् संसार की असारता को विचार करते हुए जो भी विपत्ति आवे उसे हंसते-हंसते सहन करते रहे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मेरी भावना केवल मुख्तार साहब की भावना की ही द्योतक नहीं है बल्कि समूचे पाठकों के हृदय के भावों को

व्यक्त करती है। पाठक जब एकाग्र-चित्त होकर इसका पाठ करता है तो उसके मन को अपार शान्ति मिलती है। कविता की भाषा इतनी सरल है कि मामूली पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी इन पंक्तियों का भाव आत्मसात कर लेता है। कवि ने इस रचना में अपने हृदय के भावों को उड़ेल कर रख दिया है। केवल जैन समाज में ही नहीं अपितु इतर समाज में भी मेरी भावना इतनी लोकप्रिय है कि अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद होकर लाखों की संख्या में वितरित हो चुकी है। इसमें जैन, बौद्ध, ईसाई, हिन्दू, मुस्लिम आदि सभी धर्म ग्रन्थों का सार विद्यमान है। इसे सर्वोदयी रचना कहा जावे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः।

कारण के गुण के अनुसार ही कार्य का गुण देखा जा सकता है।

-वैशेषिक दर्शन (१।१।२)

ख्यातिं यत्र गुणा न यान्ति गुणिनस्तत्रादरः स्यात् कुतः।

जहाँ गुणों की प्रशंसा नहीं होती, वहाँ गुणी का आदर कैसे हो सकता है?

-सीत्काररत्न (वल्लभदेव की सुभाषितावलि, २८४)

गुणैरुत्तमतां याति, नोच्चैरासन-संस्थितः।
प्रासादशिखरस्थोऽपि, काकः किं गरुडायते॥

मनुष्य गुणों से उत्तम बनता है, न कि ऊँचे आसन पर बैठा हुआ उत्तम होता है। जैसे ऊँचे महल के शिखर पर बैठ कर भी कौआ कौआ ही रहता है, गरुड नहीं बनता।

-चाणक्यनीति

युगवीर की राष्ट्र को अमूल्य देन - "मेरी भावना"

डॉ. (श्रीमती) कृष्णा जैन, ग्वालियर

हे वाणी के धनी सत्यव्रत त्यागमयी जीवन है।
हे महापुरुष हम सबका तुमको शत-शत बार नमन है।

कुछ लोग बड़े घर में जन्म लेकर बड़े बन जाते हैं। कुछेक बड़ों की कृपा से बड़े बनने का श्रेय प्राप्त कर लेते हैं। बहुत कम ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अपने पुरुषार्थ और सेवा साहित्य के बलबूते पर अपने को बड़ा बना लेते हैं। पं. श्री जुगलकिशोर "मुख्तारजी" इसी कोटि के विरल किन्तु जुझारु व्यक्तित्व के धनी हैं; जिन्होंने अपने जीवन की अनेक दशाब्दियाँ समाज सेवा में खपा दी। और इसी ब्याज से आज आप ग्राम नगर एवं राष्ट्रीय स्तर पर हर क्षेत्र में समाहृत हैं।

ग्राम सरसावा की मृतिका ने सायंकाल की बेला में, मार्ग शीर्ष शुक्ला एकादशी विक्रम सं. 1934 को इस ज्ञान तपस्वी के चरणों का स्पर्श प्राप्त किया और आगे चलकर यही ज्ञान तपस्वी अपने शताधिक निबन्धों, भाष्यों, कविताओं, लेखों के माध्यम से राष्ट्र भारती के इतिहास में अमर हो गया।

"मेरी भावना" महाकवि युगवीर की सबसे प्रसिद्ध और मौलिक रचना है। कविता भावों की विशेष उद्बोधिका होने के कारण मानव को अभीष्ट कार्य में प्रवृत्त करने का सबसे अभीष्ट साधन होती है। यह हृदय के ऊपर गहरी चोट करने के साथ ही उसे सद्यः उत्तेजित भी करती है। और यही कारण है कि महाविभूति युगवीर ने अपनी राष्ट्रीय सोच, राष्ट्रीय चिन्तन एवं राष्ट्रीय एकता के लिए अपने हृदय के उद्‌गारों को व्यक्त करने का माध्यम कविता को ही बनाया।

मेरी भावना कविता में कुल 11 पद्य हैं। जिनके माध्यम से कवि ने संसार के समस्त प्राणियों के प्रति सुख की कामना की है।

प्रथम पद्य में कवि ने सर्वमान्य देव या आराध्य का स्वरुप अंकित किया है। कवि की कामना है कि मेरा मन/मेरा चित्त ऐसे प्रभु की भक्ति में लीन हो, जिन्होंने राग-द्वेष एवं कामादिक पर विजय प्राप्त कर सर्वज्ञता की प्राप्ति की है तथा समस्त जगत को निस्पृह भाव से मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है। तीसरी पंक्ति में हमें कवि की अनेकान्तात्मक दृष्टि का भी परिचय प्राप्त होता है।

बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।[1]

उनकी मान्यता है कि हम उस आराध्य को किसी भी नाम से पुकारें लेकिन वह आराध्य एक ही है। वह जहाँ कहीं भी जिस किसी नाम से है उसे श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हैं।

सज्जन पुरुषों की व्याख्या करते हुए आचार्य ने कहा है कि वह स्वयं कभी विषयों की आशा न रखते हुए संसार के सभी प्राणियों पर साम्यभाव रखते हुए रात-दिन दूसरों के हितों की रक्षा के लिए अपने हितों का त्याग कर किसी से मनोमालिन्य नहीं करते हैं। कवि की ऐसी समत्व दृष्टि संसार की तमाम संकीर्णताओं को समाप्त कर देती है। भौतिकता की चकाचौंध से दूर रहकर समाज सेवा, परोपकार एवं अपरिग्रही जीवन जीने की प्रेरणा देती है। आज के युग में विज्ञान ने व्यक्ति में इच्छाओं की प्यास जगाकर एवं आवश्यकताओं की भूख उत्पन्नकर जो असन्तोष एवं अतृप्ति का वातावरण बनाया है। उसके लिए प्रस्तुत पद्य एक औषधि रुप है।

जीवन के उत्कर्ष के लिए पांच पापों का विसर्जन अनिवार्य है सही अर्थों में मनुष्य जीवन जीने की ये पांच अनिवार्य शर्तें हैं। उनसे दूर रहकर संतोषरूपी अमृत का पान करना ही कवि की भावना है-

"रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे,
उनही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे॥
नहीं सताऊँ किसी जीव को झूंठ कभी नहीं कहा करूँ
परधन, पर तन पर न लुभाऊँ सन्तोषामृत पिया करूँ॥"[2]

संतोषरूपी अमृत की महत्ता को अन्य कवियों के साथ महात्मा कबीर ने भी इन पंक्तियों में व्यक्त की है -

गोधन, गज-धन, वाजि-धन और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान॥

अहंकार की अन्तर्गर्जना से बहरे कानों में शान्ति की शब्दावली कभी प्रवेश नहीं करती है। हम सभी इस बात से सुपरिचित हैं कि घृत की आहुतियाँ यज्ञ के अग्निजात को जिस प्रकार प्रज्जवलित करती हैं, उसी प्रकार ईर्ष्या की आहुतियाँ अहंकार की ज्वालाओं को भी प्रतिक्षण उत्तेजित करती है। इसलिए युगवीर जी हमको अहंकार का त्याग कर क्षमतारूपी धरती पर खड़ा होने के लिए प्रेरित करते हैं। इन शब्दों में देखे-

"अहंकार का भाव न रक्खूँ नहीं किसी पर क्रोध करूँ,
देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ॥
रहे भावना ऐसी मेरी सरल सत्य व्यवहार करूँ,
बने जहाँ तक इस जीवन में औरों का उपकार करूँ॥"[3]

समस्त जगत के प्राणियों पर मैत्रीभाव, साम्यभाव एव दीन दुखियों पर करुणास्रोत की वर्षा प्रत्येक व्यक्ति का परम धर्म होना चाहिए। हमको विश्व को एक बनाने के लिए प्रेरित करती है कवि की ये पंक्तियाँ -

मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे,
दीन, दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणा-स्रोत बहे।
दुर्जन क्रूर, कुमार्ग-रतों पर क्षेभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे॥

आचार्य अमितगति ने भी इसी प्रकार की भावना अपने इस श्लोक के माध्यम से व्यक्त की है-

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं किलष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं।
माध्यस्थ्य भावं विपरीत वृत्तौ, सदाममात्मा विदधातु देव॥

इस प्रकार की "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना संसार के सभी प्राणियों में यदि हो जाये तो इस धरा पर पुनः स्वर्ग की कल्पना की जा सकती है।

न्याय के प्रति युगवीर जी का गहरा आग्रह है। न्यायपथ पर चलते हुए कितनी ही विघ्न बाधायें आये, लेकिन कभी हमारे कदम नहीं डगमगाना चाहिए। महाकवि भर्तृहारि ने भी अपने नीतिशास्त्र में कहा है -

> निन्दन्तु नीति निपुणाः यदि व स्तुवन्तु,
> लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
> अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा,
> न्यायात्पथात् प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

न्याय के सम्बन्ध में में युगवीर जी का स्पष्ट अभिमत है कि मानव यदि प्रत्येक परिस्थिति में न्याय ग्रहण करने का इच्छुक हो और अन्याय का त्याग करे तो उसका सभी दृष्टिकोणों से विकास हो सकता है।

सुख और दुःख में, हर्ष और विषाद में हमें साम्य दृष्टि रखते हुए मन की चंचलता पर नियन्त्रण रखना चाहिए। अपने व्यक्तित्व की विकास यात्रा के साथ ही कवि की भावना है कि संसार के सभी प्राणी भी बैर, पाप एवं अभिमान को त्यागकर सुखी जीवन व्यतीत करें। प्रत्येक घर मे धर्म का वातावरण बनें, जिससे कि बालक वृद्ध, नर और नारी सभी का बौद्धिक एवं चारित्रिक विकास हो।

राजनीति के कुचक्र मे क्षुद्र भावों की पूर्ति के लिए कहीं धर्म के नाम पर कहीं भाषा एवं वेश के आधार पर बार-बार हिसा को उकसाया जा सकता है। सतों/महात्माओं द्वारा जगाई गई अहिंसा की ज्योति को बुझानें का प्रयास किया जाता है। परन्तु वह ज्योति केवल कांप कर रह जाती है बुझती नहीं है। यही अहिंसा राजा और प्रजा के बीच सर्वत्र व्याप्त हो।

मेरी भावना मे काव्यगत सौन्दर्य की झलक भी सर्वत्र परिलक्षित होती है। शब्द चयन एव भाव की दृष्टि से पद्य अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। शब्द का सौष्ठव तथा पदावली का मधुमय विन्यास देखते ही बनता है। विपुल अर्थ को कम से कम शब्दों मे प्रकाशित करने की क्षमता कवि में वर्तमान है। हृदय के परिवर्तनशील भावों का अंकन कमनीय शब्द कलेवर में किया है। प्रसाद गुण सम्पूर्ण पदावली में विद्यमान है। संतोष को अमृत का रूपक देकर ससार के

समस्त पेयों को विगर्हणीय माना है। यहाँ न तो कल्पना की उड़ान है, और न प्रतीकों की योजनायें, पर भावों की प्रेषणीयता इतनी प्रखर हैं, कि प्रत्येक पाठक भावगंगा में निमग्न हो जाता है।

इसी वैशिष्ट्य के कारण मेरी भावना का विभिन्न पाठशालाओं, विद्यालयों में राष्ट्रीय गान के रूप में पाठ होता है। कई भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। प्रत्येक पद्य का सचित्र लेश्याओं सहित वर्णन एवं चित्रण भी हमें प्राप्त होता है।

लगता है मेरी भावना के माध्यम से युगवीर जी वात्सल्यभाव से हमारे लिए प्रेम और सहअस्तित्व का परामर्श निरन्तर प्रस्तुत कर रहे हैं। विनाश को टालने और शान्ति स्थापना के लिए कहीं गीता और रामायण, कहीं पुराणों एवं संहिताओं में से प्रकट होकर वे पुण्य परामर्श प्रस्तुत कर रहे हैं। कहीं ऋषियों, मुनियों एवं संतों की वाणी का उपदेश एवं शाश्वत सन्देश हमें उनके काव्य में दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो सहज मानवीय प्रेरणा का रूप धरकर, वह हमारे अन्तस में बार-बार अवतरित होकर भांति-भांति से हमें अनुप्राणित करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

आज सामान्य व्यक्ति के जीवन में शान्ति का अभाव होता जा रहा है। जीवन के संघर्ष के दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि हमारी सारी दौड़ भौतिक समृद्धि के लिए समर्पित होकर रह गई है। आज मानवीय मूल्यों का इतना ह्रास हो गया है कि वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन में सर्वत्र असत्य विकृतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। ऐसे में जीवन की, राष्ट्र की हर समस्या का समाधान एवं संकल्पों की दृढ़ता देने वाले कालजयी परामर्श मेरी भावना में प्रस्तुत किये गए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कवि का यह छोटा-सा काव्य मानव जीवन के लिए एक ऐसा रत्नदीप है जिसका प्रकाश सदा अक्षुण्ण रहेगा।

सन्दर्भ-सूची

1 मेरी भावना पद्य।
2. मेरी भावना पद्य 3
3. मेरी भावना पद्य 4

मेरी भावना बनाम जन भावना : एक समीक्षा

डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल, अमलाई (म. प्र.)

प्राचीन जैनाचार्यों का जीवन-काल और उनकी रचनाओं की शोध-खोज तथा जैन साहित्य में जैन-सिद्धान्त विरोधी तत्वों की मिलावट का भंडाफोड़ करने वाले शोध-पिपासु, अनवरत ज्ञानयोगी, अद्भुत तर्कशील, श्रमसाधक एवं बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, पंडितरत्न जुगल किशोर जी मुख्तार के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का मूल्यांकन करना वास्तव में जैन-संस्कृति को दी गयी उनकी बहुमूल्य सेवाओं के लिए विनम्र श्रद्धान्जली देना है। इस स्तुत्य कार्य के लिये पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी, संगोष्ठी के आयोजक एवं सयोजक गण सभी साधुवाद के पात्र हैं।

जिस प्रकार वस्तु-स्वरूप शब्दांकन के परे हैं, उसी प्रकार किसी कर्मठ एवं समर्पित विराट व्यक्तित्व को शब्दों की परिधि में बाँधना कठिन है। यही बात कर्मयोगी, साहित्य महारथी, क्रांतिकारी विचारक पं जुगलकिशोर मुख्तार पर लागू होती है। व्यक्ति, परिवार, समाज, धर्म, संस्कृति और राष्ट्र के प्रति जब-जब जैसा-जैसा उत्तरदायित्व उन पर आया, उन्होंने समर्पित भाव से उसे स्वीकार किया और सफलता पायी। वे निष्कामकर्मी एवं तत्व मर्मज्ञ थे। सामाजिक परिवेश में वे सुयोग्य संगठक, राष्ट्र भक्त, समाजसुधारक, अन्वेषक एवं जिनशासन भक्त थे। उनका ध्येय वीतरागवाणी द्वारा प्राणी मात्र का कल्याण करना था, इसके लिये वे आजीवन समर्पित रहे।

पं मुख्तार साहित्य की प्रत्येक विद्या के मर्मज्ञ और सृजक थे। पत्र-पत्रिका सम्पादन, निबन्ध लेखन, ग्रंथ समीक्षा/परीक्षा, टीकाकार, इतिहास आदि साहित्य की विधाओं पर उन्होंने सार्थक, प्रभावपूर्ण सफल लेखनी चलाई और नये-नये तथ्यो का उद्‌घाटन किया। इसी कारण पं. मुख्तार अपने जीवन काल में ही ''युगवीर'' सम्बोधन से प्रसिद्ध हुए।

वर्तमान में अधिकाधिक साहित्य सृजन एवं प्रकाशन की होड़ कतिपय साधन सम्पन्न महानुभावों/साधकों में लगी है। अधिकाधिक प्रकाशन की भावना में सार्थक/सारगर्भित प्रकाशन का बोध लुप्त हो गया है। ऐसे महानुभावों को पं. मुख्तार की साहित्य साधना दिशा बोध कराती है कि साहित्य सृजन/प्रकाशन गुणात्मक कालजयी हो, न कि परिमाणात्मक-सामायिक। पं. मुख्तार सफल एव तार्किक लेखक के साथ ही सहृदय एवं यथार्थपरक कवि भी थे । वीतरागता, विश्वबन्धुत्व, आदर्श मानव जीवन, अछूत्तोद्धार, भक्तिपरक स्तोत्र आदि मानव जीवन को महिमा-मंडित करने वाले विषयों पर उन्होंने भाव-प्रण कविताऐं हिन्दी और संस्कृत भाषा में शब्दांकित की। ये कविताऐं "युगभारती" नाम से प्रकाशित हुई।

मेरी भावना-जन भावना

उनकी हिन्दी कविताओं में सर्वाधिक लोकप्रिय एवं बहुपठित कविता "मेरी भावना" में कवि ने पक्षपात की भावना से ऊपर उठकर प्राणीमात्र की शांति, उत्थान और उन्हें अध्यात्मिक ऊँचाईयों तक पहुँचाने वाले वीतराग-दर्शन, उसकी प्राप्ति की प्रक्रिया-प्रतीक तथा आत्मसाधक साधु-श्रावकों की भावना और आचरण का हृदयग्राही वर्णन किया है। इसका प्रयोजन वस्तु-स्वरुप के भावबोध से उत्पन्न प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभाव, पर्यावरण-रक्षा, लोकोपयोगी जीवन-दर्शन, सहजन्याय एवं धर्माधारित राज्य व्यवस्था तथा वीतरागता की प्राप्ति का सर्वकालिक/सार्वभौमिक लक्ष्य रेखांकित करना है। जिस प्रकार स्व श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी "उसने कहा था" कहानी लिखकर अमर हो गये, उसी प्रकार "मेरी भावना" कविता लिखकर पं. जुगल किशोर मुख्तार अमर हो गये। अंतर मात्र इतना है कि जो प्रसिद्धि एवं साहित्य में स्थान गुलेरी जी को मिला, मुख्तार सा. सामाजिक परिवेश में ही सीमित रह गये। किसी अन्य धर्मावलम्बी की यदि वह रचना होती तो वह राष्ट्रगीत जैसी "राष्ट्रभावना" या "जन भावना" के रूप में प्रसिद्ध होती।

मेरी भावना-सार्थक नाम

जैसा भाव वैसी क्रिया, जैसी क्रिया वैसा फल, यह सर्वश्रुत है। अर्थात् भावानुसार फल मिलता है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य के आधार पर मानव

जीवन को सम्यक्‌रूप से रुपांतरित करने के प्रयोजन की सिद्धि हेतु "मेरी भावना" एक सार्थक नाम है। इसमें ग्यारह पद्य हैं। इसमें वीतराग-विज्ञान के आद्य प्रतिपादक आचार्य कुन्दकुन्द एवं प्रखर तार्किक आचार्य समन्तभद्र आदि द्वारा प्रतिपादित वस्तु-स्वरूप, अनेकान्तदर्शन, परमात्मा का स्वरूप एवं उसकी प्राप्ति के उपाय का सार तो है ही, साथ ही अन्य भारतीय दर्शनों एवं साहित्य जैसे गीता, रामायण, महाभारत आदि की लोकोपयोगी शिक्षाओं का भी समावेश है। कवि ने मेरी भावना के नाम से जगत के सभी जीवों की उदात्त भावनाएें व्यक्त कर दीं हैं।

परमात्मास्वरूप अरहंत-सिद्ध परमेष्ठी

मेरी भावना की प्रथम पंक्ति "जिसने राग-द्वेष-कामादिक जीते, सब जग जान लिया" मे परमात्मा का स्वरूप दर्शाया है। कवि का इष्ट परमात्मा राग-द्वेष-कामादिक विकारों का विजेता सर्वजगत का ज्ञाता और मोक्षमार्ग का उपदेश करने वाला है, भले ही उसे बुद्ध, महावीर, जिनेन्द्र, कृष्ण, महादेव, ब्रह्मा या सिद्ध किसी भी नाम से पुकारा जाये। ऐसे परमात्मा के प्रति भक्तिभाव से चित्त समर्पित रहे, यही कवि की भावना है। प्रथम पंक्ति में सर्वदोष विहीन, एवं सर्वमान्य विराट परमात्मा के दर्शन होते हैं जो अपने में सर्व जीवों के आत्म-स्वभाव की समानता एवं पंथ-निरपेक्ष के भाव को समेटे हैं। इसमें "निस्पृह हो उपदेश दिया," में अरहंत परमेष्ठी एवं या उसको "स्वाधीन कहो" में सिद्ध परमेष्ठी समाहित हो गये हैं।

मोक्षमार्ग के पथिक त्रिपरमेष्ठी - आचार्य, उपाध्याय एवं सर्व साधु

कवि ने मेरी भावना के पद दो एवं तीसरे के पूर्वार्द्ध में कुशलतापूर्वक आचार्य, उपाध्याय एवं सर्वसाधु परमेष्ठी का स्वरूप बताया है। "विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्यभाव धन रखते हैं।" यह पंक्ति सामान्य साधु के अंतरंग स्वरूप को बताती है। ससार-दु:ख का नाश करने वाले ज्ञानी-साधु इन्द्रिय भोगों और कषायों से विरक्त होकर समत्वभाव धारण करते हुए अहर्निश स्व-पर कल्याण में निमग्न रहते और बाह्य में खेद रहित अर्थात् सहज भाव से स्वार्थ त्याग अर्थात् शुभाशुभ कर्म-समूह की निर्जरा हेतु कठोर तपस्या करते

दिखाई देते हैं। ऐसे ज्ञानी-ध्यानी-तपस्वी साधुओं की सत्संगति सदैव बनी रहे, ऐसी भावना भायी है। इनमें ज्ञानी-ध्यानी-तपस्वी साधु आचार्य परमेष्ठी हैं। विशेष ज्ञानी-ध्यानी साधु उपाध्याय परमेष्ठी हैं। और साधु तो साधु परमेष्ठी हैं ही।

इस प्रकार कवि ने मोह राग-द्वेष से निवृत्ति एवं स्वभाव में प्रवृत्ति हेतु पंचपरमेष्ठी की शरण ग्रहण की भावना की है।

परमात्मा होने का उपाय, प्रक्रिया

आत्मा का मोह-क्षोभ रहित शुद्धज्ञायक भाव ही धर्म है और धर्मस्वरूप परिणत आत्मा ही परमात्मा है। शुद्धज्ञायक भाव में कैसे प्रवृत्ति हो, इसका आध्यात्मिक एवं प्रायोगिक निरुपण कवि ने मेरी भावना के पद्य 9, 10 एवं 11 में किया है। इस सम्बन्ध में निम्न पंक्तियां माननीय हैं:-

पद्य - 9 "घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत-दुष्कर हो जावे

ज्ञान-चरित उन्नतकर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें।"

पद्य - 10 "परम-अहिंसा-धर्म जगत में, फैले सर्वहित किया करें"

पद्य - 11 "फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे

वस्तु-स्वरुप-विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करें।"

उक्त पंक्तियों के रेखाकित बिन्दुओं पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि मोहरूप आत्म-अज्ञान ही दुख-स्वरुप और दुख का कारण है। मोह का क्षय बारम्बार वस्तु-स्वरुप के विचार एवं भावना से होता है। उससे आत्मा में परमात्मा का अनुभव होता है। ऐसे व्यक्ति के हृदय में आस्तिक्य बोध के कारण जगत के जीवो के प्रति मैत्रीभाव और करुणा सहज ही उत्पन्न होती है। मोह नाश से ज्ञान-स्वरुप आत्मा का ज्ञान होता है फिर ज्ञान में स्थिरता रुप चारित्र प्रकट होन लगता है जिससे वासना जन्य दुष्कृत्य स्वतः दुष्कर (कठिन) हो जाते है। मनुज जन्म की सफलता आत्मा के ज्ञान एवं चारित्र की उन्नति में है। ऐसा परम-अहिसक साधक जगत के जीवों का हित करता है।

मोक्षमार्ग में वस्तु-स्वरुप के विचार की महिमा पं. बनारसीदास ने समयसार नाटक में निम्न रुप से व्यक्त की है-

"वस्तु-विचारत ध्यानतैं मन पावे विश्राम
रस स्वादत सुख ऊपजे अनुभव याको नाम
अनुभव चिंतामणिरत्न, अनुभव है रसकूप
अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्ष स्वरुप"

स्व-पर कल्याण कारक आदर्श नागरिक संहिता

मेरी भावना में पद तीन के उत्तरार्द्ध से पद 8 तक मानव व्यवहार की स्व-पर कल्याणकारी आदर्श नागरिक संहिता की भावना है जो जीवन में अनुकरणीय है, उपादेय है।

किसी जीव को पीड़ित न करुँ और झूठ न बोलूं। संतोषरूपी अमृत का पान करते हुए किसी के धन एवं पर-स्त्री पर मोहित न होऊँ (पद - 3) गर्व और क्रोध न करुँ दूसरों की प्रगति पर ईर्ष्या न करुँ। निष्कपट सत्य व्यवहार करुँ। यथाशक्य दूसरों का उपकार करुँ (पद - 4)। सभी जीवों पर मैं मैत्रीअनुकम्पा का भाव रहे। दीन-दुखी जीवों के दुख-निवारण हेतु हृदय में निरंतर करुणा रहे। दुर्जन-पापी जीवों पर साम्यभाव रखूं और घृणा न करु (पद - 5)। गुणीजनों से प्रेम करु। उनके दोष न देखूं और यथाशक्य सेवा करूं। परोपकारियों के प्रति कृतघ्न न बनूं और न उनका विरोध करुं (पद - 6)। मैं न्याय मार्ग पर चलूं। बुरा हो या भला, धन आये या जाये, मृत्यु अभी हो या लाख वर्ष बाद कितना ही भय या लालच मिले, किसी भी स्थिति में, न्याय मार्ग से विचलित नहीं होऊं (पद - 7)। यह कर्त्तव्य बोध की पराकाष्ठा है, जो प्रजातंत्र की सफलता का सूत्र है। न्याय च्युत राज्य-व्यवस्था संत्रासदायी होती है जो अशांति को जन्म देती है।

सुख में प्रफुल्लित और दुख में भयभीत न होऊं। पर्वत-नदी आदि से भयभीत न होऊं। इष्ट-वियोग तथा अनिष्ट संयोग में सहनशीलता/समत्व भाव रखूं। यही भावना निरंतर बनी रहे (पद - 8)। मोह-रहित स्थिति में उक्त आचरण से कर्म बंध रुकेगा और कर्मनिर्जरा होगी।

धर्माचरण से विश्व कलयाण एवं राष्ट्र की उन्नति

पद 9 एवं 11 में धर्माचरण से विश्व के जीवों के कल्याण एवं राष्ट्रों की उन्नति की भावना व्यक्त की है। यह "वसुधैव कुटुम्बकम्" का प्रयोगिक रुप है।

जगत के सभी जीव सुखी रहें, भयभीत न हों और बैर-पाप-अभिमान छोड़ कर नित्य नये मंगल गान करें। घर-घर में धर्म की चर्चा हो और निंद्य-पाप अशक्य हो जावें। सभी जीव अपने स्वभाव रुप ज्ञान-चारित्र में वृद्धि करें (पद - 9)।

मोहरूप अज्ञान का नाश हो और विश्व में परस्पर प्रेम का प्रसार हो। कोई किसी से अप्रिय-कटु-कठोर शब्द न बोले और वस्तु-स्वरुप का विचार करते हुए कर्मोदय जन्य दुख और संकटों का सामना समतापूर्वक करें (पद - 11)

सुखी राज्य एवं पर्यावरण-रक्षा का आधार अहिंसा

कवि ने पद 19 में पर्यावरण की रक्षा एवं प्रजा की सुख-शांति के सूत्र दिये हैं। अहिंसा धर्म के प्रचार-प्रसार से पर्यावरण की रक्षा और जगत के जीवों का कल्याण होगा। छहकाय के जीवों की रक्षा ही अहिंसा और पर्यावरण रक्षा है। उससे अतिवृष्टि-अनावृष्टि न होकर वर्षा समय पर होगी। रोग-महामारी-अकाल नहीं होगा। प्रजा शांतिपूर्वक रहेगी। राजा अर्थात् शासकगण धर्मनिष्ठ, अर्थात् न्याय नीति एवं सदाचार पूर्वक प्रजा की रक्षा करें। ऐसी स्थिति में सभी राष्ट्र उन्नति करेंगे।

संक्षेप में, "मेरी भावना" विश्व के जीवों के कल्याण, अभ्युदय और निःश्रेयस पद की प्राप्ति की आदर्श विचार-आचार संहिता है। मेरी भावना के अनुरूप जीवन रूपांतरित हो, यही कामना है।

मेरी भावना की गुणवत्ता, सार्वजनिकता एवं सर्वधर्म समभावना का अन्तःपरीक्षण कर प्रज्ञा चक्षु पण्डित शिरोमणि पं. सुखलालजी संघवी ने इसकी न केवल मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी, अपितु गुजरात के समस्त जैन

गुरुकुलों में प्रातः - सायंकालीन प्रार्थना के लिए मेरी भावना की अनुशंसा भी की थी। उन्होंने महात्मागांधी से उसकी प्रशसा कर वहां के प्रार्थना गीत के रूप में स्वीकृत करने का अनुरोध किया था यह उल्लेखनीय है कि वैल्दी फिशर द्वारा स्थापित साक्षरता-निकेतन लखनऊ; जहाँ पर उत्तरप्रदेश शासन के कर्मचारियो को प्रशिक्षण दिया जाता है, वहाँ प्रतिदिन सर्वधर्म प्रार्थना सभा में मेरी भावना की प्रार्थना की जाती है।

मेरी भावना का अन्य भाषाओं में अनुवाद हो और मानव-समुदाय इसका अनुशरण करें, यही भावना है।

दाक्षिण्यं स्वजने दया परिजने शाठ्यं सदा दुर्जने
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वायर्जवम्।
शौर्य साधुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता
ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः॥

एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांकः।

गुणों के समुदाय में एक दोष चन्द्र की किरणों मे कलंक की तरह लीन हो जाता है।

-कालिदास (कुमारसंभव, १।३)

बन्धूनां गुणदोषयोरपि गुणे दृष्टिर्न दोषग्रहः।

बन्धुओ के गुण और दोष में गुण पर दृष्टि डालनी चाहिए, दोषों पर नहीं।

-कर्णपुर (चैतन्यचन्द्रोदय नाटक)

मेरी भावना : एक समीक्षात्मक अध्ययन

लालचन्द्र जैन 'राकेश' गंजबासौदा (म. प्र.)

साहित्य महारथी, वाड्मयाचार्य, ज्ञानतपस्वी, सरस्वती के वरद पुत्र पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार "युगवीर" भारत की महान् विभूतियों में से एक थे। आपका जन्म सन. 1877 में हुआ था, आप सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। आप उच्च कोटि के निबन्धकार, इतिहासकार, व्याख्याकार, संस्मरण लेखक एवं कवि थे। आपकी इन सब विशेषताओं को लक्ष्यकर "डॉ. ज्योति प्रसाद जी ने आपको साहित्य का भीष्मपितामह" कहा है।[1] श्री डॉ नेमिचन्द्र जी ज्योतिषाचार्य को उक्त कथन से भी संतुष्टि नहीं हुई तो उन्होंने कथन को और अधिक प्रभावक बनाते हुए कहा कि "मैं इस वाक्य में इतना और भी जोड़ देना चाहता हूँ कि वे साहित्य के पार्थ हैं, जिन्होंने अपने वाणी से भीष्मपितामह को भी जीत लिया था।"[2] "संक्षेप, श्री पं जुगलकिशोर जी मुख्तार "युगवीर" ऐसे लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार थे, जिनकी कीर्ति-कौमुदी युग-युगान्तरों तक हृदय-कुमुदों को आनंदित करती रहेगी।"

यद्यपि श्री मुख्तार साहब ने साहित्य की विविध विधाओं पर साहित्यकार की लेखनी चलाई है तथा उन्होंने सर्वत्र सफलता एवं प्रशंसा भी अर्जित की है तथापि " श्री आचार्य "युगवीर" मेरी दृष्टि में मूलतः कवि हैं। इसके बाद ही उन्हें निबंधकार, आलोचक या इतिहासकार कहा जा सकता है।"[3] उनकी काव्य रचनाओं का संग्रह "युगभारती" के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में भाषा की दृष्टि से दो प्रकार की कवितायें हैं - संस्कृत और हिन्दी। संस्कृत वाग्विलास खंड में कुल 10 कवितायें हैं। हिन्दी कविताओं में अनेक कवितायें विशेष भावपूर्ण हैं, मेरी भावना उनमें से एक है। कवि ने इसकी रचना 1916 में की थी।

मेरी भावना का वैशिष्ट्य

1. मौलिक रचना

"मेरी भावना" कवि श्री युगवीर की सबसे प्रसिद्ध, मौलिक एवं रससिद्धि (मास्टर पीस) रचना है। यह एक राष्ट्रीय कविता है। यदि आचार्य युगवीर की अन्य कविताओं को हम दृष्टि ओझल भी कर दें तो भी वे केवल "मेरी भावना" के कारण उसी प्रकार अमर रहेंगे जिस प्रकार "उसने कहा था, कहानी लिखकर श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, आत्म कीर्तिन लिखकर श्री सहजानन्दजी वर्णी, बन्देमातरम् लिखकर श्री वंक्रिम चन्द्र चटर्जी एव "जनगणमन" लिखकर श्री रवीन्द्रनाथ टैगौर अमर हो गये हैं। "कवि युगवीर" की यह राष्ट्रीय कविता तब तक जन-जन के कंठ में गूंजती रहेगी जब तक भारत राष्ट्र अपना अस्तित्व बनाये रखेगा।"[4]

2. "मेरी भावना" का आकार -

मेरी भावना में कुल 11 पद हैं। ग्यारह की संख्या को भारतीय संस्कृति में शुभंकर स्वीकार किया गया है। मेरी ऐसी दृढ़ धारणा है कि जो भी व्यक्ति मेरी भावना को अन्तश्चेतना से धारण करेगा/पढ़ेगा/आचरण करेगा उसका कल्याण सुनिश्चित है।

"मेरी भावना" में कुल चवालीस पंक्तियां हैं। प्रथम चार पंक्तियाँ, जो सच्चे देव का स्वरूप वर्णित करती है, मंगलाचरण जैसी हैं। शेष पंक्तियाँ रही चालीस। विभिन्न भक्तों ने अपने-अपने आराध्य की भक्ति में चालीस पंक्तियों वाले "चालीसा" रचे हैं। जैसे- हनुमान-चालीसा, महावीर-चालीसा, पार्श्वनाथ-चालीसा आदि। मेरी दृष्टि में "मेरी भावना" एक अन्तर्राष्ट्रीय चालीसा है, जो राष्ट्र, जाति, सम्प्रदाय, पंथ, वर्ग और वर्ण भेद से रहित है तथा सदा सबके द्वारा, समान रुप से पठनीय है।

"इसमें सन्देह नहीं कि कवि का यह छोटा-सा काव्य मानव जीवन के लिए ऐसा "रत्न-दीप" है जिसका प्रकाश सदा अक्षुण्ण बना रहेगा।[5] मेरी भावना एक छोटी सी "रत्न मंजूषा" है जिसमें कवि ने अनेक आर्य ग्रन्थों का

सार भर दिया है। "इसकी 44 पंक्तियों में बड़े-बड़े पौधों और शास्त्रों से कहीं अधिक बल-स्फूर्ति है।" [6]

3. "मेरी भावना" का वर्ण्य विषय -

"मेरी भावना" आकार में तो लघु है, किन्तु इसमें सम्पूर्ण धर्मों/धार्मिक ग्रन्थों का सार समाहित है। इसके "गागर में सागर",कह सकते है। डॉ नेमि चन्द्र के शब्दों "मेरी भावना में न सिर्फ जैनाचार का सार है, बल्कि संसार के तमाम धर्मों का नवनीत है।[7] " कवि ने मेरी भावना में अनेक आर्ष ग्रन्थों का सार भर दिया है। इसमें हम रामायण, महाभारत और गीता का सार प्राप्त कर सकते हैं तो दूसरी ओर कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, पदमनंदि प्रभृति आचार्यों के वचनों का सार भी। इसमें कवि ने विश्व बन्धुता, कृतज्ञता, न्यायप्रियता एवं सहन शीलता का सुन्दर चित्रण किया है। [8]

प्रथम पद में (जिसने राग-द्वेष कामादिक जीते - उसी में लीन रहो) कवि ने सर्वमान्य देव का वीतराग स्वरुप अंकित किया है। "आप वीतरागता के चरणतल में नतशीश हैं। नतशीश ही नहीं हैं बल्कि वह जहां कहीं भी, जिस किसी नाम से हैं उसे श्रद्धा पूर्वक प्रणाम कर रहे हैं।"[9]

द्वितीय पद एवं तृतीय पद के पूर्वार्द्ध में (विषयों की आशा नहिं सदा अनुरक्त रहे) कवि ने आदर्श गुरु/लोकपुरुष के स्वरूप का शब्दांकन किया है तथा उसके सत्संग, उसके ध्यान और तद्धत. आचरण की भावना को अभिव्यक्ति दी है।

तृतीय पद के उत्तरार्द्ध में (नहीं सताऊँ . .. .. पिया करुं) पांच पापों के त्याग को प्रकट किया गया है। "इसमें आप आत्मवत् सर्वभूतेषू" की प्रक्रिया में है। अत: आप न तो किसी को कष्ट देना चाहते हैं, और न एक पल को झूठ बोलना चाहते हैं। [10]

चतुर्थ पद में (अहंकार का भाव .... उपकार करुं) कवि ने चार कषायों - क्रोध, मान, माया, लोभ के त्याग को शब्दांकित किया है। यहाँ आप अहंकार को सर्वांग विसर्जित कर क्षमा-धरती पर आ खड़े हुये हैं। क्षमा

मां है - मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य की। मां के आते ही बेटे खुद ललक आये हैं, उसकी गोद में। इनके साथ खेलिये और इनकी मां को प्रणाम कीजिये। [11]

पंचम पद में (मैत्री भाव. . परिणति हो जावे) कवि ने एक शुद्ध/आदर्श नागरिक बनने के लिये प्राणिमात्र के प्रति मैत्री, दीन-दुखियों के प्रति दया, एवं दुर्जनों/दुष्टो के प्रति साम्य भाव रखने की कामना की है। "यहाँ आपके भीतर करुणा का झरना सौ-सौ धाराओं में खुल गया है, और आपको विश्व सखा बना रहा है।" [12]

षष्टम पद में (गुणी जनों को न दोषों पर जावे) कवि के कृतज्ञता और गुणग्राहकता के भावों का प्रस्फुटन हुआ है। "आप कृतज्ञ हैं उन सबके जिन्होंने आपके जीवन को सेवा और साधना का अमृत चखाया है। आप गुण, गुणी और गुणत्त्ता के चरणो मे आ बैठे हैं- इस छन्द में" [13]

सप्तम् पद में (कोई बुरा कहो डिगने पावे) कवि युवीर "न्यायमार्ग, पर चलने को दृढता से सकल्पित हैं।" यहाँ न भय, न आतंक, न मरण है, न जरण। यदि कुछ है तो वह है स्वयं की शरण। न्याय और अन्याय का फर्क यहाँ स्पष्ट हुआ है एव आपने सकल्प कर लिया है कि अपने और अन्यों के साथ आप न्यायपूर्ण सलूक करेंगे जो सर्वसम्मत/लोक सम्मत है, विवेक की कसौटी पर खरा है। [14]

अष्टम् पद में (होकर सुख में .... दिखलावे) कवि ने सुख-दु:ख में साम्यभाव रखने, अभय होने एवं इष्ट वियोग तथा अनिष्ट संयोग में सहनशील रहने के भाव प्रकट किये हैं। "इसमें आपके रोएं-रोएं में अभय, समत्व और सहिष्णुता की हरी-भरी फसल थिरकने लगी है। आप स्वाधीन हुए हैं एवं आपका चित्त अविचल/अभान्त है अध्यात्म के मार्ग में।" [15]

नवम् छन्द में (सुखी रहे सब .. ..फल सब पावे) कवि सब जीवों के सुखी रहने, बैर पाप-अभिमान छोडने और धर्म मार्ग पर चलकर मानव जन्म सफल बनाने की मंगल भावना करता है।

"यहाँ आपमें उस कल्याण कामना का उदय हुआ है जो बैर को शान्त करती है और मन के भीतर जन कलयाण की हजारों-हजार शीतल झिरियां खोलती है।" [16]

दशम् छन्द में (ईति-भीति व्यापे .... किया करें) कवि ने सर्वोदयी-कल्याणी भावना को प्रकट किया है। "यहाँ आप आत्मोदयी धरा पर खड़े हैं सर्वोदय के संगीत में झूम-झूम उठे हैं। आपने आनन्द को सीमित नहीं किया है, असीमित करा लिया है। आप सर्वहित की गोद में एक निष्कपट शिशु की तरह भोली किलकारियां भर रहे हैं।" [17]

अंतिम और ग्यारहवें पद में (फैले प्रेम .... सहा करें) कवि ने वस्तुस्वरूप को विचार कर सुख-दुःख को खुशी-खुशी सहन करने का अभिप्राय व्यक्त किया है। "यहाँ आपने वस्तु स्वरूप को खोजने/पाने की अपनी यात्रा मे सफलता प्राप्त की है और जीवन के उस मर्म को समझ लिया है, जो बड़ी मुश्किल से आदमी के पल्ले पड़ता है।" [18]

"इस प्रकार "मेरी भावना" में हम लोक हृदय की स्वस्थ धड़कन सहज ही बिना किसी स्टेथस्कोप के सुन सकते हैं।" समता का जो संगीत हमें "मेरी भावना" में सुनाई देता है, वह अन्यत्र सुनने को नहीं मिलता। अतः "मेरी भावना" एक सार्वभौम रचना है। [19]

"मेरी भावना" की फलश्रुति -

"यदि मेरी भावना" को हम अपने भीतर पर्त-दर-पर्त खोलते हैं तो फिर संसार की सारी निधियां स्वयंमेव हमारे चरणों में आ बैठती हैं अत्यन्त कृतज्ञ भाव से। यह है मेरी भावना की फल-श्रुति, यह है "मेरी भावना" का वरदान।" [20]

डॉ. नेमीचंद जैन,

5. "मेरी भावना" : सबकी भावना -

रचना में शीर्षक का महत्वपूर्ण स्थान होता है। मानव शरीर में जो स्थान मुख का है, रचना में वही स्थान नाम या शीर्षक का होता है। "वक्त्रं" वक्ति

हि मानसम् के ही समान शीर्षक में रचना की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है। शीर्षक वह धुरी है, जिसके चारों ओर रचना की समस्त अभिव्यक्ति प्रस्फुटित होती है। शीर्षक छोटा, आकर्षक एवं जिज्ञासामूलक होना चाहिए, किन्तु ऐसा आदर्श शीर्षक देना सरल कार्य नहीं है। "अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध नाटककार शेक्सपीयर भी जब अपनी एक रचना नाटक का समुचित शीर्षक न दे सके तो उन्होंने उस रचना के शीर्षक का काम पाठकों की रुचि पर छोड़कर उसका नाम "एज यू लाईक" रख दिया।"[21]

तो आइये अब हम "मेरी भावना" के शीर्षक पर विचार करें। उक्त बिन्दुओं के आधार पर विचार करने से हम उस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "मेरी भावना" एक आदर्श शीर्षक है। कवि "युगवीर" इस कसौटी पर पूर्ण सफल हैं। मेरी भावना यह शीर्षक "सागर बूंद समाया" उक्ति को चरितार्थ करता है। वह आकर्षक, कौतूहल उत्पादक है तथा सम्पूर्ण रचना के कथ्य को प्रतिबिम्बित करता हैं।

"मेरी भावना" मात्र युगवीर की या किसी व्यक्ति विशेष की भावना/अभिव्यक्ति नहीं है, अपितु उसे जो भी पढ़ेगा/पढ़ेंगे, पढ़ाता है/पढ़ते हैं, सबकी भावना है/आत्मा की आवाज है। यह बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष, फिर वह किसी भी राष्ट्र जाति, सम्प्रदाय, धर्म, कर्म, वर्ण से सम्बंधित क्यों न हो - यह उन सबकी भावना है। रचना का नाम/शीर्षक देने में "युगवीर" के कौशल की हम मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। इस सन्दर्भ में डॉ. नेमीचन्द जैन के ये शब्द पठनीय हैं।

"सर्वनाम और नाम दोनों की प्रकृतियां जुदा हैं। सर्वनाम किसी का भी हो सकता है, किन्तु नाम या तो किसी व्यक्ति का होता है या किसी जाति का। "मेरी" कहकर रचयिता ने इस भावना की सीमायें तोड़ दी हैं। कोई भी व्यक्ति इसे "मेरी" कह सकता है। सर्वनाम की सार्थकता उसी में है कि वह किसी एक का नहीं होता, सबका होता है। "मेरी" कह कर हम इसे जहाँ एक ओर व्यक्ति के भीतर भिदने/बैठने/रमने का हुक्म देते हैं, वहीं जब बहुत सारे व्यक्ति इसे "मेरी कहने लगते हैं" तब समाज में एक समग्र क्रांति धड़कने लगती है।[22]"

6. "मेरी भावना" और तत्कालीन परिस्थितियां -

साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। समाज जैसा होता है, उसका प्रतिबिम्ब तत्कालीन साहित्य में हूबहू प्रतिबिम्बित होता है।

"मेरी भावना" की रचना सन् 1916 में हुई है। वह समय भारत की पराधीनता, भारत की पतनावस्था, अविद्या, सामाजिक कुरीतियों तथा अपने मान्य आचार्यों के विचारों के प्रति उपेक्षा के भाव का युग था।[23]

जातिगत द्वेषभाव था तथा देशभक्ति की आवश्यकता थी। इन परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब "मेरी भावना" में दृष्टिगोचर होता है क्यों कि कवि युगवीर ने अपने कर्म, समाज, साहित्य और देश की पतनावस्था का भावनात्मक साक्षात्कार कर लिया था।[24] एक उदाहरण दृष्ट्व्य है -

फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे॥
बनकर सब युगवीर हृदय से, देशोन्नतिरत रहा करें।
वस्तु स्वरुप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करें॥

यदि एक ओर साहित्य समाज का दर्पण होता है तो दूसरी ओर वह सुप्त समाज में नवचेतना लाने वाला, रुढ़ियों को छिन्न-भिन्न कर उनमें स्वस्थ, सुखकर, युगानुकूल परिवर्तन करने वाला तथा मन और मस्तिष्क को अतिशयता से प्रभावित करने वाला भी होता है। "साहित्य में वह शक्ति छिपी होती है, जो तोप, तलवार और बम के गोलों में भी नहीं पायी जाती।"[25] "युगवीर" जैसा आदर्श समाज तथा भारत राष्ट्र के लिए जैसा आदर्श नागरिक चाहते थे उसका वर्णन भी उन्होंने मेरी भावना में किया है।

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर-पाप-अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे॥
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावे॥

मेरी भावना, पद क्रमांक - 9

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे॥
दुर्जन क्रूर, कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥

मेरी भावना, पद क्रमांक 5

साहित्य के सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है कि व्यक्ति जैसा होता है, उसकी भावनायें, उसके आदर्श, उसकी मनोदशा, उसकी परिस्थितियां, उसकी प्रकृति का अवतरण उसकी रचनाओं में देखा जा सकता है, सहित्य उनसे अछूता नहीं रह सकता।

श्री "युगवीर" की बाल्यकाल से ही सत्य के प्रति अगाध निष्ठा थी, अहिंसा में विश्वास था। उनमें जिनवाणी की रक्षा करने की बलवती भावना थी। वे कुशल उपदेष्टा थे। उन्हें धन के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। वे जैन धर्म और जैन वाङ्मय के प्रचण्ड पंडित होने के साथ ही उनकी सेवा के लिए सर्वतोभावेन समर्पित थे। उनके जीवन में सुख-दुख के क्षण भी आये, धार्मिक सिद्धान्तों के प्रति दुराग्रह रखने वाले कुछ लोगों ने उन्हें जान से मारने की धमकी भी दी, अपने माता-पिता तथा एक मात्र पुत्री का वियोग भी उस रचना के पूर्व उन्हें झेलना पड़ा। वे परम स्वाध्यायी, धीर-वीर, कष्ट सहिष्णु एवं साम्यभावी व्यक्ति थे। ये बिन्दु सार्वभौमीरूप धारण कर" "मेरी भावना" में यथा स्थान समाविष्ट हुए हैं । जैसे -

नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूँ।
पर धन पर तन पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूँ॥

मेरी भावना, पद क्रमांक - 3

परम अहिंसा धर्म जगत में, फैले सर्वहित किया करे॥

मेरी भावना, पद क्रमांक - 10

होकर सुख में मग्न न फूले, दुख में कभी न घबरावे।
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक, अटवीं से नहिं भय खावे॥

रहे अडोल, अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट-वियोग, अनिष्ट योग में, सहन शीलता दिखलावे॥
मेरी भावना, पद क्रमांक - 8

७. "मेरी भावना" का भावपक्ष -

भावपक्ष कविता का प्राण है, हृदयस्थल है, आभ्यन्तर रूप है। इसके अन्तर्गत रस, गुण, रीति, शब्दशक्ति आदि के प्रयोग का विचार किया जाता है। मेरी भावना का भावपक्ष पूर्ण सबल है। सम्पूर्ण रचना मे शान्त रस का अखंड साम्राज है। व्यक्ति पाठ करता हुआ भावविभोर हो आत्मिक रस का अनुभव करता है। शुचितम भावों का सहज सौन्दर्य सर्वत्र विद्यमान है। सरसता के कारण कविता कंठ की नहीं, आत्मा की सम्पत्ति बन गई है। माधुर्य और प्रसाद गुण ने रसोद्रेक में सहयोग कर काव्य को रसानुभूति की चरम दशा तक पहुँचा दिया है। कर्णप्रिय मधुर वर्णों के स्वाभाविक प्रयोग ने काव्य में मिश्री जैसी मिठास उत्पन्न कर दी है, तो सरलतम अभिव्यक्ति स्वच्छ जल में पड़े, साफ-साफ झलकने वाले पदार्थ की तरह कविता का भाव सामान्य पाठक को भी हृदयंगम करने में सुगमता प्रदान करती है। अधिकतर कथन अभिधाशक्ति में हैं, किन्तु 'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयता या!'[26] एवं "रमणीयार्थ प्रतिपादक : शब्दः काव्यम्"[27] की अनुमूंज सर्वत्र सुनाई देती है।

८. मेरी भावना का कला-पक्ष -

कला पक्ष कविता का बाह्य पक्ष है। इसमें काव्य में प्रयुक्त भाषा शैली, अलंकार एवं छन्द आदि का विचार किया जाता है।

(अ) भाषा :-

भाषा भावाभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साधन है। भाषा की तुलना हम काव्य के शरीर से कर सकते हैं। जैसे प्राण शरीर में रहते हैं वैसे ही भाव/अर्थ भाषा/ शब्द में रहते हैं। अतः काव्य में भाषा का स्थान महत्वशाली है।

''मेरी भावना'' की भाषा अत्यन्त सरल, सुबोध, सरस, स्पष्ट, प्रवाहवती, सुष्ठु और शुद्ध है। वह भावाभिव्यक्ति में पूर्ण सक्षम है। पाठक को कहीं भी शब्द कोष खोलने या मानसिक व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। भाषा का प्रवाह सरिता की तरह अविरल आगे बढ़ता हुआ पाठक को भावानुभूति की शीतलता प्रदान करता है। जैसे शरदकालीन सरोवर के स्वच्छ अन्तर्वर्ती पदार्थ स्पष्ट झलकते हैं, वैसे ही 'मेरी भावना' में भाव सौन्दर्य साफ-साफ झलकता है। भाषा की ऐसी सरलता और सादगी तथा भावों की स्वच्छता और निर्मलता विरल 'काव्यों में ही मिल सकती है। इसके कवि 'युगवीर' की जितनी प्रशंसा की जाये, कम है।'

'सरलता और सादगी का अपना संसार है। सरल होकर हम सबके होते हैं, क्रमशः होते रहते हैं' किन्तु जटिल होकर या तो हम खुद के हो पड़ते हैं, या कुछ गिने-चुने लोगों के सरल होने का सीधा मतलब है सार्वभौम होना। 'मेरी भावना' सरल शब्दों में, अर्थों में है इसलिए सार्वभौम है। इसमें हम लोक हृदय की स्वस्थ धड़कन सहज ही बिना किसी स्टेथस्कोप के सुन सकते हैं। समता का जो संगीत हमें 'मेरी भावना' में सुनाई देता है, वह अन्यत्र सुनने को नहीं मिलता। [28]

डॉ. नेमीचन्द जैन,

सरल और सीधी भाषा में भावों का इतना उन्नत होकर प्रकट होना बहुत ही कम स्थानों पर संभव हो पाता है। यहाँ न तो कल्पना की उड़ान है और न प्रतीकों की योजना पर भावों की प्रेषणीयता इतनी प्रखर है कि जिससे प्रत्येक पाठक भावगंगा में निमग्न हो जाता है। [29]

डॉ. नेमीचन्द ज्योतिषाचार्य

(ब) शैली -

शैली ही व्यक्तित्त्व है। इससे हम कवि और काव्य की पहचान कह सकते हैं। कवि श्री युगवीर ने अपने भाव संसार को मुख्यतः भावनात्मक शैली में व्यक्त किया है।

(क) मेरी भावना/कवि की भावनात्मक, चिन्तनप्रधान, आत्मसम्बोधिनी आध्यात्मिक रचना है। इसमें कवि ने हृदय को शुचितम बनाने के लिए ग्यारह बार, ग्यारह पदों से बुहारा है। वह कभी सूप की तरह सार-सार को ग्रहण करने एवं निस्सार को निकाल फेंकने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ होता है तो कभी न्यायमार्ग पर अडिग रहने के लिए मृत्यु तक को वरण करने के लिए तैयार हो जाता है।

होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥

मेरी भावना, पद क्रमांक - 6

कोई बुरा कहे या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे॥
अथवा कोई कैसा भी भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्यायमार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे॥

मेरी भावना, पद क्रमांक - 7

पापों और कषायों के त्याग की भावना से उसका हृदय इतना उज्जवल हो जाता है कि अब उसमें अपने पराये का भेद नहीं रहता। उसका हृदय निस्सीम हो जाता है, "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना उसके हृदय को आलोकित कर देती है, तब वह भावना भाता है कि -

मैत्रीभाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे उर से करुणा-स्रोत बहे॥
दुर्जन क्रूर, कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥

मेरी भावना, पद क्रमांक - 5

"ध्यान से देखेंगे तो पायेंगे कि "मेरी भावना" एक लघु साम्रायिक है, जो चित्त में समत्व का रसोद्रेक करती है और हमें एक अच्छा नागरिक ही नहीं, सन्तुलित साधक भी बनाती है।"[30]

डॉ. नेमीचन्द जैन

"आप इसे "मिनी सामायिक" तो कहे "ही" लोक सामायिक भी कहें, क्योंकि यह समुदाय में होकर भी व्यक्ति के भीतर समाकर उसे बदलने की अपूर्व क्षमता रखती है।"[31]

डॉ. नेमीचन्द्र जैन

(ख) कवि "श्री युगवीर" ने मेरी भावना में अनुवादन शैली को भी अपनाया है। संस्कृत के कुछ श्लोकों का शब्दाश: अनुवाद "मेरी भावना" में है। अनुवाद इतना सरल है कि संस्कृत की बोझिलता पूर्णत: समाप्त हो गयी है तथा वे पद कवि की मौलिक प्रतीत होते हैं। यथा -

"मेरी भावना" का पद क्रमांक 5 (मैत्री भाव जगत में .... ऐसी परिणति हो जावे) श्री आचार्य अमितगति की सुप्रसिद्ध रचना (संस्कृत) "भावना द्वात्रिंशतिका" के प्रथम श्लोक (सत्वेषुमैत्रीं ... . .. विद्धातु देव) का हिन्दी पद्यानुवाद है।

इसी प्रकार मेरी भावना का पद क्रमांक 7 (कोई बुरा कहो .... न पग डिगने पावे) श्री भर्तृहरि की कृति "नीतिशतकम्' के श्लोक ("निन्दंतु नीति निपुणाः .... न प्रविचलन्ति धीरा:") का हिन्दी रुपान्तर है। तथा मेरी भावना का पद क्रमांक 10 (ईति-भीति व्यापे नहिं .... सर्वहित किया करे।) शांतिपाठ के श्लोक (क्षेमं सर्वप्रजानां .... सर्व सौख्यप्रदायि) का हिन्दी पद्यानुवाद है।

(स) अलंकार

"काव्य-शोभा-करान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्ष्यते" के अनुसार अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म हैं। अलंकार काव्य के लिए आवश्यक नहीं है, बिना अलंकार के भी कविता हो सकती है, मेरी भावना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। "मेरी भावना" के बारे में यह पंक्ति "नहीं मोहताज जेवर की, जिसे खूबी खुदाने दी" अक्षरश: के बारे में यह पंक्ति "मेरी भावना" स्वयं में एक प्राणवती, रसवन्ती कविता है। उसमें सरलता, सरसता, शुचिता, सादगी, स्वाभाविकता है। यही "मेरी भावना" का श्रृंगार है। उसमें अलंकारों की

भीड़ नहीं है। हां, अनुप्रास और रूपक अलंकार पद-पद पर मेरी भावना की स्वाभाविक शोभा को शतगुणित कर रहे हैं। यथा -

> **जिसने राग-द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया॥**
> **सब जीवों को मोक्ष-मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया॥**
> **बुद्ध, वीर, जिन, हरि हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।**
> **भक्ति भाव से प्रेरित हो, यह चित उसी में लीन रहो।**
>
> मेरी भावना, पद क्रमांक 1

उक्त पद में पांच स्थानों पर अनुप्रास अलंकार है। ऐसी अन्यत्र एवं सर्वत्र अनुप्रास की रुनझुन सुनी जा सकती है।

> विषयों की आशा नहिं, जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
> परधन, वनिता पर न लुभाऊँ, सन्तोषामृत पिया करुं॥
> दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उरसे करुणा-स्रोत बहे।

उक्त पंक्तियों में एवं अन्य स्थानों पर भी रुपक अलंकार है।

छन्द :-

काव्य को विषयानुकूल प्रभावशाली बनाने में छन्द की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए विभिन्न रसों के लिए अलग-अलग छन्द चयन किया जाता है। उपयुक्त छन्द में रचित कविता को जब लय, ताल एवं आरोहावरोह के साथ सस्वर पढ़ा जाता है तब अभूतपूर्व आनन्ददायक भावों के झरने फूटने लगते हैं। "मेरी भावना" को पढ़कर श्रद्धालुजन कुछ ऐसा ही अनुभव करते हैं।

कवि ने इस रचना में भावानुकूल/विषयानुकूल छन्द का प्रयोग किया है। यह छन्द शान्तरस एवं माधुर्यगुण को प्रस्फुटित करने/चरमोत्कर्ष तक पहुंचाने के लिए सर्वथा उपयुक्त है। आप इस छन्द के साथ "मेरी भावना" को अपने चित्त में गहरे उतार सकते हैं। "आप इसे पंक्तिशः पढ़ते जाएं और फिर इसकी खुशबू को अपने फेफड़ों और अपनी चेतना में उतारते जाएं, फिर देखे इसका आध्यात्मिक जादू किस तरह इसने आपके रोम-रोम को मथ

दिया है, और आप में जड़मूल से बदलने की संभावना को जन्म दे दिया है।''[33]

डॉ. नेमीचन्द जैन

9. मेरी भावना का उत्तरवर्ती प्रभाव -

कवि 'युगवीर' की यह कालजयी रचना इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि जन-जन का हृदय-हार बन गई। आवालवृद्धनर-नारी ने इसे जाति-धर्म सम्प्रदाय समाज-वर्ग और वर्ण भेद से ऊपर उठकर अपनाया। श्रद्धालुओं/भक्तों ने इसे स्तुतिरूप में स्वीकार किया, यह पूजा स्थलों में प्रभुचरणों में बैठकर पढ़ी जाने लगी। विद्यालयों में इसे दैनिक प्रार्थना के रूप में अपनाया गया। मैंने स्वयं इसे दरियागंज, देहली के एक विद्यालय में छात्रों द्वारा प्रार्थना के रूप में सन् 1953 में सुना है। इस प्रकार इसका आदर कुटियों से लेकर महलों तक और गरीबों-अमीरों सभी के यहां समान रूप से होने लगा। यह मेरी/व्यक्ति की न होकर सबकी है और सबके लिए है जिसे कभी भी, कितनी भी और कितने बार भी पढ़ी जा सकती है।

दूसरे, मेरी भावना की सुन्दरता और लोकप्रियता का प्रभाव कवियों पर भी पड़ा। कुछ कवियों ने मेरी भावना की तर्ज/भाव भूमि पर भावनाएं और कीर्तन लिखे। फिलहाल दो ''समाधिभावनाएं'' मेरी सामने हैं - ''दिन रात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ . ..... शिवराम'' प्रार्थना यह जीवन सफल बनाऊँ हे भगवन! समय हो ऐसा जब प्राण तन से निकले .. .. नवकार मन्त्र जपते, मम प्राण तन से निकले इन भावनाओं की विषय वस्तु तो भिन्न है, पर शीर्षकों पर मेरी भावना का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

एक अन्य रचना का शीर्षक तो ''मेरी भावना'' ही है तथा पृष्ठ भूमि भी वही है ,जिसके प्रारंम्भिक शब्द हैं ''भावना दिन-रात मेरी, सब सुखी संसार हो'' इत्यादि।

श्री मनोहरलाल जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज के ''आत्मकीर्तन'' पर भी मेरी भावना के प्रभाव को देखा जा सकता है।

बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसीमें लीन रहो॥
मेरी भावना, पद क्रमांक - १९

जिन शिव ईश्वर-ब्रह्मा-राम, बुद्ध-विष्णु हर जिसके नाम।
राग-त्याग पहुँच निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम॥
आत्म कीर्तन-सहजानंद वर्णी

तीसरे, श्री संतोष जड़िया ने "श्री युगवीर" की वाणी को रेखाओं में जीवंत किया है, इसे उसने आकृति दी है।

चौथे, "मेरी भावना" की लोकप्रियता, सार्वभौमिकता, इस तथ्य से और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है कि इसके अनेक प्रादेशिक भाषाओं में गद्य-पद्यानुवाद हो चुके हैं। अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेजी में तो इसके अनेक कवियों ने पद्यानुवाद किए हैं आचार्य श्रीविद्यासागर जी ने भी इसका अंग्रेजी पद्यानुवाद "माई सेल्फ (साउल) नाम से किया है, जो अत्यन्त सुनहरा है/ सुन्दर है।"

10. मेरी भावना प्रबन्ध काव्य है या मुक्तक काव्य -

"मेरी भावना" में प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य दोनों के लक्षण पाये जाते हैं, किन्तु मेरी दृष्टि में यह प्रबन्ध काव्य की अपेक्षा मुक्तक काव्य अधिक है। प्रबन्ध काव्य में पदों का पूर्वापर सम्बन्ध होता है जबकि मुक्तक काव्य में प्रत्येक पद स्वतंत्र होता है। "मेरी भावना" में द्वितीय एवं तृतीय पद्य परस्पर संबंधित हैं, शेष पद पूर्ण स्वतंत्र हैं। उनके अर्थ समझने के लिए पूर्व प्रसंग जानने के आवश्यकता नहीं है। वे स्वयं में पूर्ण हैं, उन्हें नीतिपरक पदों की तरह कहीं भी, कभी स्वतंत्र रूप से पढ़ा या उल्लेखित किया जा सकता है। फिर भी "मेरी भावना" का प्रत्येंक पद एक हार में पिरोये गये मोतियों की तरह अनेक स्थान पर सुशोभित है। अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि "मेरी भावना" प्रबन्ध काव्य होकर भी मुक्तक काव्य है और मुक्तक काव्य होकर भी प्रबन्ध काव्य है, जो भी है, है बहुत सुन्दर, बहुत रमणीय।

उपसंहार -

अन्त में यह दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि ''मेरी भावना'' सरस्वती के परम आराधक, महाकवि, आचार्य श्री ''युगवीर'' की कालजयी कृति है। इसमें कवि ने संसार के धार्मिक पक्षों को ग्रहण कर उनके सार (तत्व) को भर दिया है। उन्होंने इसमें राष्ट्रीयता, विश्वबन्धुता, साम्यभाव, सहिष्णुता, परोपकार, न्यायप्रियता, निर्भयता आदि-आदि सभी जग सहितकर भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान कर हम सबका परमोपकार किया है। यह मां भारती का श्रृंगार है, इसमें माधुर्य का मधुर निवेश है, प्रसाद की स्निग्धता है, पदों की सरस सज्जा है, अर्थ का सौष्ठव है, अलंकारों का मंजुल प्रयोग है। यह रचना ''यावच्चन्द्र दिवाकरौ'' जन-जन का कण्डहार बनी रहेगी।

मैं ''मेरी भावना'' के रचयिता सिद्धांताचार्य प्राक्तन-विद्या-विचक्षण, प्राच्य विद्या महार्णव पं. जुगल किशोर जी ''मुख्तार'' को शतशः प्रणाम करता हुए अपनी हार्दिक विनयांजलि अर्पित करता हूँ।

सन्दर्भ-सूची

1 श्री प. जुगलकिशोर जी मुख्तार ''युगवीर'' व्यक्तित्व और कृतित्व

2 वही

3. वही

4. वही

5 वही

6. डॉ नेमिचन्द्र जैन, इन्दौर

7. मेरी भावना, प्रकाशक जैन समाज रेवाड़ी

8. क्रमांक एक के अनुसार

9 डॉ. नेमिचन्द्र जैन, इन्दौर

10 वही

11. वही

12 वही

13. वही

14. वही

15 वही

16. वही
17. वही
18. वही
19. वही
20. मेरी भावना - प्रकाशक जैन समाज रेवाड़ी
21. निबन्ध क्या लिखूं! पदुमलाल शुभालाल बक्शी
22. मेरी भावना - प्रकाशक जैन समाज, रेवाड़ी
23. क्रमांक एक के अनुसार
24 वही
25 साहित्य समाज का दर्पण है - पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी
26. अभिज्ञान शाकुन्तलम - कालिदास
27 पंडितराज जगन्नाथ, रसगंगाधर
28. मेरी भावना - प्रकाशक जैन समाज रेवाड़ी
29 श्री पं जुगल किशोर मुख्तार "युगवीर" व्यक्तित्व और कृतित्व
30. मेरी भावना, प्रकाशक जैन समाज रेवाड़ी
31. वही
32. आचार्य दण्डी
33 मेरी भावना - प्रकाशक जैन समाज रेवाड़ी

अभिगमनीयाश्च गुणाः सर्वस्य।
सबके गुण अनुसरण के योग्य होते हैं।
-बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ. २३३)

गुणवत्कुलजातोऽपि निर्गुणः केन पूज्यते।
दोग्ध्रीकुलोद्भवा धेनुर्वन्ध्या कस्योपयुज्यते॥

गुणवान कुल में उत्पन्न होकर भी यदि कोई स्वयं गुणहीन है, तो वह पूजा का पात्र नहीं हो सकता, जैसे दुधारी गाय से उत्पन्न होने पर भी यदि गौ वन्ध्या है तो उसका उपयोग कौन करेगा?
-क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, १।१३)

मेरी भावना : आगमोक्त भावनामूलक सारांश संकलन

शिवचरण जी मैनपुरी

ज्ञान का दीपक जला तप-तेल भर
ज्ञानपूरित ज्ञान का सागर बना है।
मन सभी का भक्तियुत उन
ज्ञान सागर साधु-चरणों में समा है॥
आज मेरी भावना चिर भावना हो
आत्महितकर भावना की साधना हो।
भावना मेरी रहे युगवीर तक
मान करती भावना सद्भावना हो॥

कभी-कभी इस पावन भारत वसुन्धरा पर ऐसे युगपुरुष जन्म लेते हैं जिनके उज्जवल प्रयत्नों के द्वारा राष्ट्र की शोभा में चार चांद लग जाते हैं। उन्हीं में अग्रगण्य सिद्धान्ताचार्य पंडित जुगलकिशोर मुख्तार का नाम है। वे सरस्वती के वरद पुत्र थे ही उनका आचरण केवल जैन समाज के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत राष्ट्र और विश्वव्यापी मानवता के हितार्थ हुआ था।

बहु आयामी व्यक्तित्व युगवीर – युगवीर जी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी प्रखर प्रज्ञापुञ्ज थे। वे एक ओर जहाँ अपार पांडित्य के धनी थे, वहीं समाज सुधारक स्वतन्त्रता सेनानी एवं पूर्ण मानव थे। वे अपने जीवन में सह अस्तित्व के दिव्य मंत्र को चरितार्थ कर रहे थे। वे सरस्वती साधक के रुप में विख्यात हैं। लेकिन प्रकाशन, वाचन-प्रवचन आदि जिनवाणी प्रसार की सभी विधाओं में वे पारंगत थे। उनकी दिव्य लेखनी जैनधर्म और जैन वाङ्मय के सभी पक्षों पर अनवरत रत रहती थी। निबन्ध काव्य, श्लोक, समालोचना, इतिहास, शोधालेख, समीक्षा, भाव्य एवं संपादन आदि भारती के विविध रूप

उनके व्यक्तित्व में प्रतिबिम्बित होते हैं। वे चारों अनुयोगों के अधिकारी विद्वान् थे। संस्कृत एवं हिन्दी दोनों भाषाओं पर उनका अधिकार था। स्वयं के स्वाध्याय का प्रकृष्ट फल उन्हें प्राप्त हुआ था। वे अथकित अद्भुत जीवट के धनी थे। कठिनतम दुख के अवसरों पर वे अडिग रहे। परिवार के पूर्ण वियोग में भी उन्होंने सरस्वती माँ की सेवा की, इच्छा-शक्ति निरन्तर जागृत रखी। इसी हेतु वे दीर्घायु का जीवन जीकर अपने अस्तित्व को सार्थक कर गये।

युगवीर जी का व्यक्तित्व मूलरूप से कवि के रुप में प्रस्फुटित हुआ है। डॉ. नेमिचन्द शास्त्री ज्योतिषाचार्य के शब्दों में "युगवीर की कविता माँ भारती का श्रृंगार" है। उनकी कविताओं का संग्रह युगभारती शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। उसमें संस्कृत तथा हिन्दी दोनों ही भाषाओं के कविताये सम्मिलित हैं।

मेरी भावना -

प. जुगलकिशोर जी की अमर विख्यात और मौलिक काव्य रचना मेरी भावना है। छन्द चाल अथवा ज्ञानोदय छन्द में रचित मात्र ग्यारह छन्दों की यह लघुकाय भावना अत्यन्त गम्भीर अर्थ को समाहित किए हुए गागर में सागर के समान है। यह अन्तस का सीधे स्पर्श कर स्थायी प्रभाव छोड़ती है। इस पर बिहारी विषयक निमन्न दोहा चरितार्थ हो रहा है।

सतसइया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगे घाव करैं गम्भीर॥

मेरी भावना हृदय की गहराइयों में जाकर व्याप्त अज्ञान अंधकार का हरण कर ज्ञान प्रकाश को स्थायी बनाने में समर्थ है। प्रस्तुत काव्य को पठन करने से मुझे यह अनुभव होता है, मानो कवि ने सोद्देश्य इस कृति में अनेक आर्ष ग्रन्थों के सार को ही समायोजित कर दिया है। मानव जीवन के विभिन्न निर्बल पार्श्वों जैसे मिथ्यात्व, अज्ञान असंयम, असहिष्णुता, स्वार्थ, सहअस्तित्व, अनभिज्ञता अर्थात, दुःख-दारिद्र, दयनीय स्थितियाँ, पंच पाप प्रवृत्ति, क्रोध-मान-माया-लोभ, वैर, दैहिक-दैविक भौतिक संताप आदि की स्थिति में एक समाधान रूप संक्षेप मूल मन्त्र आम जनता की सरल भाषा में उन्होंने प्रस्तुत

किया है। इसके पदों पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि विभिन्न आचार्य वर्ग कृत रचनाओं को उन्होंने हित परक दृष्टि से अपने शब्दों में संकलन रूप में व्यक्त किया है। ये पद्य जहाँ आर्ष ग्रन्थों के विशिष्ट स्थलों के विशिष्ट अनुवाद हैं, वहीं कुछ आवश्यक कथनीय जोड़कर व्याख्या के रूप में सिद्ध होते हैं।

प्रस्तुत संक्षिप्त आलेख का अभिप्रेत यह है कि मेरी भावना का कौन सा पद्य किस आगमांश या प्राचीन लोकहितकारी संस्कृत काव्य का रूपान्तर है यह प्रस्तुत किया जाय। आचार्य जुगलकिशोर जी ने वाङ्मय के विभिन्न स्थलों से सूक्तिरुपी मणियाँ चुन-चुन कर अज्ञान के विभिन्न अन्धकाराच्छादित क्षेत्रों को प्रकाश प्रदान कर विश्वजन हिताय प्रस्तुत की है। संकलन की यह प्रणाली अनूठी है। इस भावना मूलक काव्य का चिन्तन करने से मन-वाणी-शरीर तीनों की शुद्धि होकर जीवन में शान्ति का अनुभव अवश्य होता है। यह इसीलिए वर्तमान में सर्वप्रसिद्ध कण्ठहार के रूप में सर्वजनप्रिय है। पढ़ा हो अनपढ़ हो, वृद्ध हो चाहे युवा, स्त्री हो या पुत्र हो, धनी हो या निर्धन सभी मन से इसका पारायण करते हैं।

मेरी भावना में सर्वप्रथम मंगलाचरण के रुप में निम्न पद्य प्रकट किया गया है,

> जिसने रागद्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया।
> सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।
> बुद्ध वीर जिन हरिहर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
> भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो॥ १॥

यह पद्य सम्यक्त्व के मूल स्रोत आप्त या अरिहन्त देव तीर्थंकर प्रभु के स्वरूप का अवबोधक है। आप्त के तीन लक्षणों- वीतरागता, सर्वज्ञता एवं हितोपदेशता का निरुपण कर युगवीर ने निरुप्य देव की विशेषताओं को प्रकट किया है। अव्याप्त अतिव्याप्त एवं असंभव दोषों से रहित लक्षण ही लक्षण होता है, शेष लक्षणाभास हैं। कवि मूलतः आचार्य, समन्तभद्र से विशिष्ट प्रभावित परिलक्षित होता है उनके निम्न श्लोक 'युगवीर' की भावना के आद्यांश के संकलन स्रोत हैं-

मोक्ष मार्गस्य नेतारं भेतारं कर्मभूभृतां।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुण लब्धये॥
आप्तेनोच्छिन्न दोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥

कवि का हृदय आर्ष मार्गीय श्रद्धा से आपूर्ण है। उसका प्रयास यह रहा है कि आर्ष आगम को मूल रूप से सुरक्षित रूप में ही श्रोताओं को प्रेषित किया जाय। वे संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। तत्कालीन जनों के ज्ञान के क्षयोपशम की कमी को अनुभव कर सरल भाषा में आगम का प्रस्तुतीकरण उनका प्रिय विषय रहा है ऐसा मैं मानता हूँ। उन्होंने इस प्रथम पद्य में समन्तभद्र के अनुयायी आ. अकलंकदेव कृत स्तुति के भाव को भी व्यक्त करने हेतु उसके कतिपय शब्दों को पूर्ण रुपेण समाहित कर मुख्तार साध्व ने सफल प्रयत्न किया है। स्तुति का छन्द निम्न प्रकार है-

यो विद्या वेदवेद्यं जननजलनिधेर्मंङ्गि न पारदृश्वा।
पौर्वापयर्णविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंक यदीयं॥
तं वन्दे साधुवन्धं एकलगुणनिधिं ध्वस्त दोषिद्विषन्तं।
बुद्ध वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा॥

आलेख विस्तार के भय से प्रस्तुत श्लोकों का हिन्दी अर्थ यहाँ नहीं लिखा जा रहा है। अब से लगभग एक शताब्दी पूर्व शिक्षा क्षेत्र की जो स्थिति थी तदनुकूल उस समय की लोक हितकारी भाषा के रूप में युगवीर की उक्त प्रथम पद्य की पंक्तियाँ वस्तुतः अति उपयोगी सिद्ध हुई हैं। प्रायः प्रत्येक प्रकाशन में मेरी भावना प्रकाशित है किन्तु प्रथम पद्य तो प्रकाशन के अतिरिक्त सभाओं, गोष्ठियों, चर्चाओं एवं देव दर्शन आदि के प्रसंगों में विद्वानों और सामान्य जनों के द्वारा प्रायः प्रयोग किया जाता रहा है। इस विषय में मुख्तार जी बड़े पुण्यात्मा ही कहे जावेंगे जिनके पवित्र हृदय से निःसृत शब्द जन जन का कण्ठहार बनें हुए हैं। मूल में तो यह परम्पराचार्यों की सूक्ति-मणियों का बड़ी सूझ-बूझ से किया गया संकलन ही है। संकलन कर्त्ता अनुवादक एवं प्रस्तोता इन तीनों रूपों के सिद्धान्ताचार्य युगवीर ज्ञान कलाघट के रूप में शोभायमान हैं।

मेरी भावना के द्वितीय पद्य में युगवीर जी ने निर्ग्रन्थ साधु अर्थात् गुरु के स्वरुप वर्णन किया है जो दृष्टव्य है-

विषयों की आशा नहिं जिनके साम्यभाव धन रखते हैं।
निजपर के हित साधन में जो निशदिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के दुख समूह को हरते हैं॥

इस पद्य में उन्होंने श्रावकों के हृदय में यथार्थ गुरु के प्रति श्रद्धाभाव को दृढ़ रुप से स्थापित करने का प्रयत्न किया है। इसका वर्ण्य विषय आ. समन्तभद्र के निम्न श्लोक से आप्लवित किया गया है।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरत्क्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥ १०॥

प्रस्तुत मेरी भावना की पंक्तियों को उन्होंने कहा ही नहीं है, अपितु अपने गृहस्थ जीवन में भी यथासंभव उतार कर जो अनुभव किया वह साधु नहीं तो साधक श्रावक की भूमिका का निर्वाह ही कहा जावेगा। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आर्ष निर्ग्रन्थ परम्परा के साधु का निस्पृह स्वरुप उनके जीवन में भी मानों साकार होकर समाविष्ट हो गया है। ऐसा भी कथनीय हो सकता है कि 'मेरी भावना' में उन्होंने स्वयं अपनी आन्तरिक लक्ष्यरूप आकांक्षाओं को ही प्रकट किया है किसी अन्य की नहीं। अन्य जन उनके अनुयायी बनकर इस भावना पाठ को पाथेय जानकर ग्रहण कर रहे हैं॥

पद्य क्रमांक ३ के अर्द्धांश में गुरुजनों की सत्संगति आदि श्रेष्ठ कार्य तथा साधुओं जैसी चर्या हेतु मन की अनुरक्तता की कामना की है। ज्ञातव्य है-

रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उनहीं जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे॥

और भी देंखे-

गुणी जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे॥

प्रस्तुत पंक्तियां आ. पद्मनन्दी कृत पूजा के अंत में शान्तिपाठ का भाव ही सिद्ध होती है। प्रस्तुत है शान्तिपाठ की पंक्तियां-

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।
सदवृत्तानां गुणगण कथा दोषवादे च मौनं॥

इन पक्तियों के अनुवाद में रचित उपरोक्त मेरी भावना के अंश में युगवीर ने सभी के लिए सत्संगति को सुलभ बनाने की शुभ कमनीय कोमल, शान्त और उदान्त भावना प्रकट की हे।

आ. समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार नामक चरणानुयोग के महान ग्रन्थ का प्रणयन किया है। उसमें श्रावक के अणुव्रतों-अहिंसा, सत्य,अचौर्य, स्वदारसंतोष एवं परिग्रह परिमाणव्रत का उपदेश दिया गया है जिनके पालन से रागद्वेष की हानि रूप फल प्राप्त होता है। उन्होंने कहा है -

प्राणातिपातवितथव्याहार स्तेयकाममूर्च्छेभ्यः।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुंव्रत भवति॥५२॥

प्राणों का घात असत्य वचन, चोरी, कुशील और परिग्रह के स्थूल त्याग को अणुव्रत कहते हैं। जीवन शैली के सुखद उभयलोक में कल्याणकारी अणुव्रत रूप महामंत्र की साधना करने हेतु युगवीर का अन्तरंग निम्न भावपूर्ण शब्दों में प्रभु से कामना करता है,

नहीं सताऊं किसी जीव को झूंठ कभी नहीं कहा करूँ।
परधन-वनिता पर न लुभाऊं सन्तोषामृत पिया करूँ॥

कितने संक्षिप्त एवं जनप्रिय सरल भाषा युक्त कथन में आर्ष आगमों का सार कवि ने प्रकट किया है। उनका विशद आगम ज्ञान एवं इस ज्ञान सहित और परहित के रुप में सरलतम शब्दों में प्रयोग युगवीर का कथ्य है जो कि तथ्य है, पथ्य है।

आ. उमास्वामी कृत तत्वार्थसूत्र जैनागम का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। उसमें १२ व्रतों की भावनाओं के साथह ही निम्न भावना का उपदेश भी दिया गया है।

"मैत्री प्रमोद कारुण्यमाध्यस्थानि सत्व्‌गुणाधिकक्लिश्यमानाविनेयेषु।"
(अध्याय ७/११)

इसी आशय का सूत्र आ अमितगति ने भी लिखा है यथा -

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं।
माध्यस्थभावो विपरीतदृष्टौ सदा विधेयो पुरुषा शिवाय॥

तथा इसी भाव को व्यक्त करने वाला अन्य श्लोक इन्हीं आचार्य द्वारा रचित भावना-द्वात्रिंशतिका या सामायिक पाठ में प्रथम ही पाया जाता है।

सिद्धान्ताचार्य पं. जुगलकिशोर आगम के तलस्पर्शी विद्वान् थे। अभीक्ष्णज्ञानोपयोग उनका प्रेय था, श्रेय था। संस्कृत भाषा के ज्ञाता होने पर भी लोक-प्रचलित सरल भाषा के रुप में विचारों की अभिव्यक्ति ही उनका ध्येय था। उन्होंने उपरोक्त आगम के सारभूत भावना तत्व को 'मेरी भावना' मे अति स्वाभाविक रुप में संजोया है। प्रस्तुत हैं निम्न पक्तियाँ,

"मैत्री भाव जगत में मेरी सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे उर से करुणा-स्रोत बहे॥
दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे॥"
"गुणी जनों को देख हृदय में मेरी प्रेम उमड़ आवे।"

यद्यपि इसी अर्थ की सूचक अन्य भी भावनायें होंगे, किन्तु मुख्तार सा. की उपरोक्त पंक्तियों के सामने कोई भी लोकप्रिय न हो सकीं।

'मेरी भावना' में सातवां छन्द निम्नलिखित है, जिसमें मानवपुरुषार्थ का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

कोई बुरा कहो या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे॥
अथवा कोई कैसा भी भय या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे॥

यद्यपि इस पद्य का स्रोत प्रसिद्ध रूप से भर्तृहरि का अधोलिखित श्लोक ज्ञात होता है परन्तु विविध जैन ग्रन्थों जैसे पद्मनन्दिपंच विंशतिका एक सुभाषित रत्न संदोह, नीति वाक्यामृत आदि में भी इस प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते हैं, शोधनीय है -

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्त्
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टं,
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

'मेरी भावना' में पद्य के उपरोक्त अर्थमय समावेश से यह रचना धर्म और नीति की समष्टि ही बन गई है। नीति को भी गृहस्थ धर्म के रूपों में स्वीकार करके युगवीर ने व्यवहार धर्म की आवश्यकता पर बल दिय ।है। उनका स्पष्ट मत था कि व्यवहार के बिना निश्चय धर्म की प्राप्ति कदापि संभव नहीं। इसी हेतु उन्होंने एकान्त निश्चयाभास के स्खलित एवं धर्म के असंभव रुप का खंडन किया था जो प्रकाशित भी हुआ था।

मेरी भावना के अन्य स्थल प्रायः आर्ष पूजन के शान्ति पाठ के भाव प्रकाशन के रूप में है। पूजा फल के रूप में निष्काम भक्त की यह प्रशस्त कामना होती है कि सब जीवों को सुख-शान्ति की प्राप्ति हो, सम्पूर्ण विश्व में धर्ममय वातावरण हो। सह, अस्तित्व एवं प्राकृतिक सौम्य परिणति का इच्छुक भक्त सर्वत्र क्षेत्र चाहता है। आचार्य जुगल किशोर जी ने उपर्युक्त विषय को, वासनाओं के प्रति निष्काम किन्तु लोकहित के सकाम रूप को अपनी भावना में आत्मसात किया है। मेरी भावना का अन्तिम छन्द तो अशान्ति राष्ट्र की हीन स्थिति, दुःखआदि समस्याओं का समाधान ही है। अवलोकन कीजिये,

फैले प्रेम परस्पर जग में मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं कोई मुख से कहा करे॥
बनकर सब युगवीर हृदय से देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से सब दुख संकट सहा करे॥

वे मोह को नहीं अपितु विश्व प्रेम की महनीयता को उपादेय रूप में स्वीकार करेंगे योग्य मानते हैं। अशांति के कारणों में वाणी की असीमीचीनता कटुता कठोरता भी परिगणित है जो सह अस्तित्व के मंगलमय वातावरण को निरुद्ध करती है। युगवीर जी के शब्दो में यह प्रकट किया गया है कि सभी जनवाणी का सत्य प्रयोग करें, वहीं हिकर है। उनका मन्तव्य है कि जन-जन यह कामना रखें कि देश राष्ट्र निरन्तर उन्नति को सुख-शान्ति को प्राप्त करें। अन्तिम पंक्ति में तो समता का मूल मन्त्र ही कवि ने प्रदान किया है जो कि आगम का सार है। भाव यह है कि दुख की स्थिति में यथार्थ वस्तु स्वरुप का चिन्तन ही सबल होता है। कर्मोदय के अनुसार ही प्राणी फल प्राप्त करता है उनके कर्त्तव्यों पर ही दृष्टि रखकर सुख शान्ति प्राप्त की जा सकती है।

सारांश यह है कि मेरी भावना में जुगलकिशोर मुख्तार ने आगम का सार बड़े लोकप्रिय रूप में प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। यह रचना यावच्चन्द्रदिवाकरै हमारा मार्गदर्शन करने मे समर्थ रहेंगी। मुख्तार साहब के प्रति हमारी कृतज्ञता यही होगी कि उनकी रचना के भाव को हम अपने जीवन में उतारेंगे।

गुणाधीनं कुलं ज्ञात्वा गुणेष्वाधीयतां मतिः।

कुलों के सम्मान का कारण गुण है, अतः गुणों में बुद्धि लगानी चाहिए।

-क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, १।१४)

दयैव विदिता विद्या सत्यमेवाक्षयं धनम्।
अकलंकविवेकानां शीलमेवामलं कुलम्॥

कलंकहीन विवेक वाले प्राणियों की दया ही प्रशस्त विद्या है, सत्य ही धन है और शील ही निर्मल कुल है।

-क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, १।१४)

युगवीर भारती की समीक्षा

डॉ. प्रेमचन्द्र रांवका, जयपुर

कविता मानव की उच्चतम अनुभूति की अभिव्यक्ति है। यह वह साधना है, जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है। वस्तुतः कविता हमारे मनोभावों को उच्छवसित करती है और जीवन में एक नया प्राण डाल देती है। वह मनुष्य को शोभन वस्तुओं में अनुरक्त और कुत्सित वस्तुओं से विरक्त करती है। कविता जीवन की सुन्दरतम व्याख्या है। यह भावों की विशेष उद्‌बोधिका होने के कारण मानव को अभीष्ट कार्य मे प्रवृत्त करने का सबसे अभीष्ट साधन है। यह मानव हृदय को सद्यः प्रभावित करती है। दर्शन तथा धर्म के गूढ़ तथ्यों को जन-मन तक पहुंचाने का प्रकृष्ट सम्बल है।

यह सत्य है कि जहां, साहित्य, कविता एवं इतिहास का चिन्तन नहीं होता वहां निर्जीविता का साम्राज्य प्रतिष्ठित हो जाता है। किसी भी समाज या धर्म की सबसे बड़ी पूंजी वाङ्मय की होती है। जिस समाज का कोष वाङ्मय से रिक्त रहता है। वह समाज मृतः प्राय है। उसका अस्तित्व अधिक समय तक नहीं रह सकता। जैन धर्म-दर्शन का साहित्य भारतीय वाङ्मय का अपरिहार्य और महत्वपूर्ण अंग है। जैनाचार्यों सन्तों विद्वानों श्रावक-श्राविकाओं ने जैन साहित्य के संरक्षण, सम्वर्द्धन, एवं सम्पोषण में महती भूमिका निभायी है। जैन मन्दिरों, उपासरों में विद्यमान विपुल ग्रन्थ भण्डार जो विविध भाषा एवं विषयक उपलब्ध होता है इसका प्रमाण है।

इसी श्रृंखला में स्वतंत्रता प्राप्ति पूर्व स्वनाम धन्य पं. श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र हुये हैं, जिन्होंने जैन वाङ्मय के संरक्षण एवं सम्वर्द्धन में महान योग दिया। उनके जीवन काल का अधिकंश भाग साहित्य, कला एवं पुरातत्व के अध्ययन एवं अन्वेषण में व्यतीत हुआ। साहित्य देवता के अर्चन में वे रत रहे। जिनके जन्म से वाङ्मय के भण्डार की

वृद्धि होती है, उनका जन्म सार्थक माना जाता है। अपने मनुष्य जन्म को सार्थक करने वाले "युगवीर भारती" के रचयिता श्री युगवीर मुख्तार सा. आं. - सरस्वती के ऐसे वरद्पुत्र थे जिन्होंने अपने अप्रतिहत लेखन, सम्पादन एवं कवित्व प्रणयन के द्वारा मां भारती के भण्डार को समृद्ध किया। वे उन पर पुंगवो में थे जिन्होंने सामाजिक एवं साहित्यिक क्रांति के साथ-साथ अपने जीवन को भी चरितार्थ किया है। वे सही अर्थों में साहित्यकार थे। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रस्तुत नाम की सार्थकता पर डा. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य का कथन सही है कि जन कल्याण वही व्यक्ति कर सकता है, जिसकी आत्मा में सदैव किशोर की शक्ति वर्तमान रहे। किशोर के समान साहित्यकार ही अल्हड़ हो सकता है।

अहिंसा मन्दिर प्रकाशन दिल्ली से सन् 1960 में प्रकाशित युगवीर की "युगवीर भारती" उनकी 44 कविताओं का संग्रह है। आज से लगभग 60 - 70 वर्ष पूर्व रचित कविताओ का मूल्य आज भी उतना ही है। आज भी वे चरित्र-निर्माण और समाज देशोत्थान के कार्य में प्रेरणादायक और सहायक बनी हुई है। भावों भरे काव्य के निर्माता 'युगवीर जी' अपनी विनम्रता पुस्तक के 'प्रास्ताविक' में प्रकट करते हैं - "मैं कवि नहीं हूँ और नहीं कांव्य शास्त्र का मैंने कोई व्यवस्थित अध्ययन ही किया है। फिर भी विद्यार्थी जीवन से पद्य रचना की ओर थोड़ी सी रुचि बनी रहने के कारण मेरे द्वारा दैवयोग से कुछ ऐसी कविताओं का निर्माण बन पड़ा है, जिन्होंने लोक रुचि को अपनी ओर आकर्षित किया है और उसके फलस्वरुप ही अनेक कविताए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एव स्थलों पर ग्रन्थ संग्रहों में प्रकाशित एवं उद्धृत की गई है।"

'युगवीर भारती' काव्य संकलन कवि की लोकप्रियता का प्रमाण है। जो कवि के मित्रों, पाठकों, विद्वानों तथा सामाजिकों के आग्रह/अनुरोध पर चरित्र निर्माण एवं समाज देशोत्थान से सम्बन्धित रचनाओं के रूप में प्रकाशित हुआ है। 'युगवीर भारती' में छोटी-बड़ी 44 कविताएं हैं, विषय की दृष्टि से ये छह खण्डों में विभक्त हैं। उपासना खण्ड में 7, भावना खण्ड में 4,संबोधन खण्ड में 6, सत्प्रेरणा खण्ड मे - 7, संस्कृत-वागविलास खण्ड में - 10, प्रकीर्ण खण्ड में 10 कविताएं संकलित हैं।

युगवीर भारती का कविताओं के रचयिता पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार जैन समाज के उन प्रतिष्ठित विद्वानों में से हैं, जिनकी साधना से बहुतों ने प्रेरणा प्राप्त की है। युगवीर भारती में सन. 1901 से 1956 के मध्य रचित कविताओं का संकलन है। सभी खण्डों के पद्यों में पाठकों को ऐसी अनेक रचनाएं मिलेगी; जिन्हें एक बार नहीं, कई बार पढ़ने की इच्छा होती है। कतिपय कविताएं तो दैनिक स्वाध्याय के लिये है। 'मेरी भावना' तो जैन - जैनेतर सर्वत्र सर्वमान्य है। यद्यपि संकलन की अधिकांश रचनाएं जैन मान्यताओं की है तथापि वे सर्वोपयोगी है।

युगवीर भारती की कविताएं वस्तुतः भारती का श्रृंगार है। इनमें माधुर्य का मधुर निवेश, प्रसाद की स्निग्धता, पदों की सरस शय्या, अर्थ का सौष्ठव एवं अलंकारों का मंजुल प्रयोग है। इनमें भारतीय समाज का सच्चा स्वरूप है। वर्ण्य विषय एवं वर्णन प्रकार में मंजुल सामञ्जस्य इन कविताओं का गुण है। अत्यल्प शब्दों में भावों की अभिव्यक्ति विशेष गुण है। डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य के शब्दों में युगवीर जी औचित्य के मर्मज्ञ हैं। यही कारण है कि इनके काव्य में कला पक्ष की अपेक्षा भाव पक्ष अधिक मुखर है। मानव हृदय को परिवर्तनशील वृत्तियों का चित्रण बड़ी ही कुशलता के साथ किया गया है। कवि युगवीर का सांसारिक अनुभव इतना विस्तृत और गम्भीर है कि वे भावों के ग्रंथन में भावुक होते हुये भी विचारशील बने रहते हैं। धार्मिक पक्षों को ग्रहण कर भी उन्होंने अपनी विशेष-विशेष भावनाओं की अभिव्यक्ति की है।

युगवीर भारती में संस्कृत एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में रचित कविताएं हैं। संस्कृत वाग्विलास खण्ड में कुल दस कविताओं का संग्रह है। 'वीर जिन-स्तवन' के पांच छन्दों में विविधरुप में वीर प्रभु की वन्दना की गई है।

मोहादि जन्य दोषान्यः सर्वाञ्जित्वा जिनेश्वरः।
वीतरागश्च सर्वज्ञो जातः शास्ता नमामि तम्॥

जो मोहादि जन्य दोषों को जीतकर जिनेश्वर, वीतराग, सर्वज्ञ और शास्ता हुए हैं; उन वीर को मैं नमस्कार करता हूँ।

यमाश्रित्य बुधाः श्रेष्ठाः संसारार्णव पारगाः।
बभूवुः शुद्ध-सिद्धाश्च तंवीरं सततं भजे॥

जिनका आश्रय लेकर श्रेष्ठ बुधजन संसार-समुद्र के पारगामी हुये हैं, और शुद्ध सिद्ध बने हैं, उन वीर प्रभु को मैं निरन्तर भजता हूँ।

'समन्तभद्र स्तोत्र' में ११ पद हैं। इस स्तोत्र में कवि ने समन्तभद्र को अपना गुरू मानकर उनका स्तवन किया है।

श्री वर्द्धमान वरभक्त-सुकर्म योगी
सद्बोध चारु चरिताऽनघवाक् स्वरुपी।
स्याद्वादतीर्थजल पूत समस्त गात्रः
जीयात्स पूज्य गुरुदेव समन्तभद्रः॥

जो श्री वर्द्धमान के श्रेष्ठ भक्त हैं, सच्चे कर्मयोगी हैं, सम्यक्ज्ञान, चरित्र तथा निर्दोषवचन के स्वरूपी हैं, जिनकी समस्त देह स्याद्वादरूपी तीर्थजल से पवित्र हैं, वे पूज्य गुरुदेव स्वामी समन्तभद्र जयवन्त थे। कवि अपने गुरू को दैवज्ञ, मात्रिक, तात्रिक, सारस्वत, वाग्सिद्धि प्राप्त, महावादविजेताओं का अधीश्वर सिद्ध करता है। कवि कहता है कि जन सामान्य आपकी कृतियों का अध्ययन आपके सिद्धसारस्वत होने के कारण नहीं, किन्तु लोक जीवन के मार्मिक पक्ष को समाज सम्मुख उपस्थित करने से करता है। कवि ने यह कहकर अपने गुरु के सर्वोदय सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की है। कवि ने पौराणिक आख्यान के अवलम्बन से स्तुति की है कि जिसने अपने स्तोत्रशक्ति से इस कलिकाल में चन्द्रप्रिय जिनेन्द्र के प्रतिबिम्ब को प्रकट कर राजा शिव कोटि और उनके भाई शिवायन को प्रभावित किया, वे समन्तभद्र कुमार्ग से हमारी रक्षा करें। (पद्य 5) जिनकी वाणी सम्पूर्ण सुख की प्राप्ति का मार्ग बतलाने वाली, तत्त्वों के प्ररूपण में तत्पर, नयों की विवक्षा से विभूषित और युक्ति तथा आगम के साथ अविरोध रूप हैं, वे शास्त्रा समन्तभद्र अपनी वाणी द्वारा वे सन्मार्ग दिखलाएं। (पद्य स. 6)

'मदीया द्रव्य पूजा भाव की दृष्टि से सुन्दर कविता है। कवि ने अपने आराध्य वीतरागी प्रभु से आत्म निवेदन किया है कि जल चन्दन, अक्षत, पुष्प,

नैवेद्य, दीप, धूप आदि द्रव्य मुझे शुद्ध प्रतीत नहीं होते, अतः मेरा चित्त आन्दोलित हैं कि मैं किस प्रकार इन अष्ट द्रव्यों से आपकी पूजा करुं। इतना ही नहीं कवि अपने आराध्य से निवेदन करता है-आप क्षुधा, तृषा आदि अष्टादश दोषों से रहित हैं, अतः कोई भी द्रव्य आपको वांछनीय नहीं है फिर मेरी यह पूजा विधि किस प्रकार आपको स्वीकृत हो सकेगी। कवि ने हिन्दी में 'मेरी द्रव्य पूजा' रची है। जैन आदर्श कविता १० अनुष्टप छन्दों में रचित है। इन्हीं अर्थों की हिन्दी में भी जैनी कौन नामक कविता है। दोनों प्रसाद गुणी है राग-द्वेषाऽवशी जैनों, जैनों मोह पराङ्मुखः। स्वात्मध्यानोन्मुखो जैनो जैनो रोष-निवर्जितः॥ ६ ॥ युगवीर जी की संस्कृत कविताएं भी कोमल, मधुर और प्रसाद गुणी है। शब्द सौषव, पद विन्यास उत्तम है। कम शब्दों में अधिक भाव हैं। अनुवाद छटायुक्त संस्कृत पद्य हैं निस्सन्देह संस्कृत में भी कवि की अबाधगति प्रतीत होती है।'

'युगवीर भारती' में हिन्दी कविताएं पांच खण्डों में विभक्त हैं। उपासना खण्ड में भजन, गीत एव सस्कृत व्रतों में निबद्ध कविताएं हैं। गीतों का भाव सौन्दर्य महत्वपूर्ण है। 'वीरवाणी' शीर्षक कविता में वीरवाणी को 'अखिल जगतारन को जब यान' कहकर सुधा के समान सुखदायक और संसार समुद्र के पार होने के लिए जब यान के तुल्य बताया है वीरवाणी सभी के लिए कल्याणकारी है। 'परम उपासक कौन' कविता में मन की गूढ़ और विविध दशाओं का समाधान करते हुए तीतरागता को ही उपास्य माना है चंचल मन जब तक विजय-सुख की ओर कषाय के अधीन रहता है, तब तक उसकी चंचलता उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती जाती है, पर जब संयम का अंकुश लगा दिया जाता है तो अनादिकाल से इन्द्रियों के विषयों की ओर दौड़ने वाला मन भी अधीन हो जाता है। इसी कारण कवि ने राग द्वेष विजयी प्रभु को उपास्य बताया है। 'सिद्धि सोपान' कविता पूज्यपाद की "सिद्धभक्ति" का पद्यानुवाद है। इसमें सिद्धों की भक्ति का स्वरुप चर्चित है। सिद्धिभक्ति ही श्रेयोमार्ग है। सिद्धि प्राप्ति का सोपान 'मेरी द्रव्य पूजा में कवि ने अपनी संस्कृत 'मदीया द्रव्य पूजा' का हिन्दी रुपान्तरण किया है'। इसमें कवि ने द्रव्य पूजा के स्थान पर 'भावपूजा' को ही स्वीकार कर महत्व दिया है।

भाव-भरी इस पूजा से ही होगा आराधन तेरा,
होगा तब सामीप्य प्राप्त औ. सभी मिटेगा जग फेरा॥

युगवीर जी ने भाव-पूजा के औचित्य की पुष्टि में 'पाद टिप्पणी' में आ. अमितगति के उपासकाचार के श्लोक का भी उल्लेख किया है जिसमें द्रव्य-भाव पूजा की परिभाषा है।

वचो विग्रह संकोचो द्रव्यपूजा निगद्यते।
तत्र मानस संकोचो भावपूजा पुरातनै:॥

काय और वचन को अन्य व्यापारों से हटा कर परमात्मा के प्रति हाथ जोड़ने शिरोनति करने, स्तुति पढने आदि द्वारा एकाग्र करने का नाम द्रव्य पूजा और मन की नाना विकल्पजनित व्यग्रता को दूर करके उसे ध्यानादि द्वारा परमात्मा मे लीन करने का नाम भाव पूजा है। ऐसा पुरातन आचार्यों ने अंग पूर्वादि शास्त्रों के पाठियो ने प्रतिपादन किया है।

बाहुबलि और महावीर जिन अभिनन्दन कविताओं में इन दोनों नायकों का चरित्र वर्णित है। भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से उत्तम काव्य रचना है।

"कर्म बन्ध से बंधे सभी संसारी प्राणी अपनी सुधि सब भूल दु:ख सहते अज्ञानी॥
उसके ही हित अवतरी सन्मति वाणी उनके भाग्य विशाल, सुनी जिनने वाणी॥
निश्चय से व्यवहार सर्वथा भिन्न नहीं है। दोनों ही है मित्र शत्रुता नहीं कहीं है॥
एक बिना अस्तित्व दूसरे का नहीं बनता। एक बिना नहीं काम, दूसरे का कुछ चलता है॥
विश्व अनादि अनन्त कोई नहिं कर्ता हर्ता। निज कर्मों का भोग, भोगना खुद ही पड़ता॥
अन्तर्बहि दो हेतु मिले, सब कारज सधता। निज स्वभाव तज कोई द्रव्य पररुपन बनता॥
निज परिणामों की संभालका तत्व सुझाया। सुख दुख में समभाव धरण कर्तव्य बताया॥
अनासक्ति मय कोई योग का मर्म जताया। भक्ति योग औ ज्ञान योग का गुण दर्शाया॥"

'मेरी भावना' कविवर युगवीर की सबसे प्रसिद्ध और मौलिक रचना है। यह एक राष्ट्रीय कविता है जो सर्वोदयी भावना से युक्त मानवमात्र के हितार्थ रचित है। यह जैन समाज के सदृश जो सर्व प्रथम सन् 1916 में छपी थी जैनेतर समाज में भी उतनी ही लोकप्रिय है। इसके अनेक संस्करण प्रकाशित होते रहे हैं। राज. वि.

वि. के दीक्षान्त समारोह में गीता के साथ मेरी भावना का भी वितरण दीक्षार्थियों को किया। जैन आबाल वृद्धों को कंठस्थ हजारों की संख्या में देश विदेशी जनता इसका नित्य पाठ करती है। अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती, मराठी, कनडी और संस्कृत आदि अनेक भाषा ओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं। कवि ने मेरी भावना के ११ पद्यों में अनेक आर्ष ग्रन्थों का सार भर कर प्राणीमात्र के प्रति सुख की कामना की है इसमें धर्म, अध्यात्म और सदाचरण का सम्यक् निवेश हुआ है प्रसाद गुणी है।

'मेरी भावना' जितनी लोकप्रिय हुई, उतनी अन्य कोई नहीं। इस अकेली कविता ने ही कवि को उसने कहा था के कहानी लेखक चन्द्रधर गुलेरी की भांति अमर बना दिया। जब तक भारत राष्ट्र का अस्तित्व रहेगा, तब तक कविवर युगवीर की मेरी भावना जन-जन के कण्ठ का हार बनी रहेगी।

कविवर युगवीर जी की सबसे प्राचीन रचना 'अनित्य भावना' जो सन 1901 में रची गई थी, वह आचार्य पद्मनन्दि के अनित्य पञ्चाशत् ग्रन्थ का मूलानुगामी पद्यानुवाद है। इस सं. रचना ने कवि के जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया। स्वयं युगवीर जी के शब्दों में "अनित्य पंचाशत् ने मेरे जीवन की धारा को बदला है। इसने मुझे विषय-वासना के चक्कर में, हर्ष-विषाद की दल-दल में और मोह, शोक तथा लोभ के फन्दे में अधिक फंसने नहीं दिया। यही वजह है कि विषय-वासना को पुष्ट करने वाली कोई भी कविता आज तक मेरी लेखनी से प्रसूत नहीं हुई। मेरी कविताओं का लक्ष्य मुख्यत: स्वात्मसुख और लोक सेवा रहा है।"

"अनित्य भावना" कविता ने पाठकों को भी इतना प्रभावित किया कि इसके मूल सहित तीन संस्करण कई हजार की संख्या में पहले ही प्रकाश में आ चुके थे। यह रचना पद्यानुवाद के रूप में कवि की सर्व प्रथम कृति है। पद्यानुवाद होते हुये भी यह कविता भाव भाषा की दृष्टि से उत्तम कोटि की है।

जल बुद् बुद् सम है तनु, लक्ष्मी इन्द्र जालवत् मानों,
तीव्र पवन इत मेघ पटल सम, धन कान्ता सुत जानो।
मत्त-त्रिया के ज्यों कटाक्ष त्यों, चपल विषय-सुख सारे,
इससे इनकी प्राप्ति नष्टि में, हर्ष शोक क्या प्यारे॥

'युगवीर भारती' में मेरी भावना के समान "अनित्य भावना" भी प्रभावी है। युगवीर भारती की कविताओं मे कवि के सुसंस्कृत हृदय की उदार भावनाएं पूरी मात्रा में विद्यमान हैं। ये कविताएं जीवन में मंगल प्रभात का उदय करने वाली है। काव्यत्व की दृष्टि से भी प्रसाद और माधुर्य गुणों का समावेश हुआ है। मानव की विभिन्न चित्तवृत्तियों का सूक्ष्म और सुन्दर विवेचन हुआ है। भावात्मक शैली में कवि ने अपने हृदय की अनुभूतियों को सरल रुप में अभिव्यक्त किया है। सभी कविताएं है। युगवीर भारती का सन्देश है- मानव का वास्तविक उत्थान इन्द्रिय निग्रह से होता है। इन्द्रियों का दास बन जाना पशु भव है और उनका स्वामी बन जाना देवत्व है।

'मैं किस-किसका अध्ययन करुं' मैं कवि की उदात्त भावना है-

सब विकल्प तज निज को ध्याऊँ, निज में रमण करुँ।
निजानन्द-पीयूष पान कर सब विष वमन करुँ॥
मेरा रुप एक अविनाशी, चिन्मय मूर्ति धरुँ।
उसको साधे-सवसध जावे, क्यों अन्यत्र भ्रमूँ॥

लोक मे सुखी वहीं होता है- परिग्रह ग्रह मत्वानाऽत्यासक्तिं करोतिय:।

आत्मशुद्धि को प्राप्त सन्तोषी प्राणी-त्यागेन शुद्धि सम्पन्न: सन्तोजे भुवने सुखी॥

निसन्देह कविवर युगवीर जी का काव्य-साहित्य विश्व बन्धुत्व का परिचायक है। वह नवीन प्रेरणा का स्त्रोत है, जीवन निर्माण का आधार है और आत्मोन्नयन एव मानवोत्थान का अग्रदूत है। या विद्या सा विमुक्तये को सार्थक है।

ऐसे कविवरो के लिये ही कहा गया है:

धन्य सुरस के सीरक कवि, तिन सुकृति जग मांहि।
जिनके यश के काय में जरा मरणज भय नांहि॥

''युगवीर भारती'' के सम्बोधन खण्ड का समीक्षात्मक अध्ययन

श्रीमती कामिनी ''चेतन्य'', जयपुर।

हर क्षण जीवन का मूल्यवान है, सफल बना लो।
जो गया सो गया अब भी, ध्यान लगा लो॥
इस धरा पर मिल जायेगी, मुक्ति सभी को।
आत्मा में केवल ज्ञान का, दीप जला लो॥

भारत शताब्दियों से संस्कृति प्रधान देश रहा है। साहित्य, संगीत व कला ही देश की संस्कृति की आधारशिला होती है। साहित्य हमारे कौतूहल और जिज्ञासा वृत्ति को शान्त करता है, ज्ञान पिपासा को तृप्त करता है।

आज के इस भौतिक वातावरण में जहाँ चारों ओर पाश्चात्य-परिवेश पूर्णरूप से व्याप्त है, मानव भौतिकता की चकाचौंध में आध्यात्मिकता को भुलाये जा रहा है, भोग-लिप्सा व विलासिता उसके जीवन का अंग बन चुके हैं। जैन वाङ्मय इतिहास एवं पुरातत्व की महत्वपूर्ण सामग्री गुफाओं, मन्दिरो व अलमारियों में बन्द घुटन की श्वास ले रहे थे, ऐसे अज्ञान रुपी अन्धकार को विलुप्त कर ज्ञान का प्रकाश प्रज्जवलित करने वाले सरसावा की अत्यन्त उर्वर भूमि को मार्ग शीर्ष एकादशी वि. सं. 1934 को एक महान व्यक्तित्व को जन्म देन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जिस व्यक्तित्त्व के समक्ष सरस्वती अपनी ज्ञान गठरी खोल उसे युग-युगान्तर तक अमर बना देगी। माता भुई देवी अपने इस नौनिहाल को प्राप्त कर आनन्द-विभोर हो उठीं। माता-पिता ने नामकरण संस्कार सम्पन्न किया, और नाम रक्खा ''जुगलकिशोर'' कहा भी है -

''पूत के पैर पालने में ही मालूम पड़ जाते हैं।''

जुगलशिोर में बचपन से ही अलौकिक ज्ञान पिपासा थी। हिन्दी, अग्रेजी, सस्कृत उर्दू के साथ-साथ अनेक भाषाओं पर इन्हें पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त था। निबन्ध, कविता लिखना इनकी दैनिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत था। कुरीतियों और अन्ध-विश्वासो का निराकरण कर यथार्थ आर्ष मार्ग का प्रदर्शन करना, आपके संकल्पी कृत्य थे। साहित्य के प्रति आपके हृदय में सदैव समर्पण का भाव था।

''समर्पण-श्रद्धा के साथ, भक्ति बन जाता है।
समर्पण विवेक के साथ, शक्ति बन जाता है॥
इसलिये समर्पण किसी भी, दर पर करना परन्तु।
भेद विज्ञान के साथ हो, मुक्ति की युक्ति बन जाता है।''

जिस प्रकार उन्मुक्त पक्षी आकाश में स्वेच्छा पूर्वक उड़ता है, उसी प्रकार आप भी समाज में वैचारिक क्रान्ति कर, अबाधगति से समाज और वाङ्मय के क्षेत्र में उड़ान भरना चाहते थे। कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने कविता के माध्ययम से पक्षी की उन्मुक्तता को प्रकट किया है।

''हमें न बांधों प्राचीरों में।
हम उन्मुक्त गगन के पंछी हैं।
पञ्जर बद्ध न गा पायेंगे।
कनक तीलियों से टकराकर।
प्रमुदित पंख टूट जायेंगे॥''

'युग भारती' सम्बोधन खण्ड - 3 का समीक्षात्मक विश्लेषण करने से पूर्व पं मुख्तार सा की काव्यत्व प्रतिभा का उद्भव विषयक उल्लेख कर संक्षिप्त जानकारी अपेक्षित होने से यहाँ स्पष्ट किया गया है कि मुख्तार सा अपने अनन्य मित्र पं नाथूराम जी प्रेमी के यहाँ गये थे। उनके बच्चे हेमचन्द के हाथ में काँच से चोट लगने से पीड़ा हुई। उन्होंने बच्चे के शब्दों की तुकबन्दी की, और कविता बन गई-

''काका तो चिमनी से, डरत-फिरत है।
काट लिया चिमनी ने, सी-सी करत हैं॥

अब नहीं छुयेंगे, ऐसो कहत है।
देखो जी काका ये, वीर बनत है॥"

सरस्वती के वरद पुत्र ने लेखन, सम्पादन और कवित्व प्रहायन द्वारा माँ भारती का भण्डार समृद्ध किया है। कविता भावों की विशेष उदीपिका होने के कारण मानव को अभीष्ट कार्य में प्रवृत्त करने का सबसे अभीष्ट साधन है। साधारण जनता के हृदय तक दर्शन और धर्म के गूढ़ तथ्यों को पहुँचाने के लिये कविता का सहारा कवि द्वारा लिया गया है।

श्री मुख्तार साहब की काव्य रचनाओं का संग्रह 'युग भारती' के नाम से प्रसिद्ध है। 'युगवीर' की कविता भारती का श्रृंगार है, इसने माधुर्य का मधुर निवेश, प्रसाद की स्निग्धता, पदों की सरस शय्या, अर्थ का सौष्ठव, व अलंकारों का मंजुल प्रयोग पाया जाता है। कवि 'युगवीर' की सबसे प्रसिद्ध मौलिक रचना 'मेरी भावना' है। यह एक राष्ट्रीय कविता है। इस संग्रह के सम्बोधन खण्ड में छह कवितायें हैं।

1. जैन सम्बोधन 2 समाज सम्बोधन 3. वर सम्बोधन
4 विधवा सम्बोधन 5 अज सम्बोधन।

सर्वप्रथम जैन सम्बोधन कविता की समीक्षा में आपने नैतिक पतन पर दृष्टिपात करने हुये अनैतिकता के दुष्परिणामों से तिरोहित होते हुये जैनत्व के लक्षणों को चिन्हित किया है।

"मद्य मांस-मधु त्यागः, सहोदुम्बर पंचकैः।
अष्टावेते गृहस्थाना मुक्ता, मूल गुणा श्रुते॥"

अर्थात् पंच उदुम्बर फल और तीन मकार का त्यागी ही जैन कहलाता है। मुख्तार जी ने जैनत्व के विषय में 'युबवीर भारती' में लिखा है -

छोड़ दो संकीर्णता, समुदारता धारण करो।
पूर्वजों का स्मरण कर कर्त्तव्य का पालन करो॥
आत्म बल पर जैन वीरों, हो खड़े बढ़ते चलो।
हो न ले उद्धार जब तक, युग प्रताप बने रहो॥

आज मानव मन से दया, मृदुता, सरलता समाप्त हो चुकी है, वह उदरपूर्ति हेतु मूक-निरीह को रसना इन्द्रिय के वशीभूत हो भोज्य वस्तु बनाये हुये हैं।"

"मनुज प्रकृति से शाकाहारी।
माँस उसे अनुकूल नहीं॥
पशु भी मानव जैसे प्राणी।
वे मेवा फल-फूल नहीं॥"

समाज के वातावरण की नींव पर ही साहित्य का प्रसाद खड़ा होता है। समाज की जैसी परिस्थितियाँ होगी, वैसा ही उसका साहित्य होगा। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का यह कथन नितान्त सत्य है कि साहित्य ही समाज का दर्पण है।

जिस प्रकार सूर्य की प्रथम किरण का आलोक दो जगतीतल का अंधकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार युगवीर की कविताओं का आलोक पर मोह निद्रा में पड़े मानव ज्ञानामृत का पानकर पुलकित हो उठे -

"क्या तत्व खोजा था, उन्होंने आत्म जीवन के लिये।
किस मार्ग पर चलते थे वे, समुन्नति के लिये॥
इत्यादि बातों का नहीं तब, व्यक्तियों को ध्यान है।
वे मोह निद्रा में पड़े, उनको न अपना ज्ञान है॥"

आध्यात्म की अविरल निर्मल धारा को प्रवाहित कर समाज का कलंक मिटाने हेतु देश के कर्णधार नव-युवकों को सम्बोधित करते हुये, आपने जैन संस्कृति के गौरव में चार-चाँद लगा दिये हैं, वर-सम्बोधन के रूप में आपने लिखा है-

"अटल लक्ष्य रहें इनमें सदा, 'युग प्रताप' न चालित हो कदा।
धरम की धन की नहिं हानि हो, सफल यों स्वगृहस्थ विधान हो॥"

जहाँ हृदय में मन्द-मन्द गन्ध, देह में मातृत्व का गौरव, गृह के कण-कण की व्याप्त दीवारें, जिसके सहज स्नेह के कारण चमक उठती है, वही

नारी अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरुक रहकर अक्षुण्य गौरव का परिचय देती है –

"क्या-क्या सुनाये तुम्हें, दर्द वतन कहानियाँ।
जिन्दा चिता में जल गई, चौदह हजार रानियाँ॥"

वर्षों से पुरुष के शोषण, उत्पीड़ने, अन्याय, अत्याचार की शिकार बनी नारी, जब सौभाग्य विहीन हो जाती है, तो उसके ऊपर होने वाले अत्याचारों की पराकाष्ठा और अधिक प्राबल्य ग्रहण कर लेती है। विधवा सम्बोधन द्वारा 'युग भारती' में लिखा है –

"माना हमने हुआ हो रहा, तुम पर अत्याचार बड़ा।
साथ तुम्हारे पंच जनों का, होता है व्यवहार कड़ा॥
पर तुमने इसके विरोध में, किया न जब प्रतिरोध खड़ा।
तब क्या स्वत्व भुलाकर तुमने किया नहीं अपराध बड़ा॥"

प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद जी ने भी लिखा है –

अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध, आँखों में पानी॥

परन्तु वर्तमान नारी पुरुष से किसी भी क्षेत्र में कम नहीं है। सतीत्व, लज्जा ही स्त्रियों का श्रृंगार है।

"जग जीवन पीछे रह जावे।
यदि नारी न दे पावे स्फूर्ति॥
इतिहास अधूरे रह जावे।
यदि नारी न कर पावे पूर्ति॥
नारी में अति उज्जवल सतीत्व।
उज्जवल सतीत्व में महातेज॥
इस महातेजमय दीपक से।
नारी रखती है सहज स्नेह॥"

"रागी को राग और वैरागी को सृष्टि के कण-कण में वैराग्य झलकता है। वैराग्य धारण करने की कोई अवस्था नहीं होती। जैसा कि -"

"जीवन के किसी भी क्षण में, वैराग्य झलक सकता है।
संसार में रहकर प्राणी, संसार से तिर सकता है॥"

युगवीर भी ऐसे ही घर में वैरागी थे। वे गृहस्थ जीवन की चट्टानों को चीरते हुये, धन वैभव की आँधी को झकझोरते हुये, काव्यमय लोरियों द्वारा अज्ञान निद्रा में सोये मानवों को जगाने का मार्ग प्रशस्त कर गये हैं। धनिकों की मनोवृत्ति का उद्बोधन करते हुये किसी कवि ने लिखा है -

"श्वानों को मिलता दूध वस्त्र।
भूखे बच्चे अकुलाते हैं॥
माँ की हड्डी से चिपक हितुर।
जाड़े की रात बिताते हैं॥
युवती की लज्जा वसन बेच।
जब ब्याज चुकाये जाते हैं॥
मालिक तब तेल फुलोलों पर।
पानी सा द्रव्य नहाते हैं॥"

धनिक सम्बोधन के माध्यम से 'युगवीर' ने लिखा है -

"भारतवर्ष तुम्हारा है, तुम हो भारत के सुपुत्र उदार।
फिर क्यों देश विपत्ति न हरते, करते इसका बेडा पार॥"

अन्त में मैं यह कहना चाहूँगी पं. जुगलकिशोर मुख्तार इस युग के सच्चे युगवीर थे। जिन्होंने सौ से अधिक निबन्ध लिखकर अपनी लेखनी को कृतकृत्य कर दिया। ऐसा कोई पहलू अछूता नहीं रहा जिसे उन्होंने अपनी लेखनी का विषय न बनाया हो।

बध्य स्थान पर जाते समय बकरे की मनोवृति का अध्ययन कर उन्होंने लिखा है, हे अज! इस नृशंस मानव द्वारा अपनी क्षुधा की तृप्ति हेतु तुम्हें घसीट कर ले जाया जा रहा है, तुम स्वयं ऐसा विचार क्यों नहीं करते हो।

"इससे बेहतर खुशी-खुशी, तुम बध्य भूमि को जा करके।
वधक छुरी के नीचे रख दो, निज सिर स्वयं झुका करके॥
आह भरो उस दम यह कहकर, हो कोई नया अवतार।
महावीर के सदृश जगत में, फैलावे सर्वत्र दया॥ १॥"

कबीरदास जी ने भी लिखा है -

बकरी पाती खात है, ताकी काडी खाल।
जो नर बकरी खात है, ताको कौन हवाल॥

वास्तव में पं जुगलकिशोर मुख्तार आज भले ही इस धरा पर विराजमान नहीं है, पर साहित्य-साधना की ऐसी मिसाल कायम कर गये, जो विद्वत समाज को सदैव ज्ञान-रूपी रोशनी का पुहुप विकीर्ण करती रहेगी।

मैं पुनः उपाध्याय श्री ज्ञान-सागर जी महाराज के चरणों में नमन करती हुई, यह कहना चाहूँगी।

"सन्तों का त्याग अनोखा है, देखो तो इनकी काया को।
सांसारिक सभी भोग तजकर ठोकर मारी इस माया को॥
पशुओं तक को सुर पदवी दी, इनके ही पावन मंत्रों से।
आध्यात्मिकता कायम रखी, अब तक ही ऐसे सन्तों ने॥"

नमोस्तु - जयजिनेन्द्र

युगवीर भारती के सत्प्रेरणा खण्ड की समीक्षा

श्रीमती सिन्धुलता जैन, जयपुर

सरसावा में जन्में कवि श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार युग कवि थे, उन्होंने अपने काव्य में विशाल भारतीय जीवन के अनेक समृद्ध चित्र दिये हैं। कलाकार जिस समाज में जन्म लेता है उसके सदस्य की हैसियत से ही सोच-विचार, चिन्तन-मनन प्रस्तुत करता है, क्योंकि व्यक्ति का सामाजिक जीवन ही उसको चेतना, भावना, अनुभूति और कल्पना का मूल स्रोत होता है। लेखक समाज से केवल प्रभावित ही नहीं होता उसे प्रभावित करता भी है। श्री मुख्तार जी जिस परिवेश में हुए वह स्वाधीनता आन्दोलन, वर्णाश्रम, धर्म, छुआछूत, बाल-विवाह, अस्पृश्यता आदि का परिवेश था, उन्होंने इसी के अनुरूप काव्य सृजन किया है।

कवि "युगवीर" कवि पहले हैं निबधकार, आलोचक या इतिहासकार बाद में। कविता भावों की उद्घोषिका है। यह हृदय के ऊपर गहरी चोट करती है और मानव हृदय को तुरन्त उत्तेजित करती है तथा साधारण जनता के हृदय तक दर्शन तथा धर्म के गूढ़ तथ्यों को पहुँचाने का सर्वोत्तम साधन है।

कवि युगवीर जी पं महावीरप्रसाद द्विवेदी, युगपुरुष निराला, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन जी की भाँति आदर्शवादी, अक्खड़ एवं निर्भीक, विनोदप्रिय एवं साहसी थे। "युगवीर" औचित्य के तो मर्मज्ञ हैं ही, यही कारण है कि इनकी "युगवीर भारती" नामक काव्यकृति में कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष अधिक मुखर है। उन्होने मानव हृदय की परिवर्तनशील वृत्तियों का चित्रण बडी ही कुशलता से किया है। कवि युगवीर का सांसारिक अनुभव इतना विस्तृत और गभीर है जिससे वे भावो के ग्रन्थन में भावुक होते हुए भी विचारशील बने रहते हैं। ससार के धार्मिक पक्षों को ग्रहण कर उन्होंने अपनी उच्च भावनाओं की अभिव्यक्ति अपनी कविताओं में की है।

कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी "भारतभारती" काव्य पुस्तक में पृष्ठ 171 में लिखा है-

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"

कवि युगवीर जी ने अपनी "युगवीर भारती" के सत्प्रेरणा खंड की कविताओं में इसी के अनुरूप मानव समाज को धर्म तथा राष्ट्र के प्रति मर-मिटने का उपदेश दिया है। "सत्प्रेरणा खण्ड" सात कविताओं का संग्रह है जिसमें है:- महावीर सन्देश, मीन-संवाद, मानव-धर्म, उपालम्भ और आह्वान, जैनी कौन? इन सभी कविताओं द्वारा कवि ने मानव जीवन को सत्कार्यों की ओर प्रेरित करने का प्रयास किया है।

"संज्ञानी संदृष्टि बनो, "औ" तजो भाव संक्लेश।
सदाचार पालो दृढ़ होकर रहे प्रमाद न लेश॥
सादा रहन-सहन-भोजन हो, सादा भूषा वेश।
विश्व-प्रेम जागृत कर उर में, करो कर्म नि:शेष॥"

सदाचार शब्द बहुत ही व्यापक है इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि पाँचों व्रतों का समावेश है और पाप, मद्य मांसादि अभक्ष्य पदार्थों के त्याग को सदाचार में गृहीत किया है।

वर्तमान में भगवान महावीर के सिद्धांतों की आवश्यकता है क्योंकि सर्वत्र हिंसा का तांडव, मांसाहार की प्रवृति, दहेज प्रथा का बोलबाला, भ्रष्टाचार-अनाचार, अराजकता फैली हुई है। अत: स्वयं पापों का त्याग कर दूसरों को भी इसका उपदेश देना है। पाप से घृणा करो पापी से नहीं। यह प्रचलित उक्ति है। इसी बात को "युगवीर" जी ने अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त किया है -

"घृणा पाप से हो, पापी से नहीं कभी लव-लेश।
भूल सुझाकर प्रेम मार्ग से करो उसे पुण्येश॥"

"युगवीर" जी ने बुरे विचारों का त्याग करके उदार बनने, सदैव ही प्रसन्नचित्त होकर तत्त्व की बातो का चिंतन करने तथा अपने मन में सुख-दु:ख के समय धैर्य धारण करके राग, द्वेष, भय, इन्द्रिय, मोह, कषाय आदि पर विजय प्राप्त करने की बात कही हे -

तज, एकान्त-कदाग्रह-दुर्गुण, बनो उदार विशेष
रह प्रसन्नचित सदा, करो तुम मनन तत्व उपदेश॥
जीतो राग-द्वेष, भय-इन्द्रिय-मोह-कषाय अशेष
धरो धैर्य, समचित्त रहो औ, सुख-दुख में सविशेष॥

कवि मुख्तार जी ने अपनी लोकप्रसिद्ध कविता मेरी भावना में भी इसी ओर इंगित किया है-

"जिसने राग-द्वेष-कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो,
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो।"

महावीर संदेश नामक कविता में पं श्री मुख्तार जी ने अहंकार, अपनेपन, तृष्णाभाव जो अवनति की ओर ले जाने वाला है उसका त्याग करके तपस्या तथा संयम में लीन होने की बात कही है। वास्तव में जैन साहित्य अहंभाव, अपनेपन, तृष्णा को समस्त विपदाओं का कारण मानता है। अत: इनको त्यागने का उपदेश सर्वत्र मिलता है। इन सबका त्याग करने से ही अपना तथा सभी का कल्याण होगा।

"हो सबका कल्याण भावना ऐसी रहे हमेश,
दया-लोक-सेवा-रत चित हो और न कुछ आदेश।
इस पर चलने से ही होगा विकसित स्वात्म-प्रदेश,
आतम-ज्योति जगेगी ऐसे जैसे उदित दिनेश।"

तथा अन्य साहित्य में भी सर्वकल्याण की भावना दृष्टिगोचर होती है -

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग भवेत॥"

अतः महावीर के सिद्धांत स्वयं को परिवर्तित करके राष्ट्र को परिवर्तित करने का अनुपम साधन है यह सिद्धांत ही सतयुग के संचार का साधन है क्योंकि मूकमाटी महाकाव्य में आचार्य विद्यासागर महाराज ने पृ. 82-85 पर सतयुग की परिभाषा इस प्रकार दी है-

"सत्युग उसे मान
बुरा भी
"बूरां" सा लगा है सदा।
सत की खोज में लगी दृष्टि ही
सत्-युग है बेटा।"

इस प्रकार महावीर स्वामी के सिद्धांत सार्वभौमिक थे किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं। यदि महावीर के सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्तेय जैसे सिद्धांतों को प्रत्येक व्यक्ति अपना ले तो वह सत् की खोज कर सकता है और हमारे देश में सतयुग का संचार हो सकता है।

"मीन संवाद" कविता के माध्यम से "युगवीर" जी ने यह दर्शाया है कि अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए मानव अपना धर्म भुलाकर कितने ही निर्दोषी, निरपराधी प्राणियों को हिंसा करने को तत्पर हो जाता है। उसे इसकी परवाह नहीं रहती कि आने वाले समय में उसकी क्या दशा होगी। इस कविता में जाल में फँसा हुआ मीन जब अपना निवेदन प्रस्तुत करता है तो स्वार्थी मानव का भी दिल दहल जाता है। मीन अपनी निर्दोषता बधिक के समक्ष प्रस्तुत करता है वह कहता है कि मैंने न तो कभी हिंसा की, न झूठ बोला, न चोरी की और न कभी कुशील का सेवन किया। मैं अपनी स्वल्प विभूति में ही संतुष्ट था। ईर्ष्या, घृणा से दूर, मैं संसार की किसी वस्तु पर अपना अधिकार भी नहीं करता हूँ, न मैंने किसी का विरोध किया न बुराई की, न किसी का धन छुड़ाया। मैं तो निःशस्त्र दीन अनाथ हूँ, मैंने सुना था -

"रक्षा करें वीर सुदुर्बलों को,
निःशस्त्र पै शस्त्र नहीं उठाते।
बातें सभी झूठ लगे मुझे वो,
विरुद्ध दे दृश्य यहाँ दिखाई।"

मीन कहता है कि मुझे तो लगता है कि अब या तो धर्म नष्ट हो गया या सारी पृथ्वी ही वीरों से विहीन हो गई तथा सभी लोग स्वार्थ में अंधे हो रहे हैं। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए चाहें उन्हें कैसा भी कार्य करना पड़े कर रहे हैं चाहें उसमें किसी का बुरा ही क्यों न हो-

"या तो विडाल - व्रत ज्यों कथा है, या यों कहो धर्म नहीं रहा है।
पृथ्वी हुई वीर विहीन सारी, स्वार्थान्धता फैल रही यहाँ वा।"

कवि श्री मुख्तार जी की भाँति ही राष्ट्रकवि बालकृष्ण शर्मा "नवीन' की कविता "जगत उबारो" के प्रथम छन्द में भी विरागात्मकता, नियम-उपनियम, जग आचार-विचार, लोकोपचार, ज्ञान विवेक सभी कुछ लुप्त होते हुए दिखाई देते हैं -

"धधक रहा है सब भूमण्डल भूधर खौल रहे निशि वासर,
सखे, आज शोलों की बारिश नभ से होती है झर-झर कर।
धन गर्जन से भी प्रचण्डतर शतघ्नियों का गर्जन भीषण
घर्षण करता है मानव हिय जग में मचा घोर संघर्षण॥"

कवि "नवीन" ने इससे मुक्ति पाने के लिए प्राणियों से वीरता से भरकर अनाचार को समाप्त करने को कहा है तथा मानवोचित गुणों की प्राप्ति की और संकेत किया है -

"एक ओर कायरता काँपे, गतानुगति, विगलित हो जाये।
अंध मूक विचारों की वह अचल शिला विचलित हो जाये।
और दूसरी ओर कंपा देने वाला गर्जन उठ जाये,
अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मंडराये।"

तथा -

"प्राणों को तड़पाने वाली हुंकारों से जल थल भर दे।
अनाचार के अम्बारों में अपना ज्वलित पलीता धर दे॥"
(प्रलयंकर "जूझे पत्ते" कविता, छन्द 5)

कवि श्री "युगवीर" जी ने इस कविता में सभी अन्यायी लोगों को देखकर आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा है कि -

"भला न होगा जग में उन्हों का,
बुरा विचारा जिनने किसी का।
न दुष्कृतों से कुछ भी है जो,
सदा करें निर्दय कर्म ऐसे॥"

अतः सभी को अपने धर्म का पालन करते हुए कर्तव्य पथ पर निःस्वार्थी बनकर चलते जाना है तथा जो अन्यायी, स्वार्थी, कपटी है उसके प्रति संघर्ष करके इस संसार को अहिंसात्मक, न्यायी, धर्मानुयायी बनाना है।

"मानव धर्म" में "युगवीर" जी ने जाति, धर्म, छुआछूत आदि के भेदभाव को भुलाकर, मिल-जुल कर अपना-अपना कार्य करने की प्रेरणा दी है, क्योंकि जाति, धर्म के भेदभाव को लेकर देश के कर्णधार विद्वेष की भावना पैदा कर भारतीय समाज को विभिन्न वर्णों व जाति में विभक्त करा रहे हैं। कवि युगवीर जी ने अपनी कविता के माध्यम से बताया है कि जाति, धर्म, से गर्वित व्यक्ति अपने ही आत्मीय धर्म को ठुकराता है इसीलिये जाति और धर्म के माध्यम से विद्वेष पैदा नहीं करना चाहिये। उन्होंने कहा है -

"जाति कुमुद से गर्वित हो जो धार्मिक को ठुकराता है,
वह सचमुच आत्मीय धर्म को ठुकराता न लजाता है।
क्योंकि धर्म धार्मिक पुरुषों के बिना कहीं नहीं पाता है,
धार्मिक का अपमान इसी से वृष अपमान कहाता है।"

अतः मानव धर्म "सर्वजनहिताय, सर्वजन सुखाय" के स्वरुप का प्रतिपादन करता है, मानव में मानवीयता के गुण विद्यमान होते हैं सत्य, अहिंसा, करुणा, परोपकार जैसे गुणों से युक्त होता है इन गुणों से रहित मानव में मानवता का संचार नहीं होता है।

कवि ने लिखा है - गाय, घोड़े, हाथी आदि जानवरों में तो भेद होता है लेकिन शूद्र और ब्राह्मणी के संगम से भी जब मानव की उत्पत्ति होती है तो फिर उसमें भेद क्यों किया जाय। ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य, इनके व्यवहार में भेद जरुर होता है तथा वह अपना-अपना कार्य करते हैं लेकिन उन्हें ऊँचा-नीचा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सभी मानव समाज के अंग है सभी धर्म के पात्र हैं। शूद्र यदि तिरस्कृत होकर तथा दु:खी होकर अपना कार्य छोड़ देता है तो संसार में तथा समाज में क्या होगा। पंडित श्री मुख्तार जी ने कहा है कि कोई अछूत नहीं होता है अत: किसी भी जीव को तिरस्कृत नहीं करना चाहिए -

> "गर्भवास औ" जन्म-समय में कौन नहीं अस्पृश्य हुआ?
> कौन मलों से भरा नहीं? किसने मलमूत्र न साफ किया?
> किसे अछूत जन्म से तब फिर कहना उचित बताते हो?
> तिरस्कार भंगी चमार का करते क्यों न लजाते हो?

इसी प्रकार आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने मूकमाटी में कहा है कि सभी मानवों में एक ही आत्मा का वास है, एक ही जैसा खून है, फिर जातिगत भेदभाव क्यों? आचार्य विद्यासागर जी ने जातिगत भेदभाव संबंधी तत्वों को निरुत्साहित करते हुए कहा है कि जिसके आचरण अच्छे हैं तथा जो उच्चकर्म करता है वही उच्च जाति का है तथा उन्होंने आचरण को ही प्रमुख माना है और कहा है -

> "गात की हो या जात की,
> एक ही बात है,
> हममें और माटी में
> समता सदृशता है......
> वर्ण का आशय
> न रंग से है
> न ही अंग से
> वरन् चालचरण ढंग से है।"

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा "नवीन", रामधारी सिंह दिनकर आदि कवियों ने भी अछूतों का उद्धार करने का प्रयास किया है। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचना भारत भारती में मानव समाज व्यवस्था का जीर्णोद्धार करने का प्रयास किया है -

"ब्राह्मण बढ़ावें, बोध को, क्षत्रिय बढ़ावे शक्ति को,
सब वैश्य निज वाणिज्य को, त्यों शूद्र भी अनुरक्ति को।
यों एक मन होकर सभी कर्तव्य के पालक बनें।
तो क्या न कीर्ति-वितान चारों ओर भारत के तनें?"

(भारत भारती, पृष्ठ 167)

तथा -

"इन्हें समाज नीच कहता है,
पर है ये भी तो प्राणी।
इनमें भी मन और भाव है
किन्तु नहीं वैसी वाणी।"

(पंचवटी "गुप्तजी" पृष्ठ 16)

बालकृष्ण शर्मा नवीन ने भी समाज की प्राचीन वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया और इस वर्ण व्यवस्था का आधार कर्म को माना, जन्म अथवा जाति को नहीं। नवीन जी ने सभी वर्णों के आदर्शों और कर्तव्यों का विस्तार से निरूपण किया है -

"समाजीय-प्रगति-रथ के जो यहाँ सारथी हैं-
पुण्य श्लोक का गहन जिसकी पुण्यदा भारती है-
वे हैं सु ब्राहमण दृढ़व्रती, धर्मधारी तपस्वी,
योगाभ्यासी, विगत कामा, तत्वदर्शी मनस्वी।"

(उर्मिला महाकाव्य - दशम सर्ग पृष्ठ 18)

इसी प्रकार कवि युगवीर की कविता में ज्ञान का प्रकाश, धर्म, समाज तथा राष्ट्रोद्धार की भावना सर्वत्र दिखाई देती है वे सभी को समानता की दृष्टि से देखते हैं। इसी से मानव अपने स्वरूप को समझेगा और सत्य पथ का प्रणेता बनेगा। जिस तरह गाड़ी में दोनों पहियों का होना जरुरी है एक पहिए से गाड़ी नहीं चल सकती, इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन सभी का मानव समाज में होना जरूरी है ये सभी अपने मानव धर्म का पालन करके मानव समाज को अग्रसर करते हैं।

कवि "युगवीर" जी ने "उपालम्भ और आह्वान" कविता में इन्द्र का आह्वान करके इन्द्र को राष्ट्र पर हो रहे अत्याचारों के संबंध में उलाहना दिया। उन्होंने इन्द्रदेव को महान यशस्वी, पूजनीय कहकर ये उलाहना दिया है कि जब तुम्हें भारतवासी बुलाते थे तो तुम उनकी सहायता के लिए इस पृथ्वी पर आते हो लेकिन अब इस पृथ्वी पर कितनी विपत्तियाँ आ रही हैं सभी आपका आह्वान कर रहे हैं तो भी राष्ट्र पर ध्यान नहीं देते -

"भारत का क्या ध्यान तुम्हें अब तक नहीं आया?
हुआ नहीं क्या ज्ञान, यहाँ दुःख कैसा छाया?
विषयों में या लीन हुए सब धर्म भुलाया?
नहीं रही पर्वाह किसी की, प्रेम नसाया?"

भारत पर सकट के बादल मंडरा रहे हैं भारत परतंत्र है दुष्टों ने असहाय समझकर इस पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया है तथा भारतवासियो द्वारा ही आपस में मतभेद कराकर अपना स्वार्थ सिद्ध करा रहे हैं यहाँ किसी के साथ न्याय नहीं किया जाता। महामना मदनमोहन मालवीय, भगतसिंह, लाला लाजपत राय, गणेशशंकर विद्यार्थी तथा गाँधी जो राष्ट्र का भला करने वाले थे तथा समस्त राष्ट्र को जो प्रिय अहिंसावादी पूजनीय हैं उनके साथ भी न्याय नहीं किया तथा उन्हें जेल भेज दिया। इस भारतवर्ष में जो बड़े-बड़े ऋषियों की संतानें हैं वे सभी भ्रष्ट हो गई है उनमें न क्षात्रतेज है न मर्यादा है उनका स्वाभिमान भी मृतप्राय हो गया है और न प्रण की दृढ़ता है। तपोवन रिक्त पड़े हैं। खुले-आम गौ-वध हो रहा है, हिंसा हो रही है, अत्याचार हो रहे हैं, कोई किसी को रोकने वाला नहीं, देश निर्धन होता जा रहा

है। इस सम्पूर्ण दृश्य को देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो उठता है। हे इन्द्र तुम तब कुछ करने में समर्थ हो फिर भी तुम निर्दयी होकर धर्म का पालन नहीं कर रहे हो -

"हो करके सामर्थ्यवान, क्या देख रहे हो?
क्यों नहिं आते पास? वृथा क्या सोच रहे हो।
धर्म पालना कठिन हुआ, अब देर करोगे -
तो तुम यह सब पाप-भार निज सीस धरोगे॥"

इसी प्रकार राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह दिनकर ने "मेरे नगपति मेरे विशाल" कविता में भी बताया है कि यह देश वीरों, वीरांगनाओं, ऋषियों और संसार प्रख्यात उपदेशकों का रहा है। हिमालय को संबोधित करते हुए उन्होंने लिखा है -

"तू तरुण देश से पूँछ अरे,
गूँजा यह कैसा ध्वंस राग?
अम्बुधि अन्तस्तल बीच छिपी,
यह सुलग रही है कौन आग।"

राष्ट्रकवि श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन जो स्वयं भी स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनिक रहे हैं, उनका व्यक्तित्व भी युगवीर जी की भाँति निर्भीक शौर्य का प्रतीक है उनकी वाणी भी तेज के स्फुल्लिंग उगलती है। आत्मा की वाणी होने के कारण इन कवियों की देशभक्ति की कविताओं में अपूर्व प्रभाव क्षमता है। जब देश का युवक समाज इनको सुनकर हथैली पर अपने प्राण ले घर से निकल पड़ा था तो कवि नवीन ईश्वर पर भी अपनी रोष-दृष्टि करने पर उतारू हो जाते हैं -

"जगपति कहाँ। अरे! सदियों से बहता हुआ राख की ढेरी,
वरन् समता संस्थापन में लग जाती क्यों इतनी देरी
छोड़ आसरा अलख शक्ति का। रे! नर स्वयं जगपति तू है।"

आज राष्ट्र में धार्मिक भावना की प्रवृत्ति लुप्त होती जा रही है और पाप की दुर्गन्ध वातावरण में व्याप्त हो गई है फिर भी-

"धार्मिक का कर्तव्य नहीं क्या धर्म चलाना?
पतितों को अवलम्ब दान कर शीघ्र उठाना।
इससे क्यों फिर विमुख हुए तुम होकर दाना।
किया नहीं उद्धार धर्म का निज मन माना॥"

भारत भूमि तीर्थ भूमि है पूजनीय है। इसके ही प्रताप से इन्द्रपद प्राप्त किया लेकिन फिर भी हे इन्द्र! तुमने इस भारत भूमि को भुला दिया, तुम अत्यन्त शक्तिशाली होकर भी मौन धारण किये हुये हो और राष्ट्र को उत्पात से बचाते नहीं आज लोगों को इन्द्र या ईश्वर का भय नहीं रहा और अंत में -

"इससे आओ शीघ्र यहाँ अब देर न कीजे,
दुष्टों को दे दण्ड, धर्म की रक्षा कीजे।
कीजे ऐसा यत्न, सभी नव जीवन पावें,
बन करके "युगवीर" पूर्व-गौरव प्रकटावें॥"

अत: हम कह सकते हैं कि युगवीर जी, नवीन जी, गुप्तजी और दिनकर ने जिस प्रकार अपनी कविताओं में धर्म तथा राष्ट्र के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है उसी प्रकार हमें भी अपने धर्म तथा देश पर हो रहे अत्याचारों को मिटाना है। अगर हम धार्मिक होकर भी अपने धर्म की रक्षा नहीं कर सकें तो हमारा जीवन व्यर्थ है।

"युगवीर भारती" काव्य पुस्तक के सत्प्रेरणा खण्ड की "जैनी कौन" कविता में पं जुगल किशोर मुख्तार जी ने जैन के स्वरुप का विवेचन किया है। जैनधर्म तथा दर्शन में जाति पाँच स्वीकार की गई है। एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जाति। इसके अलावा अन्य किसी भी जाति का उल्लेख नहीं मिलता। (जैन कुल में जन्म लेकर हम अभिमान में झूल रहे हें और आचरण से शून्य होते जा रहे हैं ऐसे समय में "युगवीर जी" ने कहा कि जो निम्न लिखित आचरणों से मुक्त होगा वही जैनी कहलायेगा)।

"कर्म इन्द्रियों को जीते जो, "जिन" का परम उपासक जो।
हेयाऽदेय - विवेक - युक्त जो, लोक - हितैषी जैनी सो॥

परम अहिंसक, दया - दान में तत्पर, सत्य परायण जो।
धरे शील - संतोष अवंचक, नहीं कृतघ्नी जैनी सो॥"

अर्थात् जिसने कर्मेन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली, जो जिनेन्द्रदेव का परम उपासक, विवेकी, विश्व का हित चाहने वाला तथा जो हिंसा न करने वाला, दयावीर, दानवीर, सत्य-परायण, शील, संतोषी, कृतज्ञ, अपरिग्रही, ईर्ष्या, द्वेष न रखने वाला, सदा ही न्याय मार्ग पर चलने वाला सुख-दुःख में समता रखने वाला ही जैनी है।

वर्तमान की दुर्दशा देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि महावीर के सिद्धांतों को यदि कोई लुप्त कर रहे हैं वो जैनी भाई ही है तथा वे मद्य, मांस, सप्तव्यसन, हिंसा, व्यभिचार, लोभ आदि की पराकाष्ठा पर हैं, आज विचारणीय प्रश्न है कि हम आदिनाथ स्वामी के वंशज कहाँ किधर जा रहे हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है -

"कल क्या थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी।
आओ विचारे आज मिलकर ये समस्यायें सभी॥"

ये हम सभी के आदर्श रहे हैं परन्तु आज स्थिति ही दूसरी है लेकिन प्रतिकूलता में दूसरों को सहायता व परोपकार करने वाला भी जैनी कहलाता है मुख्तार जी ने लिखा है -

"जो अपने प्रतिकूल दूसरों के प्रति उसे न करता जो
सर्वलोक का अग्रिम सेवक, प्रिय कहलाता जैनी सो
पर उपकृति में लीन हुआ भी स्वात्मा नहीं भुलाता जो
युगधर्मी युगवीर प्रवर है, सच्चा धार्मिक जैनी सो।"

सच्चा जैनी अपने न्याय-नीति को कभी नहीं त्यागता, चाहे वह अपने प्राणों को भी न्यौछावर कर सकता है। पं. श्री युगवीर ने "मेरी भावना" में भी इसी तरह की पंक्तियां लिखी हैं -

"कोई बुरा कहे या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे
लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जावे।

अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे॥"

श्री युगवीर ने जैनी कौन है में स्पष्ट किया है-

"नहिं आसक्त परिग्रह में जो, ईर्ष्या-द्रोह न रखता हो।
न्याय-मार्ग को कभी न तजता, सुख-दु:ख में सम जैनी सो।"

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जैन शब्द की महिमा अनुपम है अत: हमें अच्छी तरह सोच - विचार कर उक्त सिद्धांतों और कर्तव्यों को जीवन में उतार कर दूसरों को भी इस ओर प्रेरित करना है तथा धर्म और राष्ट्र के प्रति आदर्श प्रस्तुत करना है।

कवि युगवीर ने कविता "होली है" के माध्यम से देश में हो रहे बाल विवाह, सतीप्रथा, ऊँच-नीच का भेद-भाव, दहेज प्रथा, स्वार्थान्धता, युवक-युवतियों की स्वतंत्रता और स्वैच्छाचारिता पर अकुश, सामाजिक व्यवस्था के क्षेत्र में अस्पृश्यता आदि जो प्रचलित थे उनको उजागर किया है। कवि श्री मुख्तार जी ने लिखा है।

बच्चे ब्याहें, बूढ़े ब्याहें, कन्याओं की होली है।
संख्या बढ़ती विधवाओं की, जिनका राम रखोली है॥
नीति उठी, सत्कर्म उठे औ, चलती बचन बलोली है।
दु:ख -दावानल फैल रहा है, तुमको हँसी ठठोली है॥

तथा -

बेचे, धर्म-धन खावें, ऐसी नीयत डोली है।
भाव शून्य किरिया कर समझें, पाप कालिमा धोली है॥
ऊँच-नीच के भेद-भाव से लुटिया साम्य डुबोली है।
रुढ़ि - भक्ति औ, हठधर्मी से हुआ धर्म बस डोली है॥

राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, गोखले, गाँधीजी आदि ने ऊँच-नीच के भेद-भाव रुढ़िवादिता, सती प्रथा, बाल-

विवाह आदि कुरीतियों को समाप्त करने का प्रयास किया। अस्पृश्यता के उन्मूलन में गाँधीजी का योगदान अविस्मरणीय है।

देश से सत्य, उदारता, पुरुषार्थता, प्रण की दृढ़ता, समता आदि गौण होते जा रहे हैं तथा सभी अपने स्वार्थ में पड़े हुए हैं। सभी मानव बल पराक्रम से हीन होते जा रहे हैं फिर भी किसी को देश, धर्म, दुनियादारी की कोई खबर नहीं है। इसी सें बालकृष्ण शर्मा नवीन ने "रश्मिरेखा" काव्य पुस्तक में "आज है होली का त्यौहार" कविता में कर्मपथ रुपी खाण्डे की धार पर चलने को कहा है उन्होंने लिखा है -

"उनकी क्या होली दीवाली? उनके क्या त्यौहार?
जिनने निज मस्तक पर ओढ़ा जन विप्लव का भार॥
कर्म पथ है खाण्डे की धार॥"

आज भी देश में दहेज प्रथा स्वार्थान्धता, सामाजिक भेदभाव पनप रहा है हम सबको मिल जुलकर इसका उन्मूलन करना है तथा देश को खुशहाल बनाना है।

"ज्ञान गुलाल पास नहीं, श्रद्धा - रंग न समता रोली है।
नहीं प्रेम पिचकारी कर में, केशर - शान्ति न घोली है॥
स्याद्वादी सुमृदंग बजे नहिं, नहीं मधुर रस बोली है।
कैसे पागल बने हो चेतन। कहते "होली होली है॥"

कवि "युगवीर" जी ने "होली होली है" कविता में लिखा है ज्ञान, श्रद्धा, प्रेम, शान्ति, मधुरवाणी जब तक नहीं होगी तब तक चेतन प्राणी आध्यात्म रस का पान नहीं कर सकता। भगवान महावीर के सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्तेय जैसे सिद्धांतों को जब तक मानव अपने हृदय में नहीं लाता, उनका पालन नहीं करता, तब तक अध्यात्म को नहीं समझ सकता। और जब तक ध्यान रूपी अग्नि नहीं जलेगी, कर्मेन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं होगी, पाप समाप्त नहीं होंगे, असत्य का त्याग नहीं करोगे, तब तक सिद्ध "स्वरुप को प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए हम सभी को भगवान

महावीर द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलकर अपनी अनुभूति द्वारा सिद्ध स्वरूप को प्राप्त करना है।"

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि कवि श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार "युगवीर" ने युग की वाणी को अपनी कविता का सुहाग बनाया। युग की इस भावपरक एवं काव्योत्प्रेरक भूमिका में, कवि ने भगवान महावीर के सदृश घोर अंधकार में आत्म-ज्ञान-दीप-बाती को प्रज्जवलित करने वाले, युग-द्रष्टा का संरक्षण एवं संवर्द्धक आसव प्राप्त किया तथा कवि की काव्य - कलिकाएँ अपने पल्लव प्रस्फुटित करने लगी और जीवन की उत्कृष्टता राष्ट्रीय पथ पर अग्रसर हो गई।

युगवीर जी की कविता भारती का श्रृंगार है। इसमें माधुर्य का निवेश, प्रसाद की स्निग्धता, पदों की सरस शय्या, अर्थ का सौष्ठव एवं अलंकारों का मंजुल प्रयोग हुआ है। इनकी कविताओं में भारतीय समाज का सच्चा स्वरूप अंकित है। चुने हुए थोड़े शब्दों में भावों को अभिव्यंजित करना, इनकी कविता का विशेष गुण है। काव्यत्व की दृष्टि से प्रसाद, माधुर्य गुणों का समावेश तो हुआ ही है पर उक्तियों में ओजगुण भी विद्यमान है। मानव के विकार और उसकी विभिन्न चित्रवृतियों का अपनी कविताओं, में कवि "युगवीर" ने भावात्मक शैली में हृदय की अनुभूतियों द्वारा सरल रूप में अभिव्यक्त किया है।

"युगवीर" जी का काव्य राष्ट्रीय चेतना से सम्पृक्त काव्य है जिसमें प्राचीन मूल्य संपदा, स्वच्छ राजनीति, मानव कल्याण, धर्म, आदर्श, समाजवादी, व्यवस्था आदि की अमिट चित्र छवियाँ अंकित हैं, उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से राष्ट्रीय एकता के खतरों के सावधानीपूर्वक समाज तथा राष्ट्र के समक्ष रखा, तथा विश्वबन्धुता, कृतज्ञता, न्यायप्रियता, सदाचार, सहनशीलता का सुन्दर चित्रण किया और संसार में सभी जीवों के प्रति मित्रता रखने के लिए प्रेरित किया। आज देश में समाज में एकता की जरुरत है इसलिए हम पहिले मनुष्य बनें और मानवता का विकास करें।

युगवीर भारती का संस्कृत वाग्विलास खण्ड-समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. विमल कुमार जैन, जयपुर

अन्धकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है।
मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है॥

परतंत्र भारत के उन्मुक्त मनीषी पंडित जुगलकिशोर जी 'मुख्तार' ने अपने साहित्य का सृजन ऐसे समय से प्रारम्भ किया, जब वह संघर्षों के जाल में उलझे हुए थे। उनका जीवन विषमताओं से भरा रहा है।

झंझावातों में समतामूलक जीवन के साक्षी, 'सादा जीवन उच्च विचार' की प्रतिमूर्ति, पं. जुगलकिशोर जी ने अपना सर्वस्व माँ जिनवाणी की सेवा में समर्पित कर दिया और जीवन के अन्तिम चरण तक अहर्निश सरस्वती की सेवा में रत रहे। साहित्य का कोई भी क्षेत्र उनसे अछूता नहीं रहा। वह चाहे गद्य का क्षेत्र हो या पद्य का, निबन्ध का हो या संपादन का, पत्रकारिता का हो या भाष्यकार का, समीक्षा का हो या आलोचना का; प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने महारथ हासिल की थी। मौलिक लेखन के रूप में हिन्दी और संस्कृत के क्षेत्र में उनका समान अधिकार था। यही कारण है कि उन्होंने दोनों ही भाषाओं में साहित्य सृजन किया है। यद्यपि उनकी शिक्षा उर्दू-फारसी मे हुई थी।[1]

प्रतिभा-सम्पन्न पंडित मुख्तार जी ने अपनी पैनी लेखनी का प्रयोग जैन साहित्य के निर्माण में ही किया। बहुमुखी प्रतिभा के धनी, ज्ञान के सागर पंडित जी का लेखन कार्य विद्यालयी अवस्था से ही प्रारम्भ हो गया था। उनकी एक रचना 8 मई, 1896 को "जैन गजट" में प्रकाशित हुई थी। उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा समाज में व्याप्त अन्धविश्वासों पर करारी चोट की तथा तथाकथित भट्टारकों की परीक्षा 'ग्रन्थ परीक्षा' नामक ग्रन्थ ने तो समाज में खलबली मचा दी थी पर उनकी मान्यताओं का खण्डन करने का साहस

कोई भी न जुटा सका। इस सम्बन्ध में पं. नाथूराम जी 'प्रेमी' का निम्न कथन उल्लेखनीय है, वे लिखते हैं -

"मैं नहीं जानता कि पिछले कई सौ वर्षों में किसी भी जैन विद्वान् ने इस प्रकार का समालोचनात्मक ग्रन्थ इतने परिश्रम से लिखा होगा और यह बात तो बिना किसी हिचकिचाहट के कही जा सकती है कि इस प्रकार के परीक्षा लेख जैन साहित्य में सबसे पहिले हैं।"[२]

मुख्तार साहब का व्यक्तित्व एक कर्मयोगी का व्यक्तित्व था। एक बार पंडित जी अपने अनन्य मित्र पं. नाथूराम जी 'प्रेमी' के घर गये, उनका बच्चा हेमचन्द्र अत्यधिक चंचल प्रवृत्ति का था। एक दिन उसके चाचा लालटेन साफ कर रहे थे कि टूटी चिमनी उनके हाथ में चुभ गई, जिससे वे व्याकुल हो उठे और सिसकने लगे। हेमचन्द को उनका सिसकना अच्छा नहीं लगा। मुख्तार साहब यह सब घटना देख रहे थे। अतः इस घटना से प्रभावित होकर मनोरंजनार्थ उन्होंने एक पद्य बनाया और चाची जी को सुनाने लगे -

काका तो चिमनी से डरत फिरत हैं
काट लिया चिमनी ने "सी-सी" करत हैं
अब नहीं छुयेंगे ऐसौ कहत हैं
देखो जी काकी, ये वीर बनत हैं ॥[३]

मुख्तार साहब के साहित्य में हमें बाल मनोविज्ञान के दर्शन होते हैं। वे सर्वदा कर्त्तव्य के दायित्व में बंधकर कठोर से कठोर कार्य करने को उद्यत रहते थे। संक्षेप में कहें तो मुख्तार साहब सरस्वती के ऐसे वरद् पुत्र हैं जिन्होंने लेखन, सम्पादन और कवित्व द्वारा माँ भारती का भण्डार समृद्ध किया है।

कविता भावों की विशेष उद्बोधिका होती है, जो मानव के अन्तस को जागृत करती है। मुख्तार साहब की कविता भारती का नवोदित शृंगार है। इसमें माधुर्य की मधुरता प्रसाद की स्निग्धता, पदों की सरसता, अर्थ सौष्ठव, अलंकारों का मंजुल प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। इनकी कविताओं व स्तोत्रों में कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष अत्यधिक मुखर हुआ है। सच्चे मायने में मुख्तार साहब एक सहृदय कवि हैं। उनकी काव्य रचनाओं का संग्रह "युगवीर

भारती" में संकलित है। भाषा की दृष्टि से उन्हें संस्कृत और हिन्दी दो खण्डों में विभक्त किया जा सकता है।

"संस्कृत का वाग्विलास खण्ड" मुख्य रूप से मुख्तार साहब की संस्कृत भाषा में निबद्ध रचनायें हैं, जिनकी संख्या 10 (दस) है। वीरजिन स्तवन नामक रचना में - 5, समन्तभद्र स्तोत्र में - 11, अमृतचन्द्रसूरि स्तुति में - 2, मदीयाद्रव्य पूजा में - 4, जैन आदर्श में - 10 तथा अनेकान्त जयघोष, स्तुतिविद्याप्रशंसा, सार्थक - जीवन, लोक में सुखी व वेश्यानृत्य स्तोत्र में - 1-1 (एक-एक) श्लोक द्वारा कवि ने अपने भावों को व्यक्तकर देववाणी की सेवा की है। इस प्रकार 10 रचनाओं में कुल 37 छंद हैं।

समन्तभद्र स्तोत्र में मुख्तार साहब ने समन्तभद्रस्वामी को अपना गुरु मानकर स्तवन किया है तथा उन्हें भगवान् महावीर का श्रेष्ठ भक्त बतलाया है।

श्री वर्द्धमान-वर भक्त-सुकर्मयोगी,
सद्बोध-चारुचरिताऽनघवाक्-स्वरूपी।
स्याद्वाद-तीर्थजल-पूत-समस्त-गात्रः
जीयात्स पूज्य-गुरुदेव-समन्तभद्रः ॥[४]

आचार्य समन्तभद्रस्वामी ने स्वयं वर्द्धमान-तीर्थंकर को नमस्कार किया है। यथा-

नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥[५]

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि मुख्तार जी ने उक्त मंगलाचरण श्लोक का आधार लेकर ही अपने उक्त काव्य को निर्मित किया है, क्योंकि उसमें रत्नकरण्ड श्रावकाचार के मंगलाचरण जैसी ही समानतायें दृष्टिगोचर होती हैं। इतना ही नहीं वे अपने गुरु समन्तभद्र को दैवज्ञ, मांत्रिक, तांत्रिक से उत्कृष्ट मूर्ण सारस्वत वाग्सिद्धि प्राप्त और महावाद विजेताओं का अधीश्वर मानते हैं तथा कहते हैं कि सिद्ध सारस्वत होने के कारण जन सामान्य आपकी

कृतियों का अध्ययन नहीं करता, किन्तु आपने लोक जीवन के मर्म को प्रस्तुत किया है। इसी कारण जनसमूह आपका अध्ययन और मनन कर उद्बोध प्राप्त करता है।

प्रस्तुत पद्य में मुख्तार जी के कविहृदय ने अपने आराध्य को लोक जीवन का नायक सिद्ध कर सर्वोदय सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की है -

दैवज्ञ-मान्त्रिक-भिषग्वर-तान्त्रिकोयः,
सारस्वतं सकल-सिद्धि-गतं च यस्य।
मान्यः कविर्गमक-वाग्मि-शिरोमणि स,
वादीश्वरो जयति धीरसमन्तभद्रः॥[6]

कवि ने पौराणिक आख्यानों का अवलम्बन लेकर अपने आराध्य समन्तभद्राचार्य का महत्त्व प्रतिपादित किया है। वे कहते हैं कि इस कलिकाल में जिन्होंने अपनी भक्ति की शक्ति के प्रभाव से चन्द्रप्रभ भगवान् को प्रकट कर राजा शिवकोटि और उनके भाई शिवायन को प्रभावित किया वे समन्तभद्र स्वामी कुमार्ग से हमारी रक्षा करें-

येन प्रणीतमखिलं जिनशासनं च,
काले कलौ प्रकटितं जिनचन्द्र बिम्बम्।
प्राभावि भूपशिवकोटि-शिवायनं वै,
स्वामी स पातु यतिराज-समन्तभद्रः॥[7]

मुख्तार साहब की विलक्षण प्रतिभा का रूप प्रस्तुत काव्य में देखा जा सकता है, जिसमें उन्होंने समन्तभद्र स्वामी की कृतियों का समावेश कर पवित्र मन की इच्छा प्रकट की है-

देवागमादि-कृतयः प्रभवन्ति यस्य,
यासां समाश्रयणतः प्रतिबोध माप्ताः।
पात्रादिकेसरि-समाः बहवो बुधाः स,
चेतः पुनातु वचनर्द्धि-समन्तभद्रः॥[8]

प्रस्तुत स्तोत्र में कवि अपने गुरु के प्रभाव को तिरोहित न कर सका, उनके प्रभाव से प्रतिवादी मूक हो गये। अन्त में उसने शक्ति सरस्वती सिद्धि-समृद्धि प्राप्ति हेतु कामना की है।

> यद्ध्यानतः स्फुरति शक्तिरनेकरुपा,
> विघ्नाः प्रयान्ति विलयं सुफलन्ति कामाः।
> मोहं त्यजन्ति मनुजाः स्वहितेऽनुरक्तः,
> भद्रं प्रयच्छतु मुनीन्द्र-समन्तभद्रः॥[९]

समन्तभद्र स्तोत्र की रचना वसंततिलका छंद व शान्त रस में की गई है। शब्दालंकारों का प्रयोग भी हुआ है। यथा - दूसरे तीसरे छन्द में क्रमशः अनुप्रास का प्रयोग देखिए-

> सारस्वतं सकल-सिद्धि-गतं च यस्य।
> सर्वज्ञ-शासन-परीक्षण-लब्धकार्तिर-[१०]

मुख्तार साहब की 'मदीया द्रव्यपूजा' एक भावप्रधान रचना है, जिसमें वीतरागी भगवान के समक्ष आत्मनिवेदन किया गया है कि प्रभो जल-चंदनादि द्रव्य मुझे शुद्ध प्रतीत नहीं होते हैं, अतः मैं किस प्रकार अष्ट द्रव्यों से आपकी आराधना करुँ, क्योंकि आप तो अष्टादश दोषों से रहित हैं, अतः कोई भी द्रव्य आपको इच्छित नहीं है-

> नीरं कच्छप-मीन-भेक-कलितं, तज्जन्म-मृत्याकुलम्
> वत्सोच्छिष्टमिदं पयश्च, कुसुमं घ्रातं सदा षट्पदैः।
> मिष्टान्नं च फलं च नाऽत्र घटितं यन्मक्षिकाऽस्पर्शितम्
> तत्किं देव! समर्पयेऽहमिति मच्चित्तं तु दोलायते॥[११]

प्रस्तुत रचना में मात्र चार पद्य है। उनमें शब्दों की गुम्फना और भावों की समायोजना से यह एक उच्चकोटि की रचना बन गई है।

'वीर जिन स्तवन' में छन्दों की संख्या मात्र - 5 है, जिसमें कवि ने प्रमुख रुप से मोहादि जन्य कर्मों को जीतने वाले, एकान्त का खण्डन कर अनेकान्त का स्वरुप प्रतिपादित करने वाले वीर जिन की उपासन की गई है-

मोहादि-जन्य-दोषान्यः सर्वाञ्जित्वा जिनेश्वरः।
वीतरागश्च सर्वज्ञो जातः शस्ता नमामि तम्॥[१२]

मुख्तार साहब एक चिन्तनशील, स्वाध्यायी, एवं अनुभवी विद्वान् थे। उनके चिन्तन की धारा उनकी रचनाओं परिलक्षित होती है। यदि यह कहा जाये की बीसवीं शताब्दी में जैन वाङ्मय को पुष्पित और पल्लवित करने का श्रेय आपको जाता है, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। यही कारण है कि आपको बाबू छोटेलाल जी द्वारा वीरशासन महोत्सव के अवसर पर कलकत्ते में "वाङ्मयाचार्य" की उपाधि से सम्मानित किया गया।[१३]

मुख्तार साहब की विशेषता है कि कम शब्दों में अधिक कह देना। निम्न श्लोक में उन्होंने आचार्य अमृतचन्द्र सूरि को अनेक विशेषणों से युक्त एवं अध्यात्म वेत्ताओं पर शासन करने वाला कहा है-

आगम-हृदय-ग्राही मर्म-ग्राही च विश्व-तत्त्वानाम्।
यो मद-मोह-विमुक्तो नय-कुशलो जयति स सुधेन्दुः॥[१४]

मुख्तार साहब की संस्कृत रचनायें सरल संस्कृत भाषा में हैं। जिससे सामान्यजन भी उनका भाव ग्रहण कर रसास्वादन कर सकता है। उसमें व्याकरण की क्लिष्टता दिखाई नहीं देती। उनकी रचनाओं में पांडित्य प्रदर्शन नहीं बल्कि यथार्थ स्थिति को दर्शाया गया है। उन्होंने शान्तरस का ही बहुधा प्रयोग किया है।

जैन आदर्श नामक रचना में 10 छन्दों द्वारा मुख्य रूप से जैनियों के गुणों का दिग्दर्शन कराया गया है। अतः हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि हम अपने गुण-दोषों का आत्मावलोचन करें।

जैनी कैसा हो देखिये-

अनेकान्ती भवेज्जैनः स्याद्वादन-कलान्वितः।
विरोधाऽनिष्ट-विध्वंसे समर्थः समता-युतः॥
दया-दान-परो जैनो जैनः सत्य-परायणः।
सुशीलोऽवंचको जैनः शान्ति-सन्तोष-धारकः॥

परिग्रहेष्वनासक्तो नेर्षालुर्नैव द्रोहवान्।
न्याय-मार्गाऽच्युतो जैनः समश्च सुख-दुःखयो॥[१५]

अर्थात् जैनी अनेकान्त स्याद्वादवादी, विरोध को समाप्त करने वाला, समता परिणामी, दया-दान से युक्त, सत्यपरायण सुशील और सन्तोषवृत्ति वाला होता है। सुख-दुःख में समताभावी, न्यायमार्गी, परिग्रह से अनासक्त भाव धारण करता है। राग-द्वेष और मोह से पराङ्मुख एवं स्वाध्यायी जैनी के प्रमुख गुण हैं।

मुख्तार साहब की 'जैन आदर्श' संस्कृत रचना के पद्य उनकी राष्ट्रीय कविता 'मेरी भावना' से भी समानता रखते हैं -

मेरी भावना का छन्द-

जिसने राग-द्वेष-कामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया॥[१६]

साम्य-जैन आदर्श का पद्य-

राग-द्वेषाऽवशी जैनो जैनो मोहपराङ्मुखः।
स्वात्म-ध्यानोन्मुखो जैनो, जैनो रोष-विवर्जितः॥[१७]

मेरी भावना का छन्द-

विषयों की आशा नहिं जिनके साम्यभावधन रखते हैं।
निज-पर के हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं॥[१८]

साम्य जैन आदर्श रचना से-

कर्मेन्द्रिय-जयी जैनो, जैनो लोकहिते रतः।
जिनस्योपासको जैनो, हेयाऽऽदेय-विवेक-युक्॥[१९]

मुख्तार साहब की रचना चाहे संस्कृत की हो या हिन्दी की, उन्होंने कोमलकान्त पदावलि का ही प्रयोग किया है, यही कारण है कि मुख्तार साहब के भावों को हृदयगंम करने में किसी को भी कठिनाई नहीं होती।

हिन्दी भाषा में निबद्ध "मेरी भावना" उनकी कालजयी रचना है। जिसमें राष्ट्रीयता, सामाजिकता, धार्मिकता की भावना कूट-कूट कर भरी है, सर्वत्र बड़े आदर के साथ इसका पाठ किया जाता है।

संस्कृत वाग्विलास खण्ड की 'अनेकान्त-जयघोष' स्तुतिविद्या प्रशंसा, सार्थक जीवन, लोक में सुखी तथा वेश्यानृत्य स्तोत्र एक-एक छन्द की रचनाएँ हैं, किन्तु नामानुरूप प्रथम छंद में परमागम के बीजभूत अनेकान्त का जयघोष किया गया है। समन्तभद्र की स्तुति विद्या का गुणानुवाद और उसकी महत्ता प्रतिपादित कर कवि ने अपने भावों को व्यक्त किया है। इसी प्रकार जीवन की सार्थकता व सुखी जीवन के लिये त्याग एवं ममत्व के परिहार को आवश्यक कहकर आत्मशुद्धि की ओर प्रेरित किया है, यही सुखी जीवन का मार्ग भी है-

परिग्रहं ग्रहं मत्वा नाऽत्यासक्तिं करोति यः।
त्यागेन शुद्धि-सम्पन्नः सन्तोषी भुवने सुखी॥[२०]

निःसन्देह पं जुगलकिशोर मुख्तार एक सफल कवि एवं संस्कृत रचनाकार के रूप में अमर रहेंगे। उनका जीवन स्वाध्यायी तपस्वी का था। जिन्होंने निष्पक्षता पूर्वक सामाजिक रुढ़ियों, अन्धविश्वासों, शिथिलाचारों एवं विकृतियों का निर्भीकता के साथ मुकाबला किया। श्रम एवं अध्यवसाय पंडित जी के विशेष गुण थे। उन जैसा सरस्वती उपासक क्वचित् ही दृष्टिगोचर हो? सही मायने में उनका मस्तिष्क ज्ञानी का, हृदय योगी का और शरीर कृषक का था वे कृषक की भांति श्रमशील, मस्तिष्क ज्ञानी के समान विद्वतापूर्ण तथा हृदय योगी की भांति निष्कपट स्वच्छ व गंगा जल की भाँति निर्मल था। उन्होंने ज्ञानज्योति प्रज्जवलित कर श्रुत की ऐसी आराधना की, जिससे ज्ञानियों ने ज्ञान, त्यागियों ने त्याग और लोकसेवा करने वाले ने सेवा का उच्चादर्श प्राप्त किया।[२१]

डा. ज्योति प्रसाद जी के शब्दों में- "मुख्तार साहब साहित्य के भीष्मपितामह थे।"[२२]

साहित्य के चितेरे, कुशलशिल्पी मुख्तार साहब को प्राप्तकर यह बीसवीं शताब्दी निश्चित ही गर्व का अनुभव करती होगी। ऐसे कुशल साहित्यकार ने केवल जैन वाङ्मय की ही नहीं, अपितु प्रत्येक क्षेत्र में महारथ हासिल की। जैनजगत् व साहित्यजगत् आपके इस उपकार के लिये सदैव ऋणी रहेगा।

सन्दर्भ

१. 'पं जुगलकिशोर व्यक्तित्व और कृर्तत्व' पृ. 06
डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, प्र 1968.
२. पं जुगलकिशोर व्यक्तित्व और कर्त्तत्व - डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, प्र. 1968
पृ. सं. - 16.
३ वही, पृ. सं 28-29.
४ युगवीर भारती-समन्तभद्रस्तोत्र, छंद-1, पृ सं 103.
५. रत्नकरण्ड श्रावकाचार-आ समन्तभद्र - श्लोक - 1, पृ. सं 1
६. युगवीर भारती, समन्तभद्र स्तोत्र, छंद - 2 पृ. सं - 103
७. वही, छंद-5, पृ. सं - 104
८. वही, छंद-6, पृ. सं. - 105
९ युगवीर भारती, समन्तभद्र स्तोत्र, छद-10, पृ. सं. - 106.
१०. वही, छंद-2, 3
११. वही, मदीया द्रव्य पूजा, छंद-1, पृ. स. - 109.
१२ युगवीर भारती, वीर जिन स्तवन - श्लोक - 1 पृ सं. 101.
१३. पं. जुगल किशोर व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री पृ. सं. 26
१४. युगवीर भारती, अमृतचन्द्र सूरि स्तुति श्लोक-1, पृ. सं. - 108
१५. वही, जैन आदर्श श्लोक 2, 3, 4 पृ. सं. - 110.
१६. मेरी भावना - पं जुगलकिशोर 'मुख्तार' कृत छन्द - 1.
१७. युगवीर भारती, जैन आदर्श - छंद - 6, पृ. सं - 110
१८. मेरी भावना - पं. जुगलकिशोर 'मुख्तार' कृत
१९. युगवीर भारती, जैन आदर्श छंद - 1 पृ. सं. 110
२०. युगवीर भारती, लोक में सुखी - छंद - 1, पृ सं. - 112
२१. पं. जुगलकिशोर व्यक्तित्व और कर्तृत्व पृ. सं. 79
२२. वही पृ. सं. 80.

'मीन-संवाद' बनाम मानवधर्म

डॉ. कमलेश कुमार जैन, वाराणसी

मानव-जीवन किंवा प्राणिमात्र के लिये वायु के पश्चात् जल का ही महत्त्व है। जल के अभाव में मानव-जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अत: जल ही जीवन है, ऐसा कहा जाता है।

जल और मीन अर्थात् मछली का निकट का सम्बन्ध है। मछली जल के बिना नहीं रह सकती है और मनुष्य भी जल के बिना नहीं रह सकता है। अत: दोनों के लिये जल का विशेष महत्त्व है। मछली का जल से निकट का सम्बन्ध होने के कारण मनुष्य भी उससे जुड़ गया है। मछली के विविध नामों में उसका एक नाम है मीन।[1] इस मीन के नाम पर अनेक लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं जिनमें, जल में मीन प्यासी, 'मीन-मेख निकालना', 'मीनकेतन' (कामदेव का नाम)[2], 'मीन भखा सो सब भखा, बचो न एकऊ मांस', 'मछली जैसा तड़फना', 'बडी मछली द्वारा छोटी मछली को निगलना' आदि प्रमुख हैं। ये सभी लोकोक्तियाँ या नाम मछली की किसी विशेषता की ओर संकेत करते हैं।

मछली एक अत्यन्त उपयोगी जलचर प्राणी है। यह पानी में पाई जाने वाली गन्दगी को उदरस्थ कर किसी अपेक्षा से जल को स्वच्छ बनाता है। अन्य जलचरों की अपेक्षा जल में मछली सर्वाधिक और सर्वत्र पाई जाती है। जब से कुछ लोगों ने उसको उदरपूर्ति का साधन बनाया है तब से वे लोग उसके अकारण दुश्मन बन गये हैं। मछली एक अत्यन्त साधारण जलचर होने से मनुष्य का कुछ भी नुकसान नहीं करती है, अत: उसका वध करना उचित नहीं है। जहाँ तक उदरपूर्ति का प्रश्न है तो संसार में ऐसे अनेक खाद्य पदार्थ उपलब्ध हैं, जिनसे उदरपूर्ति की जा सकती है। फिर भी लोग अपनी जिह्वा-लिप्सा के कारण उसका वधकर अपने उदर की पूर्ति करते हैं, जिससे मनुष्य की अन्यायी प्रवृत्ति का ज्ञान होता है। चूंकि मछली दीन-हीन है, अत: मनुष्य

उसकी विवशता का लाभ उठाकर उसको मार डालता है और उसको उदरस्थ कर लेता है।

मीन या मछली की इसी विवशता को लक्ष्य में रखकर प्राच्यविद्यामहार्णव, इतिहासज्ञ पं. जुगलकिशोर मुख्तार ने 'मीन-संवाद' नाम से एक कविता लिखी है, जिसमें मीन के मुख से उसकी बेवशी कहलवाई गई है। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने इसे मीन का आत्म-निवेदन नाम दिया है, जो यथार्थ है। वस्तुतः इस कविता में अन्योक्ति के माध्यम से सज्जन या निर्बल व्यक्ति के ऊपर ढाये गये कहर का रेखाङ्कन किया गया है। 'मीन-संवाद' नामक इस कविता में मीन (मछली) ने अपने ऊपर ढाये गये अत्याचार का निवेदन किया है। यद्यपि मीन बेजुवान प्राणी है, अतः उसके द्वारा कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं है तथापि 'जहाँ न जाये रवि वहाँ जाये कवि' वाली लोकोक्ति को सार्थक करते हुये आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार ने मीन की पीड़ा को आत्मसात करते हुए मीन के मुख से निवेदन कराया है। पर दुःखकातर व्यक्ति के द्वारा ऐसा होना स्वाभाविक है। 'क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्' अथवा 'दीन-दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे' की भावना को प्रकट करने वाले मुख्तार सा. द्वारा 'जैन-सम्बोधन', 'समाज सम्बोधन' जैसे जन सामान्य सम्बोधनों के साथ 'वर-सम्बोधन', 'विधवा सम्बोधन' और 'धनिक-सम्बोधन' जैसे उद्बोधनों को प्रस्तुत किया गया है, जिनसे उन-उनके कर्तव्यों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

इस क्रममें उन्होंने बकरे जैसे मूक प्राणी को भी सम्बोधित किया है और 'मीन-संवाद' के माध्यम से मछली की विवशता को प्रकट किया है। मत्स्य की पीड़ा को समझना उनके हृदय की करुणा का विस्तार है। निश्चित ही उन्होंने समाज में रहकर जो देखा, जो सुना और जो अनुभव किया, वही उनकी तेजस्विनी लेखनी से कागज पर सिमट गया। आदरणीय मुख्तार सा. ने उन बुद्धिजीवी लोगों के अन्तस् को झकझोरने का प्रयास किया है, जो करुणावाद के गीत गाते हैं, किन्तु मछली जैसे प्राणियों पर निर्दयतापूर्वक जुल्म ढाकर उनको उदरस्थ करने से नहीं चूकते हैं।

'मीन-संवाद' के अन्तर्गत प्रकट विचारों में मुख्तार सा. कहते हैं कि मीन की परिस्थिति बड़ी कारुणिक है। मीन को किसी धीवर ने अपने जाल में फँसा लिया है। कवि हृदय मीन से प्रश्न करता है कि - हे मीन! इस समय इस जाल में तूँ फँसा हुआ क्या सोच रहा है? क्या तू देखता नहीं है कि तेरी मृत्यु का समय निकट है। अब तू ऐसा फँसा है कि इससे बचने का कोई उपाय दिखलाई नहीं दे रहा है, अतः मृत्यु अवश्यम्भावी है।

किसी भी सज्जन व्यक्ति द्वारा दु:ख में पड़े प्राणी से हमदर्दी जताने पर दु:खी व्यक्ति अपना दर्द दूसरों को सुनाकर अपनी व्यथा प्रकट करता है उसी प्रकार मत्स्य यह जानते हुये भी कि अब मृत्यु के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है, फिर भी अन्यायी व्यक्ति को अन्यायी के रूप में लोग जान सकें। देख सकें और दूसरे लोग उससे सावधान रहें, इसलिये अपनी कथा व्यथा को प्रकट करते हुए मत्स्य कहता है कि - मैं केवल यही सोच रहा हूँ कि मेरा अपराध क्या है? यदि सचमुच में मुझसे कोई अपराध बन गया हो तो बेशक मुझे उसका दण्ड मिलना ही चाहिये, किन्तु जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है वहाँ तक बहुत सोचने पर भी मुझे अपना कोई अपराध दिखलाई नहीं देता है।

अपराध के कारणों पर विचार करते हुये मत्स्य सोचता है कि सामान्यतया शास्त्रों में पाँच प्रकार के पापों का उल्लेख किया गया है - हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह। सो इनमें से मैंने एक भी पाप नहीं किया है, जिससे किसी मानव मात्र के प्रति मेरा अपराध बन गया हो और यह धीवर वेशधारी मनुष्य मुझे अपने जाल में फँसाकर मेरा बध करके मुझे मेरे अपराध का दण्ड देना चाहता हो। किन्तु मैं मानव मात्र को कष्ट नहीं देता हूँ। इसलिये हिंसारूप पाप करने का कोई प्रश्न ही नहीं है। धन-धान्य मैं किसी का चुराता नहीं हूँ, जिससे चौर्य कर्म का अपराधी नहीं हूँ। मैंने कभी असत्य/झूठ नहीं बोला है, बोल भी नहीं सकता हूँ। यदि कोई यह कहे कि इन पापों की बात छोड़ो, परन्तु कभी किसी स्त्री को बुरी निगाह/वासना की दृष्टि से तो देखा होगा। सो प्रभो! पर-वनिता पर मेरी आज तक दृष्टि नहीं गई है। अब बात रह जाती है परिग्रह पाप की। सो मुझे जहाँ तक ज्ञात है, मैंने कभी किसी वस्तु पर अपना अधिकार नहीं जताया है। मानवगत ईर्ष्या या घृणा रूप कोई खोटी प्रवृत्ति भी मुझमें नहीं

है। मुझे जहाँ तक स्मरण है मैंने किसी को भयभीत भी नहीं किया है। मैं तो अपनी स्वल्पतर विभूति में ही संतुष्ट था।

शस्त्रादि रखने की तो बात छोड़ो, मैंने कभी किसी मानव मात्र का विरोध भी नहीं किया है। मैं दीन-अनाथ नदी में स्वच्छन्द होकर क्रीड़ा कर रहा था/अपना मन बहला रहा था। किन्तु धीवर वेशधारी मनुष्य ने मुझ निरपराधी को व्यर्थ ही जाल में फँसाकर रोक लिया है। यदि नदी में मेरा इस प्रकार उछलना-कूँदना उसे अच्छा नहीं लगता था तो मुझे जाल में फँसा लिया, इतना ही पर्याप्त था, किन्तु हे धीवरराज! तुमने मुझे जाल में फँसाकर पहले जल से बाहर खींचा, फिर बाहर आ जाने पर भी मुझे घसीटकर किनारे से दूर ले गये। मैं कहीं उछलकर या जाल तोड़कर बन्धन-मुक्त न हो जाऊँ, इसीलिये तुमने मुझे जमीन पर दे मारा जैसे मैं कोई चेतन प्राणी न होकर किसी काष्ठ या पाषाण रूप अचेतन होऊँ और मुझे जमीन पर घसीटने तथा पडकने से कोई दुःख-दर्द न हो रहा हो।

मैंने मानवधर्म के सम्बन्ध में सुना था कि अपराधी यदि दीन-हीन है तो वह वहाँ दण्ड नहीं पाता है। वहाँ अविरोधियों से युद्ध नहीं होता है और वे वध के योग्य भी नहीं होते हैं। मानव धर्म के सम्बन्ध में सुना था कि शूरवीर मनुष्य दुर्बलों की रक्षा करते हैं। वे शस्त्रहीन पर शस्त्र नहीं उठाते है, किन्तु जब मैं यहाँ का विपरीत दृश्य देखता हूँ तो ये सारी बातें मुझे झूंठी लगती है। क्योंकि जैसे सौ चूहे खाकर बिल्ली हज करने जाती है, वैसे ही यहाँ हो रहा है। देश में अब धर्म नहीं रहा है। सारी पृथ्वी वीर-विहीन हो गई है अथवा स्वार्थ के वशीभूत होकर मनुष्य कार्य कर रहा है। जो लोग बेगार (जबर्दस्ती निःशुल्क सेवा लेने) को निन्दनीय मानते थे, वे ही अन्यायी ऐसे जघन्य कार्य कर रहे हैं, यह देखकर आश्चर्य होता है।

मछली पर होते हुये अत्याचारों अथवा उसकी दीन-हीनता का छलपूर्वक लाभ उठाने वालों को सम्बोधित करने के ब्याज से भारतदेश को पराधीन करके भारतीयों पर छल-कपट पूर्वक अत्याचार कर रहे अंग्रेज-शासकों के प्रति अपनी मनोव्यथा को प्रकट करते हुये श्री मुख्तार सा. कहते हैं कि - हिंसा का व्रत लेकर जो लोग दूसरों को पराधीन करके सता रहे हैं भला वे

लोग कभी स्वाधीन हो सकेंगे? अथवा अपना राज्य वापिस प्राप्त कर सकेंगे? उन लोगों का कभी भी भला नहीं हो सकता है, जो लोग दूसरों का बुरा विचारते हैं। अथवा अपना राज्य वापिस प्राप्तकर सकेंगे? उन लोगों का कभी भी भला नहीं हो सकता है, जो लोग पाप से भयभीत नहीं हैं, वे ही हमेशा ऐसे दया-विहीन कार्य करते हैं।

जाल में फँसा हुआ 'मीन' चिन्तन करता है कि ऐसे निन्दनीय और विवेकहीन कार्य करने वाले मनुष्य के सन्दर्भ में क्या करें? कुछ कहा नहीं जाता है। इस समय प्राण कण्ठ में हैं, बोल नहीं सकता हूँ। थोड़ी देर में छुरी चलेगी और मैं मर जाऊँगा, किन्तु इससे यह बात निश्चित हो गई कि जो लोग स्वार्थ में आकण्ठ डूबे हैं उनके मन में दीन-हीन प्राणियों के प्रति कभी भी दया जाग्रत नहीं हो सकती है। इस प्रकार दीन-हीन मीन की दिव्य भाषा को सुनकर मैं अन्याय का विरोध न कर सकने वाली अपनी शक्ति को धिक्कारने लगा और मन ही मन शोकग्रस्त हो यों चिन्तन करने लगा कि किस प्रकार इस मीन को बन्धन-मुक्त कर दूँ। किन्तु तभी मीन ने अन्तिम साँस ली और मैं खड़ा देंखता रहा। बन्धन ग्रस्त मीन पर हुए इस अत्याचार को देखकर आकाश में एक ध्वनि गूँज गई कि बलवान व्यक्ति द्वारा निर्बल रक्षा करना रूप जो मानव धर्म है वह अब ससार में नहीं रहा।

इस प्रकार मुख्तार सा. अपनी 'मीन-संवाद' नामक इस कविता के माध्यम से यह संदेश देना चाहते हैं कि मनुष्य को बलवान् होकर दीन-हीन व्यक्ति पर अत्याचार नहीं करना चाहिये। क्योंकि किसी भी प्राणी को न सताना ही मानव-धर्म है।

सन्दर्भ

१ पृथुरोमा झषो मत्स्यो मीनो वैसारिणोडण्डजः।
विसारः शकली चाथ गण्डकः शकुलार्भकः॥
– अमरकोष 1.10.17

२. अमरकोष 1 1.25
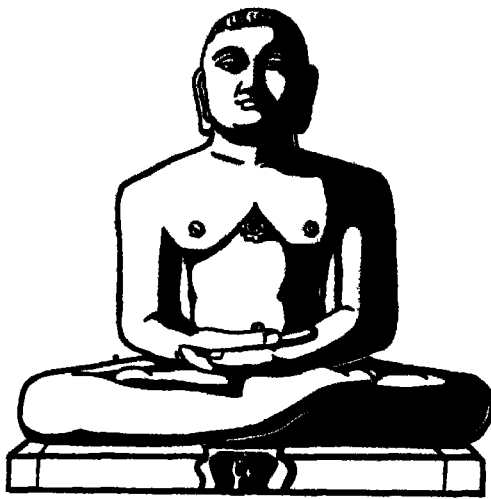
तृतीय खण्ड

कृतित्व
साहित्य
समीक्षा

कृतित्व : साहित्य - समीक्षा

1. ग्रन्थपरीक्षा प्रथम भाग की समीक्षा - डॉ. नेमिचन्द्र जैन
2. ग्रन्थपरीक्षा द्वितीय भाग : एक अनुशीलन - प्रो. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'
3. सूर्यप्रकाश परीक्षा : एक अनुशीलन - डॉ. अशोक कुमार जैन
4 पुरातन जैन वाक्य सूची : एक अध्ययन - अरुणकुमार जैन
5. समीचीन धर्मशास्त्र - रत्नकरण्डश्रावकाचार का भास्वर भाष्य : निहालचंद जैन
6 रत्नकरण्डक श्रावकाचार (उपासकाध्ययन) की प्रभाचन्द्रकृत टीका के उद्धरण-कमलेशकुमार जैन
7 प्रभाचन्द्र का तत्त्वार्थसूत्र - मेरी दृष्टि में -पं विजय कुमार शास्त्री
8. सत्साधु-स्मरण-मङ्गलपाठ: एक समीक्षा - डॉ. कमलेश कुमार जैन
9 समाधितन्त्र - प्रस्तावना की समीक्षा - डॉ रतनचन्द्र जैन
10. 'अध्यात्म रहस्य' का भाष्य और उसके व्याख्याकार - पं. निर्मल जैन
11. अनेकान्त-रस-लहरी: एक अध्ययन - डॉ मुन्नीपुष्पा जैन
12. सापेक्षवाद - पं श्रेयाशकुमर जैन
13. समन्तभद्र विचार दीपिका-प्रथम भाग : एक अध्ययन-डॉ. प्रकाशचंद्र जैन
14 मुख्तार साहब की दृष्टि में समन्तभद्र - डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन
15. मुख्तार सा. के साहित्य का शिल्प-गत सौन्दर्य - डॉ. सुशील कुमार जैन
16. जैनियों का अत्याचार एवं समाज संगठन की समीक्षा-मुकेश कुमार जैन
17. स्मृति-परिचयात्मक निबन्ध : एक अध्ययन-डॉ. कस्तूरचन्द्र 'सुमन'
18. विनोद शिक्षात्मक निबन्धों की समीक्षा-निर्मलकुमार जैन जैनदर्शन
19. प्रकीर्णक निबन्धों का मूल्याङ्कन - डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी'

ग्रन्थ परीक्षा प्रथम भाग की समीक्षा

डॉ. नेमिचन्द्र जैन, खुरई

स्व. पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार बीसवीं शताब्दी के अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। वे कर्मठ साहित्य साधक, स्वाध्याय तप में सदा लीन रहने वाले, विलक्षण व्यक्तित्व के धनी थे। गौरवर्ण विशालभाल, लम्बकर्ण, सुगठित शरीर, आकर्षक अद्‌भुत स्मरणशक्ति सम्पन्न, सात्विक वृत्ति, साधारण वेशभूषा एवं गम्भीरचिन्तक व्यक्ति का नाम था जुगलकिशोर। वे सामाजिक और साहित्यिक क्रांति के सृष्टा थे। उनमें सर्वश्रेष्ठ तर्कणाशक्ति थी। जब तक कोई बात तर्ककी कसौटी पर कस नहीं लेते थे तब तक स्वीकार नहीं करते थे। स्वाध्यायी विद्वान् होने के कारण उन्होंने सर्वप्रथम पुराणों का स्वाध्याय किया। उनके मन में स्वाध्याय के समय अनेक प्रश्न उत्पन्न होते थे जिनका समाधान वे विद्वानों के माध्यम से कर लिया करते थे पर पुराणों के कर्ता, तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों के लेखकों के सम्बन्ध में ऐतिहासिकदृष्टि से सामग्री सुलभ न होने के कारण जिज्ञासा अधूरी रहती थी। अतः उन्होंने स्व्यं विभिन्न ग्रन्थों की प्रशस्तियों को पढ़कर लेखकों का ऐतिहासिक दृष्टि से चिन्तन किया। व्यक्तित्व के गुणात्मक विकास के कारण उन्हें भविष्यदृष्टा कहा जाना अतिशयोक्ति नहीं होगी। साहित्य, कला, एवं पुरातत्व के अध्ययन-अन्वेषण में जीवनव्यतीत करने वाले पंडित जुगलकिशोर जी ने सर्वप्रथम भट्टारकों में फैले हुए शिथिलाचार की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करने के लिये ग्रन्थों का परीक्षण प्रारम्भ कर ग्रन्थपरीक्षा के नाम से ग्रन्थों का प्रकाशन प्रारम्भ करके समाज का महान उपकार किया।

पं. नाथूलाल जी प्रेमी ने लिखा है -

"मैं नहीं जानता कि पिछले कई सौ वर्षों में किसी भी जैन विद्वान् ने कोई इस प्रकार का समालोचनात्मक ग्रन्थ इतने परिश्रम से लिखा

होगा और यह बात तो बिना हिचकिचाहट के कही जा सकती है कि इस प्रकार के परीक्षा लेख जैन साहित्य में सबसे पहले है।"

फलतः समाज ने भट्टारकों द्वारा मान्य एवं लिखित विविध ग्रन्थों का अध्यापन एवं अध्ययन बन्द किया।

निरन्तर चलने वाली लेखनी ने उन्हें श्रेष्ठ भाष्यकार, इतिहासकार एवं निर्भीक समीक्षक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कराई।

स्व. पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार सा. बड़े ही सहिष्णु एवं साहसी थे। परिवार के प्रिय सदस्यों की मृत्यु ने उन्हें अपने कर्त्तव्यपथ से विचलित नहीं किया। ग्रन्थ परीक्षा लिखने पर समाज के पट्टाधीशों ने उन्हें पापी, धर्म विरोधी, आर्षविरोधी कहा तथा धमकियां दी; पर वे अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। वे अपने विचारों एवं कृतकार्यों पर पूर्ण विश्वास के साथ अडिग् रहते थे। वे कभी शत्रु पर भी नहीं बिगड़ते थे। असत्य बातों और विचारों को सुनकर उन्होंने चुप रहना नहीं सीखा था। वे असत्य विचारों का प्रतिवाद होने तक शान्ति नहीं पाते थे।

स्व. पंडित मुख्तार सा जितने साहसी थे उतने ही पुरुषार्थी थे। बीमारी की स्थिति में भी उनकी रचनायें प्रकाशित होती रहती थी। उन जैसा कर्मठ दृढ़अध्यवसायी साहित्य तपस्वी अन्य नहीं हुआ। उनके कार्यों का मूल्यांकन कर कलकत्ता समाज ने उन्हें वाङ्मयाचार्य की उपाधि से विभूषित किया था। निरन्तर साहित्य साधना एवं साहित्य विकास की विशुद्ध भावना ने विद्यापीठ एवं वीरसेवा मंदिर सरीखे महत्वपूर्ण संस्थान स्थापित कर पुरुषार्थी होने का परिचय दिया।

सामाजिक वस्तुओं एवं धन का सुरीत्या उपयोग करना उनके श्रेष्ठ ट्रस्टी होने का परिचय देते हैं वे स्वभाव से अत्यधिक कोमल थे। उनके कार्य उन्हें कर्मयोगी सिद्ध करते हैं।

उर्दू फारसी भाषा का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्तकर स्वाध्याय द्वारा हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं के अधिकरी विद्वान बने पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार।

"ग्रन्थ परीक्षा" के प्रथम भाग में उमास्वामी-श्रावकाचार, कुन्दकुन्द श्रावकाचार, और जिनसेन त्रिवर्णाचार इन तीन ग्रन्थों की परीक्षा की गई है और इन तीनों ग्रन्थों को जाली सिद्ध किया गया है।

उमास्वामी और कुन्दकुन्द ने अलग से कोई श्रावकाचार ग्रन्थ नहीं रचे हैं। भट्टारकों ने अपने शिथिलाचारी विचारों को पुष्ट करने की भावना से उमास्वामी तथा कुन्दकुन्द सरीखे विद्वानों का नाम लिखकर ग्रन्थ लिखे ताकि वे प्रामाणिक माने जावे। नकली वस्तु कभी असली नहीं हो सकती है अतः यह सिद्ध है कि उमास्वामी, कुन्दकुन्द एवं जिनसेन के नाम पर लिखे गये श्रावकाचार उनके मूल ग्रन्थों कैसी श्रेष्ठता प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते
यदेदं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः।
सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम्॥

क्षमाशील पुरुषों में एक ही दोष का आरोप होता है। दूसरे की तो सम्भावना ही नहीं है। दोष यह है कि क्षमाशील को लोग असमर्थ समझ लेते हैं किन्तु क्षुमाशील का वह दोष नहीं मानना चाहिए क्योंकि क्षमा में बड़ा बल है।

-वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३३।४७-४८)

क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा।

क्षमा असमर्थ मनुष्यों का गुण तथा समर्थ मनुष्यों का भूषण है।

-वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३३।४९)

"ग्रन्थ-परीक्षा" द्वितीय-भाग : एक अनुशीलन

प्रोफेसर (डॉ.) भागचन्द्र जैन "भागेन्दु"
श्रवणवेलगोला (कर्नाटक)

प्रास्ताविक :

जैन संस्कृति, कला, इतिहास, पुरातत्त्व एवं वाङ्मय की बहुमूल्य सम्पदा गुफाओं, मंदिरों, शास्त्र-भण्डारों और अलमारियों में घुटन की सांस ले रहे थे। आकाश में व्याप्त नक्षत्रों के समान सर्वश्री पं गोपालदास बरैया, पं. नाथूराम प्रेमी, ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद, बैरिस्टर चम्पतराय, संत गणेशप्रसाद वर्णी, डॉ हीरालाल जैन, डॉ. ए एन. उपाध्ये आदि मनीषियों का साहित्यिक, सामाजिक और शैक्षणिक सुधार एवं विकास संबंधी प्रकाश प्रतिबिम्बित हो रहा था। स्वर्गीय पं. नाथूराम प्रेमी ने साहित्य समीक्षण के संदर्भ में आचार्यों और कवियों के अन्वेषण का जो कार्य प्रारंभ किया था, उसके लिए अनेक मेधावी मनीषियों की आवश्यकता थी। युग की यह आकांक्षा थी कि जैन दिगम्बर परम्परा का संरक्षक कोई ऐसा प्रतिभासम्पन्न व्युत्पन्न मनीषी सामने आवे जो समीक्षा के क्षेत्र में सर्वोच्च कीर्ति-स्तम्भ स्थापित कर सके। जिसके व्यक्तित्व में हिमालय की ऊँचाई और समुद्र की गहराई का मणीकांचन सन्निधान हो, जो निंदा एवं प्रशंसा के झोकों से विचलित न हो सके, जिसमें प्रतिभा, क्रियाशीलता, आर्ष-मार्ग के संरक्षण और संवर्धन की वृत्ति, स्वाध्यायशील जीवन, सदाचार-प्रवणता और वाङ्मय तथा समाज उत्थान की लगन हो।

पं. जुगलकिशोर मुख्तार "युगवीर" :

(स्व.) पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार "युगवीर" का जन्म इसी आकांक्षा/अभाव की पूर्ति/पूरक बनकर सरसावा (जिला सहारनपुर) में श्रीमान् चौधरी नत्थूराम जी जैन अग्रवाल के घर एक नई अरुणिमा के रूप में हुआ। मार्ग

शीर्ष शुक्ला एकादशी विक्रम सम्वत् 1934 को माता भुईदेवी इस नौनिहाल को प्राप्त कर धन्य हुई थी।

शैशव से ही इस बालक में कोई ऐसी चुम्बकीय शक्ति थी कि माता-पिता, पास-पड़ोस तथा सभी समर्पित व्यक्तियों को यह अनुरंजित किया करता था। माता-पिता ने शिशु का नामकरण-संस्कार सम्पन्न किया और नाम रखा- जुगलकिशोर। इस नाम की अपनी विशेषता है। जीवन में साहित्य और इतिहास इन दोनों धाराओं का एक साथ सम्मिलन होने से यह युगल-जुगल तो है ही, पर नित्य नवीन क्रांतिकारी विचारों का प्रसारक होने के कारण किशोर भी है। समाज संरचना के हेतु सुधारवादी वैचारिक क्रांति का प्रवर्तन इन्होंने किया ही है तो साथ ही भूतकालीन गर्त में निहित लेखकों और ग्रंथों को भी प्रकाश में लाये हैं, अतएव यह जुगल हमेशा किशोर ही बना रहा। इसीलिए वृद्ध होने पर भी उन्हें किशोर कहा जाता रहा। श्री जुगलकिशोर जी की प्रारम्भिक शिक्षा पाँच वर्ष की अवस्था में उर्दू-फारसी से प्रारंभ हुई। मौलबी साहब की दृष्टि में बालक जुगलकिशोर दूसरा विद्यासागर थी। उसमें विलक्षण प्रतिभा थी। दूसरा गुण जो इस बालक में था वह थी इनकी तर्कणा शक्ति। यद्यपि इनका विवाह बाल्यावस्था में ही हो गया था किन्तु इसके कारण इनकी ज्ञानपिपासा कम नहीं हुई अपितु अधिक बलवती हो उठी जैसे हीरे पर शान रख दी गई हो। उन्होंने हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन पाठशाला में किया और जैन शास्त्रों के स्वाध्याय में प्रवृत्त हुये। अंग्रेजी का अध्ययन करके उन्होंने इन्ट्रेंस की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने अपने अध्ययन काल से ही लिखना प्रारंभ कर दिया था। उनकी जो प्रथम रचना इस समय उपलब्ध है वह 8 मई 1896 ई. के "जैन गजट" में प्रकाशित हुई है। इस रचना से यह स्पष्ट है कि वे अनुभव करते थे कि कि भारत के दुर्भाग्य का मूल कारण अविद्या असंगठन और अपने मान्य आचार्यों के विचारों के प्रति उपेक्षा का भाव है। जब तक इन मूल कारणों का विनाश नहीं होगा, तब तक देश न तो स्वतंत्रता प्राप्त कर सकेगा और न ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति ही कर सकेगा। उन्होंने प्रेरित किया था कि - युवकों को संग्रठित होकर देशोत्थान के लिये संकल्प लेना चाहिये।

मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने केवल दो माह के लिये उपदेशक का वैतनिक कार्य किया और फिर मोख्तारी का प्रशिक्षण प्राप्त कर स्वतंत्र रूप से दस वर्ष तक मुख्तारी करके धन और यश दोनों का अर्जन किया। आप का अधिकांश समय स्वाध्याय और अन्वेषण में व्यतीत होता था।

पं. जुगलकिशोर मुख्तार "युगवीर" की साहित्य-साधना और अन्य कार्य

स्वाध्याय-तपस्वी मुख्तार साहब अपने क्रांतिकारी भाषणों और लेखन से समाज-सुधार एवं कुरीतियों और अंध-विश्वासों का निराकरणकर यथार्थ आर्ष-मार्ग का प्रदर्शन करने लगे। उनमें राष्ट्रीय-भावना इतनी प्रबल थी कि प्रतिदिन सूत कातकर ही भोजन ग्रहण करते थे। उनकी साधना निम्नलिखित रूपों में प्रतिबिम्बित हुई है-

1. समन्तभद्र आश्रम या वीर सेवा मंदिर की स्थापना-

21 अप्रैल 1929 में यहीं से "अनेकान्त" मासिक-पत्रिका का प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना के पूर्व यही एकमात्र ऐसी दिगंबर जैन संस्था थी, जो जैन वाङ्मय का इसकी स्थापना के साथ शोधपूर्ण प्रकाशन करती थी। मुख्तार साहब ने अपनी समस्त सम्पत्ति का ट्रस्ट कर दिया और उससे वीरसेवा मंदिर अपनी प्रवृत्तियों का विधिवत् संचालन करने लगा।

2. कवि "युगवीर" :

आपकी काव्य-रचनायें "युग-भारती" नाम से प्रकाशित हैं। इनकी सबसे प्रसिद्ध और मौलिक रचना "मेरी-भावना" एक राष्ट्रीय कविता बनकर प्रत्येक बालक के हृदय को गुंजित करती है।

3. निबंधकार :-

आपके निबंधों का संग्रह "युगवीर निबंधावली" के नाम से दो खण्डों में प्रकाशित है जिसमें समाज सुधारात्मक एवं गवेषणात्मक निबंध हैं। इसके अतिरिक्त आपके द्वारा प्रणीत "जैन साहित्य और इतिहास पर विशद

प्रकाश" नामक ग्रंथ में सामाजिक, दार्शनिक, राष्ट्रीय भक्तिपरक, आचारमूलक एवं जीवनशोधक 32 निबंध प्रकाशित हैं।

4. भाष्यकार :

स्वर्गीय पं. मुख्तार जी मेधावी भाष्यकार भी थे। आपने आचार्य समन्तभद्र की प्रायः समस्त कृतियों पर भाष्य ग्रंथ लिखे हैं, ऐसे प्रत्येक ग्रंथ में महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना भी दी हुई है, जिससे वे भाष्यग्रंथ और भी अधिक उपयोगी बन गये हैं।

5. इतिहासकार:

आपने अनेक ऐतिहासिक शोध-निबंधों को लिखकर अपने को एक सच्चा इतिहासकार प्रमाणित कर दिया। ऐतिहासिक शोध-खोज के लिये जिस परिश्रम और ज्ञान की आवश्यकता होती है वह परिश्रम और ज्ञान मुख्तार साहब को सहज में ही उपलब्ध था। उनके इस प्रकार के विशेष उल्लेखनीय निबंध "वीरशासन की उत्पत्ति और स्थान" "श्रुतावतारकथा" "तत्त्वार्थाधिगमभाष्य और उनके सूत्र" "कार्तिकेयानुप्रेक्षा और स्वामी कुमार" आदि।

6. प्रस्तावना लेखक :

श्री पं. जुगलकिशोर जी ने स्वयम्भूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, देवागम, अध्यात्मरहस्य, तत्त्वानुशासन, समाधितन्त्र, पुरातन जैन वाक्यसूची, जैनग्रंथ प्रशस्ति संग्रह, (प्रथम भाग), समन्तभद्र भारती आदि ग्रंथों का सम्पादन कर महत्त्वपूर्ण प्रस्तावनायें लिखी, जो पाठकों के लिये अत्यंत उपयोगी एवं ज्ञानवर्धक हैं।

7. पत्रकार एवं सम्पादक:

पण्डित जुगलकिशोर मुख्तार "युगवीर" प्रथम श्रेणी के पत्रकार और सम्पादक थे। आपका यह रूप साप्ताहिक "जैन गजट" के सम्पादन से प्रारंभ हुआ। नौ वर्षों तक इसका सफल सम्पादन करने के उपरांत आपने "जैनहितैषी" का सम्पादकत्व स्वीकार किया और यह कार्य अत्यंत यशस्वितापूर्वक 1931

तक सम्पन्न करते रहे। इसके पश्चात् सुप्रतिष्ठित मासिक शोध पत्र "अनेकान्त" का सम्पादन एवं प्रकाशन समन्तभद्र आश्रम की स्थापना के पश्चात् आपने प्रारंभ किया और आजीवन उसके संस्थापक सम्पादक/प्रकाशक रहे।

समीक्षक एवं ग्रन्थ परीक्षक पं. जुगलकिशोर "मुख्तार" और समीक्ष्यकृति "ग्रन्थ परीक्षा" द्वितीय भाग :

किसी वस्तु-रचना अथवा विषय के संबंध में सम्यक्ज्ञान प्राप्त करना तथा प्रत्येक तत्त्व का विवेचन करना "समीक्षा" है। और जब साहित्य के संबंध में उसकी उत्पत्ति, विविध अंग, गुण-दोष आदि विभिन्न तत्त्वों और पक्षों के संबंध में समीचीन आलोडन-विलोडन कर विश्लेषण किया जाता है तो उसे "साहित्य-समीक्षा" कहते है। साहित्य के विविध तत्त्वों और रूपों का स्वयं दर्शन कर दूसरों के लिए ग्राह्य बनाना ही समीक्षक का कार्य होता है।

प जुगलकिशोर मुख्तार "युगवीर" के साहित्यिक जीवन का प्रारंभ "ग्रन्थ-परीक्षा" और "समीक्षा" से ही आरंभ होता है उन्होंने अत्यधिक श्रम, साधना और साहसपूर्वक युक्ति, आगम और तर्क परस्पर समीक्ष्य ग्रन्थों के नकली रूप को उजागर कर डंके की चोट से उन्हें जाली सिद्ध किया। उन जैसा ग्रन्थ के मूल स्रोतो का अध्येता एव मूल सदर्भो का मर्मज्ञता बिरला ही कोई समीक्षक होता है। वे ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय के अन्तस्तल में अवगाहन करके उसके मूल-स्रोतों की खोज करते हैं, उनका परीक्षण करते हैं और तत्पश्चात् उनकी प्रामाणिकता का निर्धारण करते हैं। आचार्य पं जुगलकिशोर मुख्तार द्वारा प्रणीत "ग्रन्थ-परीक्षा" कृतियाँ समीक्षा-शास्त्र की दृष्टि से शास्त्रीय मानी जायेगी। यद्यपि उनमें ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, निर्णयात्मक एवं तात्त्विक समीक्षा के रूपों का भी मिश्रण पाया जाता है। उनके द्वारा प्रणीत "ग्रन्थ-परीक्षा" के अन्तर्गत जितने ग्रन्थों की प्रमाणिकता पर विचार किया गया है वे सभी ग्रन्थ समीक्षा के अन्तर्गत ही आते हैं।

ग्रन्थ परीक्षा : प्रथम भाग

आचार्य पं जुगलकिशोर मुख्तार ने "ग्रन्थ-परीक्षा" शीर्षक ग्रन्थ जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, पोस्ट-गिरगाँव, बम्बई से प्रकाशित कराया

है। इसके प्रथम भाग में - उमास्वामी-श्रावकाचार, कुन्द कुन्द्र-श्रावकाचार और जिनसेन त्रिवर्णाचार- इन तीन ग्रन्थों की परीक्षा की गई है और इन तीनों ग्रन्थों को जाली सिद्ध किया गया है।

"ग्रन्थ-परीक्षा द्वितीय - भाग" (अर्थात् भद्रबाहु संहिता नामक ग्रन्थ की समालोचना):

इस ग्रन्थ का प्रकाशन द्वि. भाद्र 1974 वि. तदनुसार सितम्बर 1917 ई. में जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, गिरगाँव, बम्बई से हुआ 127 पृष्ठों में प्रकाशित इस प्रथम संस्करण का मूल्य मात्र चार आने अर्थात् वर्तमान के पच्चीस पैसे रखा गया था। इसके मुद्रक है चिंतामण सखाराम देवड़े जो मुम्बई वैभव प्रेस, सर्व्हेंटस ऑफ इंडिया सोसायटीज होम संढर्स्ट रोड, गिरगांव, बम्बई के स्वत्वाधिकारी थे। ग्रन्थ के प्रकाशकीय निवेदन में पं. नाथूराम प्रेमी ने उल्लेख किया है कि - "जैन-हितेषी में लगभग चार वर्ष से ग्रन्थ-परीक्षा शीर्षक लेखमाला निकल रही है, उन्हीं लेखों को "ग्रन्थ-परीक्षा" शीर्षक से पुस्तिका का प्रकाशित किया गया है। माननीय मुख्तार साहब के इन लेखों ने जैन समाज को एक नवीन युग का संदेश सुनाया है, और अंधश्रद्धा के अंधेरे में निन्द्रित पड़े हुये लोगों कों चकचौंधा देने वाले प्रकाश से जागरुक कर दिया है .... ।"

"जैनधर्म के उपासक इस बात को भूल रहे थे कि जहाँ हमारे धर्म या सम्प्रदाय में एक ओर उच्च श्रेणी के नि:स्वार्थ और प्रतिभाशाली ग्रन्थ-कर्ता उत्पन्न हुए हैं वहीं दूसरी और नीचे दर्जे के स्वार्थी और तस्कर लेखक भी हुए हैं अथवा हो सकते हैं, जो अपने खोटे सिक्कों को महापुरुषों के नाम की मुद्रा से अंकित करके खरे दामों में चलाया करते हैं। इस भूल के कारण ही आज हमारे यहां भगवान् कुन्दकुन्द और सोमसेन, समन्तभद्र और जिनसेन (भट्टारक), तथा पूज्यपाद और श्रुतसागर एक ही आसन पर बिठाकर पूजे जाते हैं।

लोगों की सद्विवेक बुद्धि का लोप यहाँ तक हो गया है कि वे संस्कृत या प्राकृत में लिखे हुए चाहे जैसे वचनों को आप्त भगवान के वचनों से जरा भी कम नहीं समझते। ग्रन्थ-परीक्षा के लेखों से हमें आशा है कि

भगवान महावीर के अनुयायी अपनी इस भूल को समझ जायेंगे और वे अपनी संतान को धूर्त ग्रन्थकारों के चंगुल में नहीं फँसने देंगे।"

(स्व) पं नाथूराम प्रेमी के द्वारा "ग्रन्थ परीक्षा द्वितीय भाग" के प्रकाशकीय वक्तव्य के उक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि माननीय मुख्तार साहब ने निर्भीक होकर अपने अनुपम साहस के द्वारा ग्रन्थों के नकली रूप को जाना और डंके की चोटपूर्वक उन्हें जाली सिद्ध किया।

"ग्रन्थ-परीक्षा" द्वितीय भाग में :

"भद्रबाहु संहिता" ग्रन्थ की परीक्षा अंकित है। जैन समाज में, भद्रबाहु स्वामी एक बहुत प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। ये पांचवें श्रुतकेवली थे। "श्रुतकेवली" उन्हें कहते हैं जो सम्पूर्ण द्वादशांग श्रुत के पारगामी हों उसके अक्षर-अक्षर का जिन्हें यथार्थ ज्ञान हो। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिये कि तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि द्वारा जिस ज्ञान-विज्ञान का उदय होता है, उसके अविकल को "श्रुतकेवली" कहते हैं। आगम में सम्पूर्ण पदार्थों के जानने में "केवली" और "श्रुतकेवली" दोनों ही समान रूप से निर्दिष्ट हैं। भेद है सिर्फ प्रत्यक्ष-परीक्षा का अथवा साक्षात्-असाक्षात् का केवली अपने केवलज्ञान द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों को प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं और श्रुतकेवली अपने स्याद्वादालंकृत श्रुतज्ञान द्वारा उन्हें परोक्ष रूप से अनुभव करते हैं। आचार्य समन्भद्र स्वामी कृत आप्तमीमांसा की दसवीं कारिका से भी हमारे उक्त विवेचन की पुष्टि होती है।

उक्त विवेचन से सुस्पष्ट है कि संपूर्ण जैन समाज में आचार्य भद्रबाहु श्रुतकेवली का आसन बहुत ऊँचा है। ऐसे महान् विद्वान् और प्रतिभाशाली आचार्य द्वारा प्रणीत यदि कोई ग्रन्थ उपलब्ध हो जाय तो वह निःसन्देह बड़े ही आदर और सत्कार की दृष्टि से देखे जाने योग्य है और उसे जैन समाज का बहुत बड़ा सौभाग्य समझना चाहिए।

"ग्रन्थ परीक्षा" द्वितीय भाग में पं. जुगलकिशोर मुख्तार "युगवीर" ने जिस ग्रन्थ की परीक्षा/समीक्षा की है उसके नाम के साथ "भद्रबाहु" का

पवित्र नाम संयुक्त है। कहा जाता है कि यह ग्रन्थ अर्थात् "भद्रबाहु संहिता" भद्रबाहु श्रुतकेवली द्वारा विरचित है।

मनीषी समीक्षक पं. जुगलकिशोर मुख्तार "युगवीर" ने "भद्रबाहु संहिता" का अन्तरंग परीक्षण बहुत ही विस्तार के साथ किया है। प्रत्येक अध्याय के वर्ण्य विषय का निरूपण, उसका तुलनात्मक अध्ययन और परीक्षण तथा ग्रन्थ में उल्लिखित असम्बद्ध-अव्यवस्थिति और विरोधी तथ्यों का स्पष्टीकरण भी किया गया है। पं. जुगलकिशोर मुख्तार की विश्लेषणात्मक समीक्षा पद्धति से स्वयं ही ग्रन्थ का जालीपना सिद्ध हो जाता है। यह परीक्षाग्रन्थ इस तथ्य को उजागर करता है कि पं. जुगलकिशोर मुख्तार ने वैदिक और जैन वाङ्मय का गभीर अध्ययन किया है। उन्होंने ज्योतिष, निमित्त, शकुन, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, वास्तुविद्या, राजनीति, अर्थशास्त्र एवं दायभाग का विशेष अध्ययन कर समीक्ष्य ग्रन्थ- "भद्रबाहु संहिता" का वास्तविक रूप विश्लेषित किया है।

इस समग्र समीक्षण में मनीषी लेखक की तटस्थता एवं विषय प्रतिपादन की क्षमता विशेषरूप से ध्यातव्य है।

इस ग्रन्थ-परीक्षा द्वितीय भाग की स्थापनाएँ इतनी पुष्ट और शास्त्रीय प्रमाणों पर आधृत हैं कि सुधी पाठकों और समाज पर दूरगामी सुपरिणाम परिलक्षित हुआ।

मैं बिना किसी हिचकिचाहट के यह कह सकता हूँ कि इस प्रकार के परीक्षा-लेख जैन साहित्य में सबसे पहले हैं।

रचना में समय-स्थान, प्रशस्ति आदि का अभाव

ग्रन्थ में ग्रन्थ रचना का कोई समय अथवा प्रशस्ति नहीं दी गयी है। परन्तु ग्रन्थ की प्रत्येक सन्धि में 'भद्रबाहु' ऐसा नाम जरूर लगा हुआ है। कई स्थानों पर "मैं भद्रबाहु मुनि ऐसा कहता हूँ या कहूँगा" - इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। एक स्थान पर -

भद्रबाहुरुवाचेदं पंचमः श्रुतकेवली

भद्रबाहु को हुए 2300 वर्ष से अधिक बीत गए, किंतु इतनी लम्बी अवधि में किसी मान्य आचार्य की कृति या किसी प्राचीन शिलालेख में इस

ग्रन्थ का उल्लेख नहीं हुआ है। दक्षिण प्रदेश के किसी शास्त्र-भंडार में इसकी कोई प्रति नहीं मिली। जहाँ धवल, जयधवल, महाधवल आदि ग्रन्थराज सुरक्षित रखने वाले मौजूद हों, वहाँ 'भद्रबाहु संहिता' का नाम तक न सुनाई पड़े यह बहुत बड़े आश्चर्य की बात है।

ग्रन्थ का आकार : और विचारणीय तथ्य :

ग्रन्थ में तीन खण्ड हैं - (1) पूर्व (2) मध्यम (3) उत्तर।

श्लोक सख्या लगभग सात हजार। किन्तु ग्रन्थ के अन्तिम वक्तव्य 18 श्लोकों में ग्रन्थ के पांच खण्ड और श्लोक संख्या 12 हजार उल्लिखित है (श्लोक सं 2/पृ.) सामान्य विभाजन में खण्डों का विभाजन समुचित नहीं है।

विचारणीय-अन्तिम वक्तव्य अन्तिम खंड के अन्त में होना चाहिए था। परन्तु यहाँ पर तीसरे खड के अंत में दिया है। चौथे पांचवे खंडों का कुछ पता नहीं और न उनके संबध में इस विषय का कोई शब्द ही उल्लिखित है। ग्रन्थ में तीन खण्ड होने पर ही पर्व, मध्यम, उत्तर कहना ठीक होगा। पांच खण्ड होने पर नहीं। इस विभाजन में अनेक विसंगतियाँ है।

दूसरे खंड को 'उत्तर खंड' सूचित किया है। पृ. 7 और खंड के अंत में मध्यम खण्ड।

2. विषय का विभाजन/विशेष नामकरण :

श्लोक 1 में दूसरे खंड का नाम 'ज्योतिष खण्ड' और तीसरे का 'निमित्त खंड' दिया है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि ये दोनों विषय एक दूसरे से भिन्न हैं। किंतु दोनों अध्यायों को पढ़ने से ऐसा नहीं लगता। वस्तुत: तीसरे खंड में 'ऋषि पुत्रिका' और 'दीप' नाम के अध्याय ही ऐसे हैं जिनमें निमित्त का कथन है। शेष आठ अध्यायों में अन्य बातों का वर्णन है। इससे आप सोचिए कि इस खंड का नाम कहाँ तक सार्थक है।

इसी प्रकार दूसरे खंड में 1. केवल काल, 3. वास्तु लक्षण, 3. दिव्येन्दु संपदा, 4. चिन्ह, 5. और दिव्यौषधि - इन पांच अध्यायों का ज्योतिष से प्राय: कोई संबंध नहीं है। खंडों के नामकरण समुचित नहीं हैं। अध्यायों के नामकरण भी ठीक नहीं। जैसे तीसरे खंड में 'फल' नाम के अध्याय में कुछ स्वप्नों और ग्रहों के फल का वर्णन है। यदि इतने पर से ही इसका नाम 'फलाध्याय' हो सकता है तो इसके पूर्व के स्वप्नाध्याय को और ग्रहाचार प्रकरण के अनेक अध्यायों को फलाध्याय कहना चाहिए। क्योंकि वहाँ भी ऐसे ही विषय हैं।

मंगलाचरण में 'अधुना' (पृ 10) शब्द अप्रासंगिक है। प्रतिज्ञावाक्य में - संहिता का उद्देश्य - वर्णों और आश्रमों की स्थिति का निरूपण है।

इस कथन से ग्रन्थ के तीसरे खण्ड का कोई संबंध नहीं है। खासकर 'ज्योतिष खण्ड' बिल्कुल ही अलग प्रसंग है। वह वर्णाश्रम वाली संहिता का अंग कदापि नहीं हो सकता।

दूसरे खण्ड के प्रारम्भ में - 'अथ उत्तरखंड प्रारभ्यते।' "अथ भद्रबाहुकृतनिमित्त ग्रन्थ: लिख्यते।" इससे भी दूसरे खण्ड का अलग ग्रन्थ होना पाया जाता है। इस खण्ड के सभी अध्याय किसी एक रचनाकार की रचना नहीं प्रतीत होते। इसके 24-25 अध्यायों की शैली और अभिव्यक्ति दूसरे अध्यायों से भिन्न है। वे किसी एक द्वारा प्रणीत हैं, शेष अध्याय दूसरे रचनाकारों द्वारा प्रणीत हैं। यहाँ एक और विलक्षण बात दिखाई देती है कि 25 वें अध्याय तक कहीं कोई मंगलाचरण नहीं है किंतु 26 वें अध्याय के प्रारंभ में मंगलाचरण है। (पृ. 11)

1. इस ग्रन्थ का संकलन बहुतकाल पीछे किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा हुआ है।

2. श्रुतकेवली की परिधि से कोई भी ज्ञान बाहर नहीं होता। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा रचित ग्रन्थ में विषय के स्पष्टीकरण के लिए किसी दूसरे के कथन उद्धृत करने की आवश्यकता आ पड़े, यह विचारणीय प्रश्न है। जैसे दूसरे खंड के 37 वें अध्याय में घोड़ों के लक्षण। वहाँ पद्य 126 में लिखा है कि ये लक्षण चन्द्रवाहन ने कहे हैं।

3. प्रथम खंड के प्रथम अध्याय में (पृ. 22) उल्लेख है कि गौतमसंहिता देखकर इस संहिता के कथन की प्रतिज्ञा।

4. एक स्थान पर 'जटिलकेश' विद्वान् का उल्लेख (पृ. 23)

5. तीसरे खंड के पांचवे अध्याय में चौदहवें पद्य में उत्पातों के भेदों के वर्णन में एक विद्वान् 'कुमार बिन्दु' का उल्लेख हुआ है जिन्होंने पांच खण्ड का कोई संहिता जैसा ग्रंथ बनाया है। "जैन हितैषी" के छठवें भाग में "दि. जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ" सूची प्रकाशित हुई है। उसमें कुमारबिन्दु की 'जिनसंहिता' का उल्लेख है।

   मुख्तार साहब का मत है कि ये कुमारबिन्दु भद्रबाहु श्रुतकेवली से पहले नहीं हुए। अस्तु। द्वादशांगश्रुत और श्रुतकेवली के स्वरूप का विचार करते हुए इन सभी कथनों पर से यह ग्रन्थ भद्रबाहु प्रणीत प्रतीत नहीं होता।

6. इस ग्रन्थ के दूसरे खंड में, एक स्थान पर 'दारिद्रयोग' का वर्णन करते हुए, उन्हें साक्षात् राजा श्रेणिक से मिला दिया है और लिखा है कि - यह कथन भद्रबाहु मुनि ने राजाश्रेणिक के प्रश्न के उत्तर में किया है - (अध्याय 41, पद्य 65, 66, ग्रन्थ परीक्षा पृ. 24 में उद्धृत)

   विचारणीय तथ्य यह है कि भद्रबाहु श्रुतकेवली राजा श्रेणिक से लगभग 125 वर्ष पीछे हुए हैं। इसलिए उनका राजा श्रेणिक से साक्षात्कार कैसे संभव है। इससे ग्रन्थकर्ता का असत्य वक्तृत्व और छल प्रमाणित होता है।

7. संस्कृत साहित्य में बृहत्पाराशरी नामक ज्योतिष शास्त्र का विशालकाय ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ के 31 वें अध्याय में 'दारिद्रयोग के वर्णन' में जो प्रथम पद्य दिया है। 'भद्रबाहु संहिता' में पद्यों के चरणों का उलटफेर कर असम्बद्धता प्रकट की है। इसके आगे नौ पद्य और इसी प्रकरण के दिए हैं। जो 'होरा' ग्रन्थ में प्राप्त होते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि संहिता का यह सब प्रकरण 'बृहत्पाराशरी' से

उठाकर रख दिया है। छन्दों को कहीं ज्यों का त्यों, कहीं पूर्वार्द्ध को उत्तरार्द्ध और कहीं उत्त्रार्द्ध को पूर्वार्द्ध के रूप में तोड़ा-मरोड़ा है। ऐसा करते समय क्रियापदों में परिवर्तन नहीं कर सके है। अत: असम्बद्धता आ गयी है (पृ. 26-27) भूतकाल और भविष्यकाल की क्रियाओं का बड़ा विलक्षण योग है। देखिये (अध्याय 34, ज्योतिषखंड में पंचमकाल का वर्णन, पद्य 47-57)

इस प्रकरण की समीक्षा और तुलनात्मक अध्ययन से यह ध्वनित होता है कि इस पंचमकाल वर्णन में असम्बद्धता है। यह सम्पूर्ण प्रकरण किसी पुराणादि ग्रंथ से उठाकर यहाँ रखा गया है जो विक्रम संवत् 530 के पीछे की रचना है।

'भद्रबाहु संहिता' में वर्ण्य विषय के साथ भद्रबाहु का सम्बंध स्थापित करते हुए क्रियापदों में यथेष्ट परिवर्तन नहीं किया गया है। इससे असम्बद्धता का दोष आ गया है।

8 इस ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में 'निमित्ताध्याय' के वर्णन में प्रतिज्ञावाक्य -

पूर्वाचार्येर्यथा प्रोक्तं दुर्गाद्येलातादिभिर्यथा।
गृहीत्वा तदभिप्रायं तथारिष्टं वदाम्यहम्॥ 30-10

इस प्रतिज्ञावाक्य से स्पष्ट है कि उन्होंने दुर्गादिक और ऐलादिक आचार्यों को पूर्वाचार्य माना है। मुख्तार जी ने इनके ग्रंथों की खोज की। तब स्पष्ट हुआ कि - भद्रबाहु श्रुतकेवली से पहले इस नाम के उल्लेख योग्य कोई आचार्य नहीं हुए हैं। ऐलाचार्य नाम के तीन आचार्य हुए हैं। प्रथम एलाचार्य कुन्दकुन्द का दूसरा नाम है (दूसरे) एलाचार्य चित्रकूटपुर निवासी कहे जाते हैं जिनसे आचार्य वीरसेन ने सिद्धान्तग्रंथ पढ़ा था। (तीसरे) ऐलाचार्य भट्टारक हैं। उनके द्वारा रचित ज्वालामालिनी-कल्प ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है।

यहाँ यह तथ्य विचारणीय है कि ये तीनों ऐलाचार्य भद्रबाहु श्रुतकेवली से अनेक शताब्दियों बाद हुए हैं।

दुर्ग आचार्य की खोज करने पर ढक्कन कालेज पूना के पुस्तकालय से 'रिष्ट समुच्चय' ग्रंथ मिला है। मुख्तार साहब ने इस ग्रन्थ से भद्रबाहु संहिता का बहुत सावधान से मिलान किया और उन्होंने पाया कि दुर्ग देव द्वारा प्राकृत भाषा में रचित 'रिष्ट समुच्चय' ग्रंथ की सौ से भी अधिक गाथाओं का आशय और अनुवाद इस संहिता में कर लिया है। 'ग्रंथ-परीक्षा' के द्वितीय भाग में पृ. 30-31 पर ऐसे पद्यों को उद्धृत किया गया है।

वस्तुत: 'रिष्ट समुच्चय' विक्रम संवत् 1089 की रचना है। जैसा कि उसकी प्रशस्ति के पद्य 257 से स्पष्ट है (ग्रन्थ परीक्षा पृ. 31)

इस समीक्षा से स्पष्ट है कि 'भद्रबाहु संहिता' ग्रंथ न तो भाद्रबाहु श्रुतकेवली की रचना है और न ही उनके किसी शिष्य - प्रशिष्य कीं, तथा न ही विक्रम संवत् 1089 से पहले की, प्रत्युत यह विक्रम की 11वीं शताब्दी से परवर्ती समय की रचना है। जिसका रचनाकार अत्यन्त सामान्य व्यक्ति हैं। उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि मैं इस ग्रंथ को भद्रबाहु श्रुतकेवली के नाम से बना रहा हूँ और इसमें 1200 वर्ष पीछे होने वाले विद्वान् का नाम और उसके ग्रंथ का प्रमाण नहीं आना चाहिए।

जिस प्रकार अन्य अनेक प्रकरण दूसरे ग्रंथों से लिए हैं उसी प्रकार रिष्ट समुच्चय से भी यह प्रकरण लिया है। वास्तव में भद्रबाहु संहिता विक्रम की 11वी शताब्दी से पीछे की रचना है।

9. आचार्यकल्प पं. आशाधरकृत 'सागार धर्मामृत' के 1.14 और 2.46 ये दो पद्य 'भद्रबाहु संहिता में ज्यों के त्यों 3/363 और 10/72 के रूप में मिलते हैं (दे. ग्रंथ परीक्षा पृ. 33)'

पं. आशाधर जी का समय विक्रम संवत् 1296 है। अत: भद्रबाहु संहिता 13वीं सदी की रचना है। इसी प्रकार भद्रबाहु संहिता के तीसरे

खण्ड के फल नामक नौवें अध्याय के अनेक पद्यों का रत्ननन्दिकृत 'भद्रबाहुचरित' से साम्य है (दे. पृ. 34 से 36) रत्ननन्दि के भद्रबाहुचरित की रचना 16 वीं सदी में हुई क्योंकि उसमें ढूंढ़िया मत (लुकामत) की उत्पत्ति का उल्लेख है।

10. 'ताजिक नीलकण्ठी' प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रंथ है। इसके रचनाकार का समय विक्रम की 17 वीं सदी का पूर्वार्द्ध है। भद्रबाहु संहिता के दूसरे खण्ड के 'विरोध' नामक 43 वें अध्याय में कुछ परिवर्तन के साथ ताजिक नीलकण्ठी के बहुत से पद्य ले लिये गये हैं केवल उसके अरबी-फारसी के शब्दों का संस्कृत रूपान्तरण कर दिया है।

उपर्युक्त विश्लेषण के माध्यम से माननीय पंडित जुगलकिशोर जी मुख्तार ने यह प्रमाणित करने का उपक्रम किया है कि यह खण्डत्रयात्मक भद्रबाहुसंहिता ग्रंथ भद्रबाहुश्रुतकेवली की रचना नहीं है और न उनके शिष्य-प्रशिष्य की ही रचना है। और फिर झालरापाटन के शास्त्र भण्डार से प्राप्त इस ग्रंथ की हस्तप्रति विक्रम संवत् 1665 की है। अतः भद्रबाहु संहिता का रचनाकाल 1665 ई. के पूर्व और 1657 के पश्चात् प्रमाणित किया है।

इस आलेख के लेखक का सुस्पष्ट मत है कि भद्रबाहु संहिता श्रुतकेवली भद्रबाहु की रचना नहीं है। वह 17 वीं शती के किसी रचनाकार की संगृहीत रचना है।

पं. जुगलकिशोर मुख्तार "युगवीर" का व्यक्तित्व और वैदुष्य :

पं. मुख्तार साहब का व्यक्तित्व "नारिकेल-फल-सदृशं" था। सामाजिक दायित्वों की रक्षा हेतु कठोर कदम उठाने के लिए तैयार किन्तु स्वभाव में नवनीत की भांति थे। आपमें आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसी निर्भीकता और पं. सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" जैसी अक्खड़ता थी। सरस्वती के इस वरदपुत्र ने लेखन, सम्पादन और कविता प्रणयन द्वारा भगवतीश्रुत देवता का भण्डार समृद्ध किया। श्रम और अध्यवसाय जैसे गुण आपके व्यक्तित्व में सहज अनुस्यूत थे। संक्षेप में कह सकते हैं कि पण्डित जुगल

किशोर मुख्तार "युगवीर" का मस्तिष्क ज्ञानी का,हृदय योगी का, और शरीर कृषक का था।

आपके व्यक्तित्व और वैदुष्य का सम्यक् मूल्यांकन अनेक प्रसंगों में किया गया। वीर शासन महोत्सव के अवसर पर कलकत्ता में उन्हें "वाङ्मयचार्य" की उपाधि से विभूषित किया गया। पूज्य संत श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी, पण्डित नाथूराम प्रेमी, ब्र. पं. चन्द्राबाई आरा, साहू शांतिप्रसाद जी, डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य आदि ने मुख्तार साहब के अगाध पाण्डित्य और ज्ञान साधना की भूरि-भूरि प्रशंसा की। डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने आपको साहित्य का भीष्मपितामह कहा है। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य ने डॉ. ज्योतिप्रसाद जी कि कथन में कुछ पंक्तियाँ और जोड़ते हुए लिखा है कि वे साहित्य के पार्थ हैं जिन्होंने अपने बाणों से भीष्म पितामह को भी जीत लिया था, पर अपने विनीत स्वभाव के कारण वे भीष्म के भक्त बने रहे।

वस्तुत: "युगवीर" यह उनका उपनाम बहुत ही सार्थक और सारगर्भित है। वे इस युग के वास्तविक "वीर" है, स्वाध्याय, वाङ्मय निर्माण, संशोधन, सम्पादन प्रभृति कार्यों में कौन ऐसा वीर है, जो उनकी बराबरी कर सकें? वे केवल युग निर्माता ही नहीं युग संस्थापक ही नहीं, अपितु युग-युगान्तर निर्माता और युग-युगान्तरों के संस्थापक हैं। उनके द्वारा रचित विशाल वाङ्मय वर्तमान और भविष्य दोनों को ही प्रकाश प्रदान करता रहेगा। वस्तुत: साहित्य-सृजन की दृष्टि से मुख्तार जी के व्यक्तित्व की तुलना यदि किसी से की जा सकती है तो वह है महाकवि व्यास।

वाङ्मयाचार्य पं जुगलकिशोर मुख्तार "युगवीर" जितेन्द्रिय, संयमी, निष्ठावान् एवं ज्ञानतपस्वी मनीषी थे। इस युग-विभूति ने लोक सेवा और सहित्यसेवा द्वारा ऐसे ज्ञान-मंदिरों का निर्माण किया जो युग-युगान्तर तक संपूर्ण दिगंबर जैन संस्कृति को संजोए रहेगी। उनका जीवन निष्पक्ष दीपशिखा के सामन तिल-तिल कर ज्ञानप्राप्ति के लिए जला और वे एक ज्ञानी, समाज सुधारक, दृढ़ अध्यवसायी एवं साधक तथा पाण्डुलिपियों के अध्येता ही नहीं, प्रत्युत "वे आँगन की तुलसी का वह पौधा" हैं, जिनकी सुरभि ने सभी

दिशाओं को हर्षविभोर बना दिया था। उन्होंने युग की नाड़ी को परखा था, इसीलिए दिगम्बर जैन परम्परा का मौलिक रूप अक्षुण्ण रखने के लिए उन्होंनें एक नयी दिशा और नया आलोक पूर्ण मार्ग प्रशस्त किया। इस कालजयी युगान्तरकारी कृतिकार वाङ्मयाचार्य पं. जुगलकिशोर मुख्तार "युगवीर" को और उनकी स्मृतिकर्ताओं को कोटि-कोटि नमन।

य: समुत्पतितं कोपं क्षमयैव निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते॥

जो मनुष्य अपने उत्पन्न क्रोध का क्षमा द्वारा उसी प्रकार निराकरण कर देता है जिस प्रकार सर्प पुरानी केंचुली का, वही सच्चा पुरुष कहा जाता है।

-मत्स्यपुराण (२८/४)

मूढस्य सततं दोषं क्षमां कुर्वन्ति साधव:।

सज्जन मूर्ख के दोष को सदा क्षमा कर देते हैं।

-ब्रह्मवैवर्त्तपुराण

क्षमा हि मूलं सर्वतपसाम्।

क्षमा तो सब तपस्यायों का मूल है।

-बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ. १२)

क्षमाधनु: करे यस्य दुर्जन: किं करिष्यति।
अतृणे पतितो वह्नि: स्वयमेवोपशाम्यति॥

जिसके हाथ में क्षमारूपी धनुष है, दुर्जन व्यक्ति उसका क्या कर लेगा? अग्नि में तृण न डाला जाए, तो वह स्वयं ही बुझ जाती है।

-अज्ञात

सूर्य प्रकाश-परीक्षा : एक अनुशीलन

डॉ. अशोक कुमार जैन, लाडनूँ

बीसवीं शताब्दी के सारस्वत मनीषियों में पं जुगलकिशोर मुख्तार का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने जैन साहित्य की सुरक्षा, संवर्द्धन, प्रचार एवं प्रसार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारतीय साहित्य में जैन साहित्य का विशेष स्थान है। उसके सृजन का मूल आधार वीतराग सर्वज्ञ की वाणी रहा है। आचार्य समन्तभद्र ने शास्त्र का लक्षण करते हुए लिखा है -

आप्तोपज्ञमनुल्लघ्य मदृष्टेष्ट विरोधकम्।
तत्त्वोपर्दशकृत्सार्वं शास्त्रं का पथ घट्टनम्॥

रत्नकरण्ड श्रावकाचार शास्त्र सर्वप्रथम आप्त भगवान के द्वारा उपज्ञात है। आप्त के द्वारा कहे जाने के कारण इन्द्रादिक देव उसका उल्लंघन नहीं करते, प्रत्यक्ष तथा अनुमानादि के विरोध से रहित है, तत्वों का उपदेश करने वाला है, सबका हितकारी है और मिथ्यामार्ग का निराकरण करने वाला है।

आचार्य वीरसेन स्वामी ने लिखा है 'वक्तृ प्रामाण्याद्वचन प्रामाण्यम्' अर्थात् वचन की प्रामाणिकता वक्ता की प्रामाणिकता पर निर्भर रहती है। आप्त पुरूषों द्वारा प्रणीत शास्त्र तो सच्चे शास्त्र हैं और उसी के श्रद्धान से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

भगवान् महावीर ने सर्व प्राणि समभाव पर विशेष बल दिया और उसमें समत्व की प्रतिष्ठापना हेतु स्याद्वादमयी वाणी के प्रयोग पर बल दिया, परन्तु काल की गति के साथ जैन धर्म के अनुयायियों में भी शिथिलताओं की प्रवृत्तियां वृद्धिंगत हुई। परिणामत: जैनधर्म के वीतराग प्रशास्त मार्ग में शिथिल मान्यताओं के पोषक लोगों ने ऐसे ग्रन्थों का सृजन कर दिया, जिसमें चमत्कारों तथा सरागता को प्रमुखता दी गयी, जिससे भोले-भाले श्रावक दिग्भ्रमित हुए। श्रावकों की डगमगाती स्थिति देख समय-समय पर जैन मनीषियों ने अपनी

लेखनी द्वारा समाज का स्थितिकरण करने उनको जिनवाणी के यथार्थ स्वरूप का बोध कराकर विकृतियों से पराङ्मुख किया। स्व. पण्डित जुगलकिशोर मुख्तार उन विभूतियों में से एक हैं जिन्होंने साहस एवं निर्भीकता से अपनी प्रौढ़ परिमार्जित लेखनी द्वारा जैन पत्रों में अनेक लेख लिखकर समाज को जैन साहित्य में प्राप्त विसंगतियों से बचने के लिए आगाह किया। ऐसी ही श्रृंखला में उन्होंने सूर्य प्रकाश-परीक्षा के सन्दर्भ में भी अनेक तथ्यों को उद्घाटित कर समाज को सावधान किया। जैन समाज में ग्रंथों की परीक्षा के मार्ग को स्पष्ट एवं प्रशस्त बनाने वाले पं. जुगल किशोर मुख्तार की लेखमाला "जैन जगत्" में 16 दिसम्बर सन् 1931 के अंक से प्रारंभ होकर जनवरी 1933 तक के अंकों में दस लेखों द्वारा प्रगट हुई थी। उसको ही पुनः संशोधित करके समाज उपकार की दृष्टि से एक पुस्तक का प्रकाशन जनवरी 1934 में किया गया, जो सूर्य प्रकाश-परीक्षा (ग्रन्थ परीक्षा चतुर्थ भाग 1) के नाम से प्रसिद्ध है।

आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार "युगवीर" के साहित्यिक जीवन का प्रारंभ ग्रन्थ परीक्षा और सामीक्षा से ही आरंभ होता है। वे ग्रंथ के वर्ण्य-विषय के अन्तस्तल में प्रविष्ट होकर उसके मूल स्त्रोतों का चयन करते हैं, पश्चात् उसका परीक्षण करते हैं और इसके बाद उनकी प्रामाणिकता का निर्धारण करते हैं। डा. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ने लिखा है "आचार्य जुगलकिशोर की ग्रंथ परीक्षाएं में समीक्षा शास्त्र की दृष्टि से शास्त्रीय मानी जायेगी। यों इनमें ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, निर्णयात्मक एवं तात्विक समीक्षा के रूपों का भी मिश्रण पाया जाता है। ग्रंथ परीक्षा के अन्तर्गत जितने ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर विचार किया गया है वे सभी ग्रंथ समीक्षा के अन्तर्गत आते हैं।

ग्रंथ परीक्षा के दो भागों का प्रकाशन सन् 1917 ई. में हुआ था। ये दोनों तो भाग परम्परागत संस्कारों पर कशाघात थे। भट्टारकों के द्वारा की गयी विकृतियों के मूर्तिमान विश्लेषण थे। यही कारण है कि नाथूराम प्रेमी ने प्राक्कथन में लिखा है "आपके इन लेखों ने जैन समाज को एक नवीन युग का सन्देश सुनाया है और अन्ध श्रद्धा के अंधेरे में निद्रित पड़े हुए लोगों को चकाचौंध देने वाले प्रकाश से जागृत कर दिया है। यद्यपि बाह्य दृष्टि से अभी तक इन लेखों का कोई स्थूल प्रवाह व्यक्त नहीं हुआ है तो भी विद्वानों के

अन्तरंग में एक शब्दहीन हलचल बराबर हो रही है, जो समय पर अच्छा परिणाम लाये बिना नहीं रहेगी।''

सभी ग्रंथों में निबद्ध वर्ण्य-विषय को आप्त पुरुष की वाणी न मानकर हमें उसका निर्णय करके ही अध्ययन, मनन और चिन्तन की दिशा में प्रवृत्त होना चाहिए। डॉ. नेमिचन्द ज्योतिषाचार्य ने लिखा है ''निःसन्देह पं. जुगलकिशोर जी प्रकाण्ड विद्वान और समाज सुधारक हैं। उन्होंने अन्धविश्वासों और अज्ञानपूर्ण मान्यताओं का बड़ी ही निर्भीकतापूर्वक निरसन किया है। वे अपने द्वारा उपस्थिति किये गये तथ्यों की पुष्टि के लिए प्रमाण, तर्क और दृष्टान्तों को उपस्थित करते हैं। वे नये युग के निर्माण में अग्रणी चिन्तक तथा गवेषणापूर्ण लेखक हैं।''

सत्य के दर्शन बड़े सौभाग्य से मिलते हैं। दर्शन होने पर उस तक पहुंचना बड़ी वीरता का कार्य है और पहुंच करके चरणों में सिर झुकाकर आत्मोत्सर्ग करना देवत्व से भी अधिक उच्चता का फल है।

शास्त्र की प्रामाणिकता की परीक्षा आवश्यक है। पं. दरबारीलाल कोठिया ने लिखा है ''रत्न-परीक्षा में हम जितना परिश्रम करते हैं उतना भाजी-तरकारी की परीक्षा में नहीं करते। बहुमूल्य वस्तु की जांच भी बहुत करना पड़ती है। धर्म अथवा शास्त्र सबसे अधिक बहुमूल्य हैं उस पर हमारा ऐहिक और पारलौकिक समस्त सुख निर्भर है। उसका स्थान मां एवं पिता से बहुत ऊंचा तथा महत्वपूर्ण है, इसलिए अगर हम सब पदार्थों की परीक्षा करना छोड़ दें तो भी शास्त्र की परीक्षा करना हमें आवश्यक ही रहेगा।

'शासनात् शंसनात् शास्त्रं शास्त्रमित्यमिधीयते' अर्थात् शब्द की व्युत्पत्ति दो धातुओं से हुई है। शास् (आज्ञा करना) तथा शस् (वर्णन करना)। शासन अर्थ में शास्त्र शब्द का प्रयोग धर्मशास्त्र के लिए किया जाता है। शंसक शास्त्र (बोधक शास्त्र) वह है जिसके द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरूप का वर्णन किया जाये।

सूर्यप्रकाश ग्रंथ की अधार्मिकता और अनौचित्य का मुख्तार साहब ने सम्यक् प्रकार से दिग्दर्शन कराया है। मोक्षमार्ग में सम्यक् श्रद्धा कार्यकारी है

परन्तु अन्ध श्रद्धा को कोई स्थान नहीं है। समय-समय पर शिथिलाचार के पोषक लोगों ने विभिन्न ग्रंथों के उद्धरणों को इधर-उधर से जुटाकर उनको प्रतिष्ठित आचार्यों के नाम के साथ जोड़कर समाज को गुमराह किया है। श्रद्धालु समाज ऐसे ग्रंथों को भी जिनवाणी के समान बहुमान देती रही परन्तु पं. जुगलकिशोर मुख्तार ने इनकी प्रामाणिकता की शास्त्रीय आलोक में कसौटी पर कसकर परीक्षा की तथा मनगढ़न्त तथ्यों के आधार पर निबद्ध ग्रंथों को शास्त्र की कोटि में स्थापित करने का प्रबल विरोध किया क्योंकि कुशास्त्रों को सम्मान प्रदान करना विष-वृक्ष को सींचने के समान माना गया है।

ग्रंथ परीक्षा चतुर्थ भाग में सूर्य प्रकाश परीक्षा के बारे में अनेक तथ्यों को उद्धृत करते हुए उन्होंने लिखा है कि सूर्य प्रकाश ग्रंथ के अनुवादक-सम्पादक ब्र. ज्ञानानन्द जी महाराज (वर्तमान क्षुल्लक ज्ञानसागर महाराज) ने निर्माण काल विषयक श्लोक का अर्थ ही नहीं दिया, जबकि उसी प्रकार के अनेक संख्यावाचक श्लोकों का ग्रंथ में अर्थ दिया है, जिसका अर्थ नहीं दिया, वह श्लोक निम्न है।

अंकाभ्रनंदेंदु प्रमे हि चाब्दे मित्रादि-शैलेन्दु-सुशाकयुक्ते।
मासे नामाख्ये शुभनदघस्त्रे विरोचनस्यैव सुवारके हि॥

इस श्लोक से स्पष्ट है कि यह ग्रंथ वि. सं. 1909 तथा शक सं. 1774 के श्रावण मास में शुक्ल नवमी के दिन रविवार को बनकर समाप्त हुआ है। श्लोक का अर्थ न देने में अनुवाद का यह खाश आशय रहा है कि सर्वसाधारण में यह बात प्रकट न हो जाये कि ग्रंथ इतना अधिक आधुनिक है अर्थात् इस बीसवीं शताब्दी का ही बना हुआ है।

प्रतिपक्षियों के विरुद्ध कर्कश शब्दावली में उन पर अनेक प्रहार किये गये हैं जो शास्त्रीय शब्दावली के अनुरूप नहीं है। जैन परम्परा में भाषा संयम पर विशेष बल दिया गया है। प्रतीपक्षी को बहुमानवृत्ति के साथ सयुक्तिक ढंग से शास्त्रों में समझाया गया है। इस ग्रंथ में ढूंढियों को मूर्ख, मूढ़ मानस, खलात्मा, श्वपचवत निशाचरसम जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जो शास्त्रीय गरिमा के अनुरूप नहीं है।

धर्म और धन की विचित्र ढंग से तुलना की है। ग्रंथ में पंचमकाल के मनुष्यों को निर्धन बतलाया है, फिर वे बिना धन के व्रत कैसे करेगा। तब तो व्रत का वह फल उनके लिए नहीं बनता। उत्तर में भगवान ने कहा राजन्! यदि पूर्व पापों के उदय से घर में दरिद्र हो तो काय से प्रोषध सहित दोगुना व्रत करना चाहिए। यथा–

भवद्भिः कथिता मर्त्या निःस्वा हि पंचमोद्भवाः।
करिष्यन्ति कथं वृत्तं तद् करते नास्ति तत्फलम्॥
गृहे यदि दरिद्रः स्यात्पूर्वपापोदयति् नृपः।
कार्येन द्विगुणं कार्यव्रतं पौषधसंयुतम्॥ 30, 31

व्रतों के अनन्तर धन के खर्च का काम सिर्फ अभिषेक पुरस्सर पूजन के करने और पारण के दिन एक पात्र को भोजन कराने में ही होता है जिसका औसत अनुमान 200 रुपये के करीब होता है। यहां यह भी स्पष्ट किया गया कि यह सब खर्च न उठाकर शुद्ध प्रासुक जल से ही भगवान का अभिषेक कर लिया करे तो वह व्रत का फल नहीं पा सकेगा। धर्माचरण में इस प्रकार धन की यह विचित्र कल्पना करके भोले-भाले श्रावकों को मोक्ष प्राप्ति कराने के ब्याज से कैसे-धन प्राप्ति की सुनियोजित योजनायें निरुपित कीं, जबकि जैनधर्म में व्रतों का लक्ष्य परिणामों में विशुद्धता लाना है। स्व. पं. जुगलकिशोर मुख्तार ने समीक्षा में यह लिखा है कि इस व्यवस्था को व्रत विधान कहा जाये या दण्ड विधान अथवा एक प्रकार की दुकानदारी, धन को इतना महत्त्व दिया जाना जैनधर्म की शिक्षा में नितान्त बाहर है। लगता है भट्टारकों ने धर्म के नाम पर धनार्जन की सुनियोजित योजनायें बनाकर भोले-भाले श्रावकों को इस प्रकार करने को विवश कर दिया।

ध्यान और तप का उपेक्षा दृष्टि से वर्णन किया गया। यहां तक कह दिया कि 'तपो के समूह को और ध्यानों के समूह को मत करो किन्तु जीवन भर बार-बार सम्मेद शिखर का दर्शन किया करो' उसी के एक मात्र पुण्य से दूसरे ही भव में निःसन्देह शिवपद की प्राप्ति होगी।

भव्यत्व की अपूर्व कसौटी के रूप में उन जीवों को भव्य बतला दिया गया है जो सम्मेद शिखर पर स्थित हों अथवा जिन्हें उनका दर्शन हो सके,

चाहे वे भील, चाण्डाल, म्लेच्छादि मनुष्य, सिंह, सर्पादि पशु, कीड़े-मकोड़े आदि क्षुद्र जन्तु और वनस्पति आदि किसी भी पर्याय में क्यों न हों और साथ ही यह भी लिख दिया कि वहां अभव्य जीवों की उत्पत्ति ही नहीं होती और न अभव्यों को उक्त गिरिराज का दर्शन ही प्राप्त होता है। इस प्रकार लिखने का उद्देश्य ही भट्टारकों का अपने स्वार्थ साधन का था। धीरे-धीरे तीर्थस्थान महन्तों की गद्दियां बन गये और जैनेतर परम्परा में तीर्थों के महात्म्य के समान स्वयं की महत्ता की भावना भी लोगों में भर दी।

सम्यग्दर्शन का विचित्रलक्षण उन्होंने लिखा जो आचार्य प्रणीत ग्रंथों के बिल्कुल विपरीत है यथा-

सम्यग्दृष्टेरिदं लक्षणं यदुक्तं ग्रन्थकारकैः।
वाक्यं तदेव मान्यं स्यात्, ग्रन्थ वाक्यं न लंघयेत?॥ 615

अर्थात् ग्रंथकारों ने (ग्रंथों मे) जो भी वाक्य कहा है उसे ही मान्य करना और ग्रंथों के किसी वाक्य का उल्लंघन नहीं करना, सम्यग्दर्शन का लक्षण है जिसकी ऐसी मान्यता अथवा श्रद्धा हो वह सम्यग्दृष्टि है। इस श्लोक में यह जो लक्षण दिया गया है वह पूर्व आचार्यों के बिल्कुल विपरीत ही है जिसमें यह भावना स्पष्ट परिलक्षित होती है कि जो कुछ शिथिलाचारी भट्टारकों ने लिख दिया, उसे शास्त्रों के समान ही प्रामाणिक मानकर पूजा जाये। उनके विरुद्ध कोई लिखने का दुस्साहस ही न करे।

जैन परम्परा में प्रतिपादित कर्म सिद्धान्त के विरुद्ध अनेक मनगढंत बातों को निरुपित किया गया। जैसे एक स्थान पर लिखा है कि म्लेच्छों से उत्पन्न हुए स्त्री-पुरुष मरकर व्रतहीन मनुष्य (स्त्री-पुरुष) होते हैं। यथा

म्लेच्छोत्पन्ना नरा नार्यः मृत्वा हि मगधेश्वरः।
भवन्ति व्रत हीनाश्च इमे वामाश्च मानवाः॥

इस विधान के द्वारा ग्रन्थकार ने कर्म सिद्धान्त की एक बिल्कुल ही नई परिभाषा ईजाद कर डाली है क्योंकि जैन कर्म सिद्धान्त के अनुसार म्लेच्छ सन्तानों के लिए न तो मनुष्यगति में जाने का ही कोई नियम है, जिसे सूचित

करने के लिए ही यहां 'मानवा:' पद का खाश तौर से प्रयोग किया गया है, वे दूसरी गतियों में भी जा सकते हैं और जाते हैं और न अगले जन्म में व्रतहीन हो ही उनके लिए आवश्यक है। व्रतहीन होने के लिए चारित्र मोहनीय का एक भेद अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय कारण माना गया है और चारित्र मोहनीय में आस्रव का कारण 'कषायोदयात् तीव्रपरिणामश्चारित्रयमोहस्य' इस सूत्र के अनुसार कषाय के उदय से तीव्र परिणाम का होना कहा गया है न कि किसी म्लेच्छ की सन्तान होना। म्लेच्छ की सन्तानें तो अपने उसी जन्म में व्रतों का पालन कर सकती है और महाव्रती मुनि तक हो सकती हैं तब उनके लिए अगले जन्म में आवश्यक रूप से व्रतहीन होने की कोई वजह ही नहीं हो सकती। इस प्रकार मनगठित तरीके से शास्त्रीय सिद्धान्तों के विपरीत विचारों की पुष्टि का वर्णन किया गया, जिससे इस प्रकार के ग्रन्थ श्रावक को विपरीत दिशा की ओर उन्मुख कर पतित बनाते हैं।

इस प्रकार जिनवाणी ने नाम पर समय समय पर शिथिल आचार के पोषक लोगों ने अनेक मनगढंत सिद्धान्तों को समाविष्टकर निर्मल वीतरागमय धर्म में अनेक विकृतियों को उत्पन्न किया है। आज भी अनेकों लोग इस प्रकार की प्रवृत्ति में संलग्न पाये जा रहे हैं। अपनी कलुषित मनोवृत्तियों के अनुसार जिनवाणी के शब्दों का विपरीत अर्थ करके अथवा मनमाने अर्थ निकालकर भोले-भाले श्रावकों को ठगाने का प्रयास कर रहे हैं। जैन परम्परा मे वही वचन पूज्य हैं जो वीतरागता से सम्बन्ध रखते हैं। जिनवाणी या निजवाणी का कोई महत्व नहीं है। हमारी दृष्टि में "जो सत्य सो मेरा" यह भावना होनी चाहिए न कि "जो मेरा सो सत्य"। हम सत्यग्राही दृष्टिकोण वाले बनें। सिद्धान्तों को यथार्थता की कसौटी पर कसकर ही उनका अनुगमन करें तो अभ्युदय या नि:श्रेयस की प्राप्ति होगी अन्यथा हमसे परमार्थ तो कोसों दूर है। आज स्वर्गीय पंडित जुगलकिशोर मुख्तार जैसे विद्वानों की आवश्यकता है जो निष्पक्ष रूप से वर्तमान समय में जैनधर्म के अनुयायियों में पनपती हुई विकृत मानसिकताओं को उजागर कर समाज को दिग्भ्रमित होने से बचा सकें। साहित्य मनीषी की सेवाओं के प्रति वन्दना करता हुआ कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

पुरातन जैन वाक्य सूची : एक अध्ययन

अरुण कुमार जैन, ब्यावर (राज.)

बहुविधविद्या पारावारीण, वाङ्मयाचार्य पं. जुगलकिशोर मुख्तार इतिहास एवम् जैन साहित्य के अन्वेषण पर्यवेक्षण, परीक्षण, के क्षेत्र में एक दैदीप्यमान नक्षत्र हैं। वे मानवतावादी कवि, सफल समीक्षक, तलस्पर्शी भाष्यकार, प्रखर तार्किक, सुतीक्ष्ण आलोचक, बहुश्रुत निबन्धकार, गहनगवेषक, और महान् अध्येता हैं। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन साहित्येतिहास की रचना एवम् साहित्य के परिशीलन में समर्पित कर दिया। स्वनामधन्य मुख्तार साहब कर्मठ व्यक्तित्व के धनी एक लौहपुरूष थे। उनके भागीरथ अध्यवसाय चंचुप्रवेशी बुद्धि के फलस्वरूप जैनाचार्यों के कालनिर्धारण के अनेक जटिल प्रश्न हल हुए, जैनाभासी अनेक ग्रन्थों की कलई खुली, काल के गाल में समाते अनेक ग्रन्थरत्न प्रकाश में आ सके। उनके लेखों और व्याख्यानों से समाज और धर्म के क्षेत्र में व्याप्त अनेक विसंगतियों। रूढ़ियों/मिथ्यामान्यताओं का निरसन हुआ! जैन वाङ्मय की तत्कालीन दुर्दशा देखकर अपने आर्थिक लाभदायक मुख्तारी के पेशे को तिलाञ्जलि देकर जैन विद्या के अनुसन्धान परिशीलन के कंटकाकीर्ण मार्ग का वरण किया।

वे चाहते तो अपने मुख्तारी कार्य से उस जमाने में प्रचुर धन एकत्र करके भौतिक सुख-साधनों के उत्तमोत्तम भोगों आस्वादन कर सकते थे, अपनी रईशी के बल पर समाज को अपनी अंगुलियों पर नचा सकते थे परन्तु तब यत्र-तत्र प्रकीर्ण-विकीर्ण दीमक-भोजन बनने को विवश बहुमूल्य साहित्य का समुद्धरण कौन करता? जैनत्व के नाम पर चल रही मिथ्या रूढ़ियों का भञ्जन कर कौन समाज को सत्पथ पर लाता? और कौन 'समन्तभद्र भारती' के वितान से 'अनेकान्त' की पताका विश्व-गगन में दोलायमान करता?

उनका जन्म ही साहित्य और इतिहास के अनुसन्धान के लिये हुआ, अपनी गहन व्युत्पत्ति, वृहस्पति-सम प्रतिभा और अथक अभ्यास के बल पर

भारतीय विशेषत: जैन वाड्मय का आलोडन कर इस क्षेत्र के उत्तर-विद्वानों को मार्ग प्रशस्त किया। जैन इतिहास और साहित्य के पर्यवेक्षण परीक्षण और आलोचना के वे प्रतिमान हैं। इस विधा के वे ऐसे कृत-वाग्द्वार हैं जिनके द्वारा लिखित ग्रन्थ जैनाचार्यो और उनके ग्रन्थों रूपी मणियों में सूत्र प्रवेशार्थ समुत्कीर्णन का कार्य है। अर्थात् साम्प्रत कालीन सकल शोध-विकास के लिये उन्होंने मार्ग बनाया। निबिड-तमसाच्छन्न ग्रन्थ और ग्रन्थकारों के प्रकाशार्थ अपने अध्ययनपूर्ण आलेखों के दीपक जलाये कि उत्तरकालीन विद्वान् ग्रन्थ और ग्रन्थकारों की परम्परा, ऐतिह्य और उनके प्रतिपाद्य को जानने। समझने में सक्षम हो सकते हैं। आलंकरिक रूप में नहीं, वे वस्तुत: इतिहास, पुरातत्व, शिलालेख और काल निर्धारण-विज्ञान के मील के पत्थर हैं, प्रकाश-स्तम्भ हैं।

लिखित ग्रंथ-

उनके द्वारा लिखित रचनाओं में युगवीर निबन्धावलि, स्वामी समन्भद्र, भवाभिनन्दी मुनि, ग्रन्थ-परीक्षा, जिनपूजाधिकार मीमांसा, जैनाचार्यों का शासन भेद, विवाह समुद्देश्य, विवाह क्षेत्र प्रकाश, उपासना तत्त्व, सिद्धि सोपान, मेरी भावना जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश।

स्व लिखित भाष्य सहित सम्पादित ग्रन्थ हैं - स्वयंभूस्तोत्र भाष्य, युक्त्यनुशासन, रत्नकरण्डश्रावकाचार, (समीचीन धर्म शास्त्र) देवागम-आप्तमीमांसा भाष्य, अध्यात्म रहस्य भाष्य, तत्त्वानुशासन भाष्य योगसार-प्राभृत भाष्य कल्याणमन्दिर स्तोत्र भाष्य तथा स्वयं के अनुसन्धान कार्य के लिये अनेक ग्रन्थों की श्लोकानुक्रमणिका तैयार की/करायी थी, उन सूचियों को अनुसन्धित्सुओं के लाभार्थ "पुरातन जैन वाक्य सूची" नाम से गवेषणापूर्ण विस्तृत प्रस्तावना के साथ प्रकाशित करायी गयीं, आपके द्वारा इन उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी कृतियां लिखी गयी हैं। जैन गजट, जैन हितैषी व अनेकान्त का कुशल सम्पादन कर्म निर्वहन कर संस्कृति-साहित्य और समाज की अभूतपूर्व सेवा की गयी।

प्रस्तुत लेख में "पुरातन जैन वाक्य सूची" अपर नाम जैन प्राकृत पद्यानुक्रमणी का अध्ययन प्रस्तुत हैं। अस्मत्सदृश अल्पज्ञ विद्यार्थी द्वारा वाङ्मयाचार्य प्रणीत वैदुष्यपूर्ण उक्त ग्रन्थ का अध्ययन प्रस्तवन लघुनौका द्वारा सागर-तरण सम कार्य ही है।

अध्येय ग्रन्थ "पुरातन जैन वाक्य सूची" में प्राकृत एवम् अपभ्रंश के 63 ग्रन्थरत्नों की कारिकाओं/गाथाओं/पद्यों की प्रथम चरण/चरणार्द्ध की अकारादिक्रम क्रम से अनुक्रमणिका निबद्ध है इस अनुक्रमाणिका में मुख्तार सा. के सूचीकरण कार्य में डॉ. पं. दरबारी लाल जी कोठिया एवम. पं. श्री परमानन्द जी शास्त्री भी सहायक संपादक रहे हैं।

इस ग्रन्थ का अपरनाम प्राकृत पद्यानुक्रमणी है पर इसमें अपभ्रंश भाषा निबद्ध परमप्पयासु, जोगसार, पाहुड दोहा, सावयधम्म दोहा, सुप्पह दोहा इन पांच ग्रन्थों के पद्यों को भी सम्मिलित किया गया है और स्वयं मुख्तार सा. ने कारण बताते हुए लिखा है अपभ्रंश भाषा भी प्राकृत का ही एक रूप है।[1] प्राकृत ग्रन्थ में षट्खण्डागम ग्रन्थ के सूत्रों को सम्मिलित किया गया है, जो कि पद्यबद्ध हैं। (जिनकी पद्यबद्धता का परीक्षण मुख्तार सा. की प्रज्ञा ने किया) अतः कुल ग्रंथ 64 हो जाते हैं। परिशिष्ट में टीकादि ग्रन्थों में "उक्तंच" करके उद्धृत पद्यों की सूची भी प्रस्तुत की गयी है, तथा जिन पद्यों का आधार मुख्तार सा. खोज सकें, उनका सन्दर्भ प्रस्तुत किया, शेष को अद्यावधि अज्ञात हैं।

पद्यानुक्रमणी में कुल 25352 पद्य संगृहीत हैं जिनमें से 24608 के सन्दर्भ गहन अन्वेषण यहाँ प्रस्तुत हैं।

प्रकृत ग्रन्थ में सूची से पूर्व रायल एशियाटिक सोसायटी बंगाल के महामन्त्री श्री कालीदास नाग का FORWORD एवम् डॉ. प्रो. ए. एन. उपाध्ये के Introduction के साथ ग्रन्थ की महिमा में चार चाँद लगाने वाली गहन अध्यवसायपूर्ण, गवेषणात्मक और विस्तृत प्रस्तावना है, जो गुणत्मक एवम् परिमाणात्मक इस प्रस्तावना में संकलित पद्य ग्रन्थ और उनके ग्रन्थकारों पर गवेषणापूर्ण तथ्यात्मक जानकारी एवम् शोधपूर्ण सामग्री सुलभ कराते हैं।

ग्रन्थ-योजना का उद्देश्य

संस्कृति के अमरत्वार्थ एवम् उन्नयनार्थ साहित्य का अन्वेषण संरक्षण अध्ययन, व तन्निहित ज्ञान-राशि का विवरण अत्यावश्यक हैं। हमें खेद है कि हमारी समाज अपने ऐतिहासिक साक्ष्यों पुरालेखों और साहित्य के संरक्षण की दिशा में वर्षों तक सोयी रही, उस युग में पं नाथूराम प्रेमी पं. गोपालदास वरैया, ब्र. शीतलप्रसाद वेरिष्टर चम्पतराय के शिक्षा-प्रचार के अलावा कहीं कोई प्रकाश की किरणें दिखायी नहीं देती थी। उक्त समाजसेवी साहित्यजीवी, जीवन-बलिदानी महाभागों की गणना में कनिष्ठिकाधिष्ठित मुख्तार सा. ने ग्रन्थों की परीक्षा करने हेतु, ग्रन्थोल्लिखित गाथाओं के मूल उत्स की खोज करते समय, असली और नकली की पहिचान विभिन्न ग्रन्थों में पाये जाने वाले प्रशिप्तांशों के निर्णय के लिये अनुभव किया कि यदि सभी ग्रन्थों के पद्य सानुक्रम एकत्र उपलब्ध हों तो पद्यों के मूलकर्ता का ज्ञान, उनके काल निर्णय में सहायता मिल सकती है।

प्राच्य ग्रन्थों के अध्ययनकर्ता जानते हैं कि अनेक ग्रन्थों में एक सी गाथाएँ, श्लोक उपलब्ध होते हैं, किन्हीं ग्रन्थों में तो 'उक्तं च' करके उल्लेख मिलता है, परन्तु अनेक ग्रन्थों में तो पता ही नहीं चलता कि अमुक मूलकर्त्तृकृत है या अन्य ग्रन्थ से उद्धृत है। यदि अन्य ग्रन्थ से उद्धृत है तो किस ग्रन्थ का है, तब समीचीन निर्णय हेतु ऐसे सूचियाँ ही उपयोगी हुआ करती हैं। पण्डित-पुंगव मुख्तार महानुभाव ने बहुश्रम साध्य प्रकृत वाक्य सूची का निर्माण ग्रन्थाध्येता, ग्रन्थ सम्पादक, अनुसन्धित्सुओं के उपकारार्थ किया।

सूची सुसंबद्ध, सुसंगत है और इसमें शुद्धता का ध्यान रखा गया है। परिशिष्टों में टीका-समागत उद्धरण पृथक् से समाहित कर इसकी उपयोगिता को वृद्धिंगत किया गया है। सूची में समागत पद्यों को, जो मुद्रित प्रतियों में और हस्त लि. ग्रंथों में अशुद्ध थे उन्हें भी शुद्ध करके रखा गया है। २५००० से अधिक पद्यों की सूची में, जिनमें से अनेक हस्तलिखित प्रतियों से तैयार की गयी, बहुत सम्भावना थी कि कुछ पद्यावाक्य छूट जायें, पर बहुत कम ही छूट सके, जिन्हें पुनर्जांच कर परिशिष्ट में जोड़ दिया गया इस प्रकार प्रमाणिकता,

और पूर्णता यथेष्ट सावधानी का उदाहरण है यह ग्रन्थ। ग्रन्थ का अति महत्वपूर्ण भाग उसकी प्रस्तावना है, जैन वाङ्मय के अध्येता जानते हैं कि मुख्तार सा. प्रस्तावना लेखन में ग्रन्थ सम्पादकों के आदर्श रहे हैं। आपकी प्रस्तावना में ग्रन्थ ग्रन्थाकार विषयक अनेक अस्पृष्ट प्रसंग और तथ्य समाहित रहते हैं। उनकी सूक्ष्मेक्षण प्रज्ञा एवम् विशाल वाङ्मय के श्रुताराधन के कारण ग्रन्थ और ग्रन्थकार विषयक तत्त्व हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष हो जाते हैं। ग्रन्थकार का काल निर्धारण हो या ग्रन्थ की गहन छानबीन हो, किसी भी विषय पर जब वे लेखनी चलाते हैं तब एक-एक मन्तव्य की उपस्थापना में अनेक तर्क प्रस्तुत कर देते हैं। अपने मत की उपस्थापना एवम् भ्रान्तियों के निराकरण में वे ग्रन्थ-विस्तार से भयभीत नहीं होते। अत: अनेक ग्रन्थों पर बहुअध्ययन परक गहन अनुसन्धान समन्वित एवम् प्रमाण-बहुल उनकी प्रस्तावनाएं मूल ग्रन्थोऽधिक या द्विगुणायित हो जाती हैं।

प्राकृत ग्रन्थ की प्रस्तावना में सर्वप्रथम आचार्य कुन्दकुन्द और उनके ग्रन्थों का परिचय प्रस्तुत हैं, आपने कुन्दकुन्द का मूलनाम पद्मनन्दी आचार्य मानते हुए श्री देवसेनाचार्य के दर्शनसार[२] की गाथा एवम् श्रवणबेलगोला के शिलालेख का पद्य[३] उद्धृत किया है। ग्रन्थ का परिचय प्रस्तुत करते समय - ग्रन्थ-परिमाण, ग्रन्थ मंगलाचरण, ग्रन्थान्त्य प्रशस्ति ग्रन्थवर्ण्य विषय का तो वे पूर्ण परिचय के साथ विचार करते ही हैं, यदि टीकाकार या ग्रन्थ कृत-प्रतिज्ञा वाक्य से ग्रन्थ परिमाण में आधिक्य या न्यूनत्व हो तो समुचित अन्वेषण एवम् तर्कपूर्ण समाधान प्रस्तुत करते हैं। यथा प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय की गाथा-संख्या अमृतचन्द्रचार्य के अनुसार क्रमश: २७५, ४१५ व १७३ जबकि जयसेनाचार्यानुसार ३११, ४३९ व १८१ का उल्लेख करके सूची में भी जयसेन पाठानुसार (ज.) शब्द से इंगित किया है।[४]

बोधपाहुड की गाथा[५] "सद्दवियारों हूओ मासासुत्तेसु जं जिणे भणियं" में उल्लिखित कुन्दकुन्द के गुरू भद्रबाहु को भद्रबाहु द्वितीय स्वीकार किया है। प्रमाण बहुत सटीक है - "सद्दवियारों" पद, क्योंकि प्रथम भद्रबाहु श्रुतकेवली थे उनके काल में जिनकथित श्रुत में विकार उत्पन्न नहीं हुआ था।

भाव-पाहुड ग्रन्थ परिचय में उनका अन्वेषण परक कथन है कि आत्मानुशासन ग्रन्थ में गुणभद्राचार्य उनका अनुसरण करते हैं।

रयण सार ग्रन्थ परीक्षण में गाथाविभेद, विचार पुनरावृत्ति, अपभ्रंश पद्यों की उपलब्धि, गणगच्छादि उल्लेख और बेतरतीबी आदि के कारण यह सन्दिग्ध ही है कि इसके कर्ता कुन्दकुन्द ही हैं।

''थोस्सामि थुदि'' अपरनाम तित्थयरभत्ति के छन्दों की श्वेताम्बर पाठ से तुलना की गयी है जिस पर न्यूनाधिक पाठ से यह उभय संप्रदाय मान्य बतलाया है।

प्रस्तावना में तिलोयपण्णत्ति और यतिवृषभ विषयक इतिहास मर्मज्ञ नाथूराम प्रेमी एवम् सिद्धान्त ग्रन्थों के ख्यातिलब्ध सम्पादक पं. श्री फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री के मतों के आधारभूत तर्कों की गहन पर्यालोचना करके उनका ग्रन्थान्त: साक्ष्य वहि: साक्ष्य आदि समर्थ प्रमाणों से निरसन किया है।

प्रस्तावना में अन्य मतों की समीक्षा में उनकी विवेचन और विश्लेषण की विधि में सर्वत्र उनकी सूक्ष्मेक्षिका प्रतिभा निदर्शित होती है एक-दो प्रमाण उपस्थापित करके ही वे शान्त नहीं होते, अपितु प्रमाणों की भरमार से विपक्षी को विस्मित कर देते हैं; बगले झाँकने को मजबूर कर देते हैं।

प्रकृत प्रस्तावना ज्ञान विज्ञान की सामग्री से भरपूर है और विद्वानों को मनन चिन्तन के नव-आयाम प्रदान करने वाली है। प्रस्तावना से उनके विशाल ऐतिहासिक ज्ञान की महत्ता तो प्रकट होती ही है साथ में विषय विश्लेषण की अपूर्व क्षमता प्रकाशित होती है। ग्रन्थ के अन्तरंग और बहिरंग स्वरूप के विश्लेषण में, उनकी दृष्टि सतीक्ष्ण है। ग्रन्थ के स्रोत और सन्दर्भों का तुलनात्मक अध्ययन, एक-समान अर्थ वाले सन्दर्भों की खोज शब्द के विविधरूपों पर विचार सम्यक् पाठ निर्णय ग्रन्थ का संक्षिप्त वर्ण्य विषय, तथा उसका तुलनात्मक अध्ययन, ग्रन्थकार का परिचय, अन्तरंग बहिरंग प्रमाणों के आधार से ग्रन्थकार का काल निर्धारण गुर्वावली के आलोचन पूर्वक गुरू परम्परा का निर्धारण ग्रन्थकार वैदुष्य आदि के पर्यालोचन प्रणाली ने उन्हें अनुसन्धाताओं का शिरोमणि बना दिया।

मुख्तार सा. का यह ग्रन्थ जैन वाङ्मय का अनुपम ग्रन्थ है। ग्रन्थ निर्माण से आपने जैन विद्या के क्षेत्र में अनुसन्धान, शोध और पर्यालोचन के दुरूह कार्य को सहज संभाव्य कर दिया है।

सन्दर्भ

1. पुरातन वाक्यसूची-प्रस्तावना पृ. 9
2 जह पउमणंदि णाहो, सीमंधर सामि दि काणायेण।
 ण विवोहइ तो समण्ण कहं समुग्गं पयाणति॥ दर्शनासार-43
3 तस्यान्वये भूविदिते वभूव यड पद्मनन्दि प्रथमाभिधानः
 श्री कौण्डकुण्डादि मुनीश्वराख्यस्सत्संयमादुद्गत चारणार्द्धिः॥ श्र शि. नं. 40
4 प्रस्तावना पृ. 13
5 वोध पाहुड़ गाथा 5

द्वेमे, भिक्खवे, बाला। यो च अच्चयं अच्चयतो न पस्सति,
यो चे अच्चयं वेंसेंतस्स तथा धम्मं नप्पटिग्गण्हाति।

भिक्षुओं! दो प्रकार के मूर्ख होते हैं–एक वह जो अपने अपराध को अपराध के तौर पर नहीं देखता है, और दूसरा वह जो दूसरे के अपराध स्वीकार कर लेने पर भी क्षमा नहीं करताहै।

[पालि] –संयुत्तनिकाय (१।११।२४)

जेण विणा ण जिविज्जइ अणुणिज्जइ सो कआवराहो वि।

जिसके बिना जीना संभव नहीं, उससे अपराध होने पर भी उसे क्षमा कर देते हैं।

[प्राकृत] –हाल सातवाहन (गाथा सप्तशती, २।६३)

समीचीन धर्मशास्त्र - रत्नकरण्ड श्रावकाचार का भास्वर भाष्य

प्राचार्य निहालचंद जैन, बीना (म. प्र.)

जैन दार्शनिकों में अग्रगण्य स्वामी समन्तभद्र ने एक ओर जहाँ आप्त-मीमांसा और युक्त्यनुशासन जैसे महान दार्शनिक-ग्रन्थों का प्रणयन किया, वहीं जीवन और आचार से संबंधित एक अमूल्य दस्तावेज़ ''रत्नकरण्डश्रावकाचार'' का सृजन करके जैनाचार का शिलालेख लिख दिया है। स्वामी समन्तभद्र ने ऐसे धर्म का उपदेश दिया जो दुःखों से उपरत कर शाश्वत-सुख की ओर ले जाता है। वह धर्म-रत्नत्रय रूप-सम्यक्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र स्वरूप है। यही समीचीन धर्म है। इसे व्याख्यापित करने वाला शास्त्र, वस्तुतः ''समीचीन धर्मशास्त्र'' है।

''समीचीन धर्मशास्त्र'' पण्डितप्रवर जुगलकिशोर मुख्तार जी द्वारा लिखा गया रत्नकरण्ड श्रावकाचार पर प्रथम/प्रामाणिक-भाष्य है, जिसे उन्होंने अनेक व्यवधानों और शारीरिक कष्टों के बीच 1953 के अंत में पूरा किया।

पण्डित जुगलकिशोर मुख्तार साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन की परम्परा को स्थापित करने वाले एक युगान्तर संस्थापक माने जाते हैं। डा. मंगलदेव शास्त्री ने आपको उन विरले विद्वानों में परिगणित किया जो शास्त्रों के उपदेशों को जीवन में उतरना चाहते हैं। पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनकी सृजनधर्मिता पर अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा था - ८२ वर्ष की उम्र में आप जितना काम कर ले जाते हैं उतना अनेक युवक भी नहीं कर सकते।

समीचीन धर्मशास्त्र पर पूज्य गणेश प्रसाद वर्णी जी ने सम्मति देते हुए लिखा कि यह महान् ग्रन्थ श्री समन्तभद्र स्वामी का जैसा रत्नों का पिटारा है उसी प्रकार इसको सुसज्जित/विभूषित करने वाले हृदयग्राही विद्वान् का भाष्य है। डॉ. ए. एन. उपाध्ये ने अपने प्राक्कथन में इसे अनुपम कृति बताते हुए

मानवीय-मूल्यों के सम्बर्द्धन में एक भास्वर-भाष्य कहा। अपनी 119 पृष्ठीय शोधपूर्ण प्रस्तावना में कुछ विशिष्ट बिन्दुओं पर पण्डित मुख्तार साहब ने प्रकाश डाला है। यथा-

(1) उन्होंने यह सिद्ध किया कि इस ग्रन्थ को समन्तभद्र नाम के किसी अन्य विद्वान ने बनाया है, यह संदेह, निरा-भ्रम है और पूर्णतः निरर्थक है। उन्होंने तर्क द्वारा प्रमाणित किया कि छह समन्तभद्र हुए हैं-

लघु समन्तभद्र, चिक्क समन्तभद्र, गेरूसोधे समन्तभद्र, अभिनव समन्तभद्र एवं गृहस्थ समन्तभद्र परन्तु किसी के साथ 'स्वामी' शब्द नहीं है जबकि रत्नकरण्ड श्रावकाचार के प्रणेता आचार्य समन्तभद्र के साथ 'स्वामी' शब्द लगा है। जो "देवागम स्तोत्र" आदि के भी प्रणेता हैं।

(2) प्रो. (डॉ.) हीरालाल जी ने 'रत्नकरण्ड' ग्रन्थ को स्वामी समन्तभद्र की रचना नहीं माना और 'क्षुत्पिपासा.....' नामक पद्य में दोष का स्वरूप बताकर एक नये संदेह को जन्म दिया। भाष्यकार ने इसका निर्मूलन अपनी प्रस्तावना में किया है। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार मिट्टी और पानी के बिना बीज का अंकुरोत्पादन सम्भव नहीं होता, उसी प्रकार सर्वज्ञकेवली के मोहनीय कर्म के नष्ट हो जाने से (चारों घातिया कर्मों का अभाव हो जाने से) वेदनीय कर्म दु:खोत्पादनादि में असमर्थ रहता है, अतः उनमें क्षुत्पिपासा आदि दोष नहीं पाये जाते। यदि क्षुधादि वेदनाओं के उदयवश केवली में भोजनादि की इच्छा उत्पन्न होती तो उसके मोहकर्म का अभाव नहीं कहा जा सकता क्योंकि इच्छा ही मोह का परिणाम है। क्षुधादि की पीड़ायथाख्यातचारित्र की विरोधी है। क्षुधादि छठें गुणस्थान में होते हैं, जबकि केवली का तेरहवां गुणस्थान होता है। अतः केवली के भोजनादि का होंना उनके पद के विरुद्ध पड़ता है।

उन्होंने अपने पाण्डत्य के द्वारा पाँच तर्क प्रस्तुत करते हुए केवली के क्षुत्पिपासा दोष का निर्मूलन कर श्वेताम्बर परम्परा का अनेकान्त से खण्डन किया।

(3) अपनी शोधपूर्ण प्रस्तावना में मुख्तार सा. ने पण्डित पन्नालाल जी बाकलीवाल (1898) के संदेह का भी समाधान किया। बाकलीवाल सा. ने 21 पद्यों को 'क्षेपक' होने का संदेह किया। 'क्षेपक' यानी ऐसे पद्य जो अन्य

ग्रन्थों से सन्दर्भ हेतु लिये गये हों और बाद में मूल ग्रन्थ के अंग बन गये हों। भाष्यकार ने प्रस्तावना के बीस पेजों में इसका उहापोह किया कि उक्त पद्य क्षेपक नहीं है बल्कि मूल ग्रन्थ के हैं।

(4) कुछ विद्वानों ने संदेह का कारण यह भी माना है कि समन्तभद्र स्वामी के अन्य ग्रन्थों में तर्क की प्रधानता पाई जाती है, वह इस ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होती। इसका स्पष्टीकरण भाष्यकार मुख्तार सा. ने दिया कि उस समय श्रावकों में श्रद्धाभक्ति की प्रधानता थी। गुरू के उपदेश से श्रावक व्रत ले लिया करते थे। श्रावक धर्म के लिए तर्क की आवश्यकता नहीं थी।

वस्तुत: तर्क वहाँ होता है, जहाँ विवाद होता है। स्वामी समन्तभद्र ने तर्क का प्रयोग स्व-पर मत के सिद्धान्तों तथा आहारादि विवादग्रस्त विषयों पर ही किया और उनकी परीक्षा के लिए तर्क प्रधान ग्रन्थ लिखे।

परन्तु ऐसा भी नहीं है कि रत्नकरण्ड में कहीं भी तर्क का प्रयोग न किया गया हो। अंगहीन सम्यग्दर्शन को नि:सार बताने के लिए श्लोक 21 दृष्टव्य है। आप्त व आगम की परिभाषा देने के लिए पद्य 8 व 9 लिखे गये जिनमें तर्क का सम्पुट है। इसके अतिरिक्त पद्य नं. 26, 27, 33, 47,48, आदि 20 पद्य और भी हैं जहाँ न्यूनाधिक तर्क शैली का प्रयोग हुआ है।

कुछ श्लोक तर्क-दृष्टि से प्रधान हैं उन्हें सोदाहरण दिया जा रहा है जैसे परमार्थ के 3 गुण विशेष उल्लेखनीय हैं:-

(i) उत्सन्न दोष (निर्दोषता) (2) सर्वज्ञता और (3)आगमेशिता।

निर्दोषता के बिना सर्वज्ञता नहीं बनती और सर्वज्ञता के बिना आगमेशिता असम्भव है। पद 5 एवं मंगलाचरण में इन्हीं तीन बातों को बड़ी तर्क शैली में प्रस्तुत किया गया है:-

आप्तेनोत्सन्न दोषेण सर्वज्ञेनाऽऽगमेशिना

भेत्तारं कर्मभूभृतां (निर्दोषता), विश्वतत्त्वानां ज्ञाता (सर्वज्ञता) तथा मोक्षमार्गस्य नेता (आगमेशी)

(ii) अंगहीन सम्यक्दर्शन- संसार प्रबंध को छेदने के लिए समर्थ नहीं है तर्क दिया - कमती अक्षरों वाला मंत्र सर्प-विष-वेदना को नष्ट करने में असमर्थ है ॥पद 21॥

नाऽङ्गहीन मलं छेत्तुं दर्शनं जन्म-सन्ततिम्।
नहिं मंत्रोऽक्षर-न्यूनो निहन्तिविषवेदनाम्॥ 21॥

भाष्यकार नेअपनी प्रस्तावना में स्वामी समन्तभद्र के शोधपरक जीवन वृत्त को रेखांकित किया है। उन्होंने समन्तभद्र को परीक्षा प्रधानी होने के चारगुणों की व्याप्ति बताई,जिसे भगवज्जिनसेनाचार्य ने आदि पुराण में कही है।

1. कवित्व 2. गमकत्व 3. वादित्व 4. और वाग्मित्व।

कवीनां गमकानां च वादीनां वाग्मिनामपि।
यशः समन्तभद्रीयं मूर्ध्नि चूडामणीयते॥

वादिराज सूरि ने यशोधर चरित में, वादीभिसिंह सूरि ने गद्यचिन्तामणि में, वर्द्धमानसूरि ने वाराङ्गचरित में, शुभचन्द्राचार्य ने ज्ञानार्णव में, भट्टारक सकलकीर्ति ने पार्श्वनाथ चरित्र में, ब्रह्मअजित ने चन्द्रप्रभचरित में अजितसेनाचार्य ने अलंकारचिन्तामणि में, विजयवर्णी ने श्रङ्गारचन्द्रिका में, समन्तभद्र के विविधगुणों का वर्णन किया है, जिन्हें भाष्यकार ने सन्दर्भित पद्यों सहित वर्णन देकर समन्तभद्र स्वामी के बहुआयामी व्यक्तित्व को प्राञ्जलता प्रदान की।

भाष्कार ने इस बात को अपनी व्याख्या का नया आयाम दिया कि धर्म पर अधिकार केवल मनुष्यों एवं देवों का नहीं है वरन् तिर्यंच पर्याय वाले कुत्ते, व हाथी आदि का भी है:- **श्वाऽपि देवोऽपि देवः श्वाजायते धर्म किल्विषात्।**

इसी प्रकार इस बात को बड़ी साहस भरी चुनौती के साथ कहाकि स्वामी समन्तभद्र कितने क्रान्तिकारी व्यक्ति रहे जिन्होंने निर्मोही गृहस्थको मोही-मुनि की अपेक्षा श्रेष्ठ कहा-

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थों निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारोंगृही श्रेयान्, निर्मोहो मोहिनो मुने॥

सामान्यत: मुनि का पद श्रावक से ऊँचा होता है परन्तु सम्यक्‌दर्शन से सहित श्रावक सम्यक्‌दर्शन से रहित मुनि से ऊँचा है। लगभग 5 प्रसंगों के क्षेपकों द्वारा इस मत को सुस्पष्ट किया। जैसे- मोक्खपाहुड समाधितंत्र, विवेकविलास (श्वेताम्बर ग्रन्थ) आदि।

भाष्य की अन्य विशेषताएं:-

(5) मूल ग्रन्थ के मर्म का उद्‌घाटन और उसके पदवाक्यों का स्पष्टीकरण भाष्यकार ने मूल मंगलाचरण पर लगभग 13 पृष्ठों में व्याख्या लिखकर भाष्यकार के ईमानदार होने के गुण का निर्वाहन करते हुए मंगलाचरण के भावों का स्पष्टीकरण दिया। 'प्रसाद' गुण की अनिवार्यता का निर्वाहन करते हुए भाषामें प्रवाह और सम्प्रेषणीयता बनाये रखी।

अनेक ग्रन्थों के सन्दर्भ देकर आपने 'श्री वर्द्धमानाय' पद का विग्रह अर्थ करते हुए श्री पद को विशेषण रूप ही माना। नाम केवल 'वर्द्धमान' ही है- 'श्री वर्द्धमान' नहीं। कल्पसूत्र, उत्तरपुराण प्रवचनसार, विश्वलोचन, स्वयंभूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन आदि ग्रन्थों के सन्दर्भ देकर उसकी पुष्टि की।

उन्होंने तर्क-शैली में वर्द्धमानस्वामी को आप्त की तीनों विशेषताओं से युक्त सिद्ध किया, वे हैं- सर्वज्ञ, वीतरागी और हितोपदेशी।

(6) इस ग्रन्थ का कौन-सा शब्द इसी ग्रन्थ में तथा समन्तभद्र स्वामी के अन्य ग्रन्थों में वे ही शब्द किन-किन अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं इसकी गवेषणात्मक व्याख्या इस भाष्य में दी गई है। इसके साथ शब्दों के अर्थ के यथार्थ का भी निश्चय किया गया। जैसे-एक शब्द आज रूप अर्थ में प्रयुक्त होता है, परन्तु आज से दो हजार वर्ष पूर्व वह अर्थ प्रयुक्त न होता हो? यदि आज के रूढ़ अर्थ में उसका अनुवाद लिखा जावे तो ठीक नहीं है। पाखण्ड का रूप अर्थ है धूर्त (कपटी) परन्तु स्वामी समन्तभद्र ने 'पापं खंडयतीति पांखडी' पाप के खण्डन करने के लिए प्रवृत्त हुए तपस्वी/साधुओं के लिए किया था। इसका समर्थन कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार में किया "पाखण्डिय लिंगाणि य गिहालिंगाणी य वहुप्पयाराणि" ॥ 438 ॥ पाखण्डी लिंग को अनगार-साधुओं का लिंग बताया है।

इस प्रकार यदि शब्द का यथार्थ अर्थ प्रस्तुत न किया जाये तो अनुवाद में ग्रन्थकार के प्रति अन्याय होना सम्भव है।

(7) सम्यक्दर्शन का इतना व्यवस्थित,विशद् एवं महिमामण्डित विवेचन किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं किया गया जितना रत्नकरण्ड में किया गया है। समीचीन धर्मशास्त्र में इसके प्रत्येक पद्य की व्याख्या सांगोपांग की गई है। जैसे श्लोक 11 में इदमेवेदृशं चैवे 'तत्त्वं' - यहाँ तत्त्व पद के साथ कोई विशेषण नहीं है, परन्तु उत्तरार्ध पद में 'सन्मार्गेऽसंशया रूचिः' के साथ जोड़कर देखने पर आप्त, आगम और गुरू अथवा जीव/अजीवादि तत्त्व सभी समाहित कर होना चाहिए ऐसा सुस्पष्ट खुलाशा किया गया है। भाष्यकार ने स्पष्ट किया कि विवक्षा को साथ लिये 'ही' शब्द एकान्त का सूचक न होकर निश्चयादि का बोधक होता है। यहाँ इदं और ईदृशं के साथ एव यानी 'ही' इसी सुनिश्चय का सूचक है।

(8) 'रत्नकरण्ड' की दूसरी मौलिकता पर भाष्यकार ने विशद अभिव्यक्ति दी। वह है ज्ञान के अन्तर्गत चारों अनुयोगों की स्पष्ट परिभाषाएं देना। व्याख्याकार ने प्रथमानुयोग में प्रथम शब्द संख्या वाचक न मानकर प्रधानता का द्योतक कहा। तथा इसकी चार विशेषताओं को रेखांकित किया। करणानुयोग को तीन भागों में विभाजित कर विषयवस्तु का क्षेत्र बताया। चरणानुयोग की व्याख्या में गृहस्थ और मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा को वर्णित किया। द्रव्यानुपयोग को दीपक की उपमा दी। इस प्रकार चारों अनुयोगों के ज्ञान को सम्यक्ज्ञान कहा।

(9) श्रावक के बारह व्रतों में स्वामी समन्तभद्र ने कुछ व्याख्याएं बदली हैं। इसकी तुलनात्मक व्याख्या भाष्यकार ने प्रस्तुत की है। अन्य आचार्यों ने जहाँ भोगोपभोगपरिमाणव्रत को शिक्षाव्रत के अन्तर्गत रखा, वहाँ समन्तभद्र स्वामी ने इसे गुणव्रत के अन्तर्गत समाहित किया। इसी प्रकार देशव्रत को 'शिक्षाव्रत' के अन्तर्गत समाभूत किया। 'अतिथिसम्भाग' को व्यापक शब्द के द्वारा व्याहृत किया और नया नाम दिया 'वैय्यावृत्त'। चारों दान के प्रकरण में जहाँ अन्य आचार्यों ने शास्त्र दान कहा वहीं स्वामी समन्तभद्र ने 'उपकरण दान' से अभिसंज्ञित किया। उपकरण दान में शास्त्र के

अलावा पिच्छी, कमण्डलु, चश्मा आदि मुनियों के लिए तथा चादर/लंगोटी आदि क्षुल्लक व ऐलकों के लिए गर्भित हो जाता है।

'सल्लेखना' को बारह व्रतों में न रखकर इसे व्रतों का फल बताया है।

अन्तक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते ॥

तप का फल (अणुव्रत, गुणव्रत-शिक्षाव्रतादि रूप तपश्चर्या का फल) अन्तक्रिया अर्थात् सल्लेखना/समाधिमरण के आधार पर समाहित है। अर्थात् यदि समाधिपूर्वक मरण बनता है तो तप का फल भी सुघटित होता है अन्यथा उसका फल नहीं भी मिलता। नित्य की पूजा में "**दुक्खखओ कम्मखओ समाहिमरणं च वोंहिलाहो वि**" की भावना करते हैं। भगवती आराधना आदि जैसे कितने ही ग्रन्थों में इसका विवेचन है।

सम्पूर्ण भाष्य को भाष्यकार ने सात अध्ययनों के अन्तर्गत विभाजित कर सम्पूर्ण ग्रन्थ को सटीक शीर्षक-निबद्ध किया।

प्रथम अध्ययन के अन्तर्गत 'सम्यग्दर्शन' की विशद् व्याख्या 76 पृष्ठों में की। द्वितीय अध्ययन में 'सम्यक्‌चारित्ररूप अणुव्रतों' का वर्णन किया जो लगभग 33 पृष्ठों में किया गया। समन्तभद्र प्रतिपादित मूलगुणों में श्री जिनसेन और अमितगति जैसे आचार्यों से प्रतिपाद्य मूलगुणों से अन्तर भेद पाया जाता है।

चतुर्थ अध्ययन मे गुणव्रतों का वर्णन विभाजित किया।

पंचम अध्ययनमें शिक्षाव्रतों का विशद रूप से वर्णन किया। यह लगभग २८ पृष्ठों में समाहित है।

छठवें अध्ययनमें सल्लेखना का सांगोपांग वर्णन किया। एवं सातवें अध्ययन में श्रावकपद का वर्णन अर्थात् ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन किया है। दार्शनिक श्रावक तथा व्रतिक श्रावक के लक्षण द्वारा श्रावक पद की महनीयता को व्याख्यापित कर भाष्यकार ने एक-एक शब्द की व्याख्या प्रस्तुत की। जैसे दार्शनिकश्रावक का लक्षण कहते हुए "पंचगुरू-चरण-शरणो" में पंचपरमेष्ठी को गुरू की संज्ञा दी लौकिक गुरूओं को इसमें नहीं लेने को कहा। चरण का एक अर्थ पद-पैर शरीर के नीचे का अंग है परन्तु चरण का दूसरा प्रसिद्ध अर्थ

- 'आचार' भी है। आचार के अन्तर्गत पंचाचार - दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य (मूलाचार) शामिल है। इसी प्रकार - "सकलं विकलं चरणं" अथवा 'अणु-गुण-शिक्षा-व्रतात्मकं चरणं' का प्रयोग किया जा सकता है। ग्यारह प्रतिमाएं वस्तुतः श्रावकों की ग्यारह कोटियां या Classification है जो उत्तरोत्तर गुणवृद्धि को प्राप्त होती जाती हैं। उत्तरवर्ती में पूर्ववर्ती के सम्पूर्ण गुण निहित होते हैं।

इस प्रकार पण्डित जुगलकिशोर मुख्तार सा. ने 'रत्नकरण्ड' का भाष्य समीचीन धर्मशास्त्र के नाम से तीन उद्देश्यों की वृद्धि हेतु लिखा :-

(1) हित वृद्धि (2) शान्ति वृद्धि और (3) विवेक वृद्धि।

हित-स्वपर होता है शान्ति स्व के लिए होती है और विवेक 'पर' के लिए किया जाता है।

'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' ग्रन्थ की लोकोपयोगिता पर डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने कितना मार्मिक कहा - स्वामी समन्तभद्र का निजी चरित्र ही उनके अनुभव की वाणी थी। उन्होंने जीवन को जैसा समझा वैसा लिखा/कहा अन्तर के मेल को धोना ही सबसे बड़ी सिद्धि है। जब तक अध्यात्म की ओर, मनुष्य की उसी प्रकार सहज प्रवृत्ति नहीं होती, जैसी काम-सुख की ओर तब तक धर्म साधना में उसकी निश्चल स्थिति नहीं हो पाती।

समीचीन धर्मशास्त्र के लेखक के संबंध में Dr. A. N. Upadyay लिखते हैं :-

"Pandit Jugal Kishore Mukhtar is a point-rank Soholar, He has a hunger and thirst or now facts and fresh evidence, He has spout hisvaluable time in many miscelleneous Colleetions and gatherod to gather a lot of useful material,"

इस भाष्य ने 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' के रहस्यों को उद्घाटित किया। धर्म की सर्वव्यापी लोक कल्याणी परिभाषा दी एवं जीवन के करणीय आचार पक्ष को आगम के आलोक में 'दृश्यमान' किया।

रत्नकरण्डक श्रावकाचार (उपासकाध्ययन) की प्रभाचन्द्रकृत टीका के उद्धरण

कमलेशकुमार जैन, दिल्ली

प्रस्तुत आलेख समन्तभद्र स्वामी विरचित रत्नकरण्डक उपासकाध्ययन श्रावकाचार की प्रभाचंद्रकृत टीका पर आधारित है। यह ग्रन्थ माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला,मुम्बई द्वारा वि सं. 1982 (ई. सन् 1926) में सटीक प्रकाशित हुआ था। इसमें इतिहासविद्, प्राक्तन-विमर्श-विचक्षण पंडित जुगल किशोर मुख्तारलिखित 84 पृष्ठ की विस्तृत एवं महत्वपूर्ण प्रस्तावना है। साथ ही उन्हीं के द्वारा प्राक्कथन के रूप में लिखा गया 252 पृष्ठ का रत्नकरण्डक एवं उसके कर्ता समन्तभद्र स्वामी विषयक इतिहास है।

उक्त प्रस्तावनाकी प्रशंसा एवं महत्ता प्रतिपादित करते हुए सामान्यतया भारतीय संस्कृति और विशेषत: जैन संस्कृति एवं साहित्य के तटस्थ विवेचक स्वनाम धन्य पं नाथूराम प्रेमी ने लिखा था - ''सुहृदवर बाबू जुगलकिशोर जी ने प्रस्तावना और इतिहास के लिखने में जो परिश्रम किया है, उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। इतिहासज्ञ बहुश्रुत विद्वान् ही इनके मूल्य को समझेंगे। आधुनिक काल में जैन·साहित्य के सम्बन्ध में जितने आलोचना और अन्वेषकात्मक लेख लिखे गये हैं, मेरी समझ में उन सब में इन दोनों निबन्धों को (प्रस्तावना और इतिहास को) अग्र-स्थान मिलना चाहिए। ग्रन्थमाला के संचालक इन निबन्धों के लिए बाबू साहब के बहुत ही अधिक कृतज्ञ हैं। साथ ही उन्हें इन बहुमूल्य निबन्धों को इस ग्रन्थ के साथ प्रकाशित कर सकने का अभिमान है।''

इस सटीक रत्नकरण्डक ग्रन्थ का सम्पादक कौन है? इसका ग्रन्थ में कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं है, परन्तु ग्रन्थमाला के मंत्री के रूपमें पं. नाथूराम प्रेमी द्वारा लिखे गये निवेदन ' से यह ध्वनित होता है कि इस मूल ग्रन्थ का सम्पादन संभवत: उन्होंने स्वयं ही किया था।

रत्नकरण्डक समन्तभद्रस्वामी की आचार विषयक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें श्रावकों (गृहस्थों) के लिए सत् लक्षणमय धर्मरत्नों का संग्रह किया गया है। टीकाकरण श्री प्रभाचन्द्र जी ने इसे अखिल सागारमार्ग को प्रकाशित करने वाला निर्मल सूर्य कहा है। (अन्तिम प्रशस्ति वाक्य)।

रत्नकरण्डक की टीका प्रभाचन्द्र (प्राय: विक्रम संवत् 13 शती का मध्यकाल) द्वारा रची गई थी। और उन्होंने इसे उपासकाध्ययन कहा है। यद्यपि प्रभाचन्द्र नाम के अनेक आचार्य और पण्डित हुए हैं, परन्तु उनमें से प्रकृत प्रभाचन्द्र 13 वीं शती के विद्वान् हैं। इनके पहले और बाद में भी प्रभाचंद्र नाम के अनेक लेखक विद्वान् हो गये हैं। इन्हें शुभचन्द्र को गुर्वावली में तथा मूल (नंदी) संघ की दूसरी पट्टावली में रत्नकीर्ति का पट्टशिष्य बताया गया है और शुभकीर्ति का प्रपट्टशिष्य कहा है, साथ ही पद्मनन्दि का पट्टगुरू लिखा है। प्रभाचन्द्र को "पूज्यपादीयशास्त्र व्याख्याविख्यात-कीर्तिः" विशेषणके साथ भी स्मरण किया गया है। इससे पता चलता है कि पूज्यपाद देवनन्दि के "समाधितंत्रम्" नामक ग्रन्थ पर,जिसे समाधिशतक भी कहते हैं, प्रभाचन्द्र को जो टीका मिलती है, वह टीका भी इन्हीं प्रभाचंद्रकृत है, क्योंकि दोनों टीकाओं में बहुत सादृश्य देखा जाता है।

प्रस्तुत निबन्ध में प्रभाचन्द्र विरचित रत्नकरण्ड टीका के उद्धरणों का एक संक्षिप्त अध्ययन किया गया है।

जैनाचार्यों व लेखकों ने प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश साहित्य तथा व्याख्या-नियुक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका-साहित्य में अपने मूल सिद्धान्तों की प्रस्तुति, सिद्धान्तों की व्याख्या एवं अन्य मौलिक/स्वतंत्र रचनाएं करते समय अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए, प्रमाणित या पुष्ट करने के लिए अथवा उस पर अधिक जोर देने के लिए, जैन एवं अन्य परम्पराओं-जैनेतर परम्पराओं में स्वीकृत सिद्धान्तों, सिद्धान्तगत दार्शनिक मन्तव्यों की समीक्षा करते समय, बहुत से अवतरण उद्धृत किये हैं।

इन उद्धरणों में बहुसंख्या में ऐसे उद्धरण मिले हैं, जिनके मूलस्रोत ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। बहुत से ऐसे उद्धरण प्राप्त होते हैं, जो मुद्रित

ग्रन्थों में उसी रूप में नहीं मिलते, उनमें पाठान्तर मिलते हैं। कुछ ऐसे भी उद्धरण मिलते हैं, जिनका प्रकाशित ग्रन्थ में अस्तित्व ही नहीं है।

अवतरित उद्धरणों में मुख्यतः वैदिक साहित्य, प्राचीन जैन आगम एवं आगमिक साहित्य, बौद्ध साहित्य तथा षड्दर्शनों से सम्बद्ध साहित्य के उद्धरण मिलते हैं। इसके साथ-साथ लौकिक, नीतिपरक तथा साहित्यिक प्राप्त-अप्राप्त ग्रन्थों से भी उद्धरण पाये जाते हैं।

प्राचीन जैन साहित्य गीतार्थ आचार्यों द्वारा संरचित या संकलित हैं। इनके द्वारा अवतरित उद्धरण उस-उस समय में प्राप्त ग्रन्थों से लिए गये हैं, इसलिए इन सभी उद्धरणों की प्रामाणिकता स्वतः सिद्ध है। अतः इन सभी आचार्यों/लेखकों द्वारालिखित ग्रन्थों में प्राप्त उद्धरणों के आधार पर वर्तमान में उपलब्ध ग्रन्थों से उनकी तुलना एवं समीक्षा की जाये तो उनमें आवश्यक संशोधन/परिवर्तन भी किया जा सकता है।

ऐसे ग्रन्थ या ग्रन्थकर्ता,जिनके नाम से उद्धरण तो मिले हैं, परन्तु उस ग्रन्थ या ग्रन्थकार की जानकारी अभी तक अप्राप्त है, इस प्रकारके उद्धरणों का संकलन तथा प्रकाशन एवं उनका विशिष्ट अध्ययन महत्वपूर्ण निष्कर्ष दे सकेगा। इससे ग्रन्थ या ग्रन्थकरों का काल निर्णय करने में बहुत सहायता मिल सकती है, साथ ही लुप्त कड़ियों को प्रकाश में भी लाया जा सकता है।

रत्नकरण्डक की टीका में कुल 23 अवतरण उद्धृत हैं। इनमें दो स्वयं प्रभाचन्द्र द्वारा रचित हैं। इन सबका अकारादि क्रम से संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है -

"अध्रुवाशरणे चैव भव एकत्वमेव च।
अनयत्वमशुचित्वं च तथैवास्रवसंवरौ॥"

- रत्नक. श्रा. 4/18 टीका

यह पद्य पद्मनन्दि-उपासकाचार का 43 वां पद्य है। यह उपासकाचार पद्मनन्दि पंचविंशति में संग्रहीत है। इसके कर्ता श्री पद्मनन्दि आचार्य (वि. सं. 12 वीं शती का उत्तरार्थ) पं. आशाधर से पहले के हैं।

"अबालस्पर्शका नारी ब्राह्मणस्तृणहिंसकः।
वने काष्ठमुखः पक्षी पुरे पसरजीवकः॥" इति
– रत्नक. श्रा. 3/18 टीका

तथा –

"अह उड्डतिरियलोए दिसि विदिसं जं पमाणियं भणियं।
करणाणि तु सिद्धं दीवसमुद्दा जिण्गेहा॥"
– रत्नक. श्रा. 2/2 टीका

तदुक्तं–

"आकम्पिय अणुमाणिय जं दिट्ठं बादरं च सुहुमं च।
छन्नं सद्दाठलयं बहुजणमव्वत्त तस्सेवी॥" इति
– रत्नक. श्रा. 5/4 टीका

"कृषि पशुपाल्यं वाणिज्यं च वार्ता" इत्यभिधानात्।
– रत्नक. श्रा. 3/33 टीका

(नीतिवाक्यामृतम् वार्ता समुददेश सूत्र।)

यह अवतरण सोमदेवकृत नीतिवाक्यामृतम् ग्रंथ के 'वार्तासमुददेश" का प्रथम सूत्र है। नीतिवाक्यामृत में पशुपाल्यं के स्थान पर "पशुपालनं" यह पाठान्तर है और यही ठीक प्रतीत होता है। साथ ही वाणिज्यं के स्थान पर 'वाणिज्या' यह पाठान्तर है, और वह भी ठीक जान पड़ता है।

"क्षुधातमा नास्ति शरीरवेदना" इत्यभिधानात्।
– रत्नक. श्रा. 1/6 टीका

"क्षेत्रं वास्तु धनं धान्यं द्विपदं च चतुष्पदम्।
शयनासनं च यानं कुप्यं भाण्डमिति दश॥"
– रत्नक. श्रा. 5/24 टीका

तदुक्तम् -

"खंडनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भः प्रमार्जनी।
पंचसूना गृहस्थस्य तैन मोक्षं न गच्छति॥"

- रत्नक. श्रा. 4/23 टीका

कार्योत्सर्गस्य विधाने - "णमो अरहंताणस्स थोसामे -
"श्चाद्यन्तयोः।"

- रत्नक. श्रा. 5/18 टीका

जैनेनोच्यते -

णेकम्म-कम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो॥
ओज मणो वि य कमसो आहारो छब्बिहो णेओ॥
णोकम्मं तित्थयरे कम्मं णारेय माणसो अमरे।
कवलाहारो णरपसु ओज्जो पक्खीण।

- रत्नक श्रा 1/6 टीका

तथा-

"तवचारित्तमुणीणं किरियाणं रिद्धिसहियाणं।
अवसगां सण्णसं संचरणाणिउपं पसंसंति॥"

- रत्नक. श्रा. 2/3 टीका

"देवा वि तस्स णमंति जस्स धम्मे सया मणो" इत्याभिधानात्।

- रत्नक श्रा. 1/28 टीका

प्रकाशित दशवैकालिक सूत्र में पाठ इस प्रकार है -

देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो। - (दसवेयालियं 1/1)

"निर्जरा य तथा लोको बोधिदूर्लभधर्मता।
दादशैता अनुप्रेक्षा भाषिता जिनपुंगवैः॥"

- रत्नक. श्रा. 4/18 टीका

यह पद्य भी पदमनन्दि उपासकाचार का 44 वाँ है। यह उपासकाचार पदमनन्दिपंच विशंति में संग्रहीत है।

नवपुण्यै -

"पडिगहमुच्चदठाणं पादोदयमच्चणं च पणमं च।
मणवयणकायसुद्धी एसणसुद्धी य नवविहं पुण्णं।"
- रत्नक. श्रा. 4/23 टीका (वसुनन्दि उपासकाध्ययन 25)

उक्त गाथा वसुनन्दि (प्राय: वि. सं. 12 वीं शती का अन्तिम भाग और 13 वीं का प्रारंभिक भाग) कृत उपासकाध्ययन की है। इस उपासकाध्ययन को श्रावकाचार भी कहते हैं। "पडिमह" इत्यादि उद्धरण की उपयोगिता एवं आवश्यकता पर विचार करते हुए पं. मुख्तार जी ने लिखा है कि "जान पड़ता है टीकाकार ने इसमें मूल के अनुरूप ही "नवपुण्यं" संज्ञा का प्रयोग देखकर इसे यहाँ पर उद्धृत किया है, अन्यथा, वह यशस्तिलक के "श्रद्धा तुष्टि:" इत्यादि पद्य को उद्धृत करते हुए उसके साथ के दूसरे "प्रतिग्रहोच्चासनं" पद्य को भी उद्धृत कर सकता था परन्तु उसमें इन 8 बातों को "नवोपचार" संज्ञा दी है जिसका यहाँ "नवपुण्यै:" पद की व्याख्या में मेल नहीं था। उसके सिवाय कुछ और भी विशेषता थी। इसलिए टीकाकार ने जानबूझकर उसे छोड़ा और उसके स्थान पर इस गाथा को देना पसंद किया।"

यशस्तिलक चम्पू का यह पद्य इस प्रकार है -

प्रतिग्रहोच्चासनपादपूजाप्रणामवाक्कायमन: प्रसादा:।
विद्याविशुद्धिश्च नवोपचारा: कार्या मुनीनां गृहसंश्रितेन॥

"परोपकाराय सतां हि चेष्टितं" इत्यभिधानात्।
- रत्नक. श्रा. 1/8 टीका

सर्वेऽपि "बाहयाभ्यन्तरराश्चेतनेतरादिरूपा" वा।
- रत्नक. श्रा. 4/12 टीका

"मइलकेचुली दुम्मनी नाहे पविसिय एण।
कहजीवेसइ धणियधर उज्झंते हियएण॥"

- रत्नक. श्रा. 1/19-20 टीका

येनाज्ञानतमो विनाश्च निखिलं भव्यात्म चेतोगतम्।
सम्यग्ज्ञानमहांशुभिः प्रकटितः सागारमार्गोऽखिलः
स श्रीरत्नकरण्डकामलरविः संसृत्सरिच्छोषको
जीयादेष समन्तभद्रमुनियः श्रीमान् प्रभेन्दुर्जिनः॥

- रत्नक. श्रा. 5/29 टीका

यह टीकाकार का अन्तिम प्रशस्ति वाक्य है।

"विग्गहगइमावण्णा केवलिणो सम्मुहदो अजोगी य।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारिणो जीवा॥"

- रत्नक. श्रा. 1/6 टीका

यह गाथागोम्मटसार जीवकाण्ड में गाथा संख्या 666 पर प्राप्त होती है। इसका पाठ इस प्रकार है-

विग्गहमादिमावण्णा केवलिणो समुग्धदो अजोगी य
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीया॥

"श्रद्धा तुष्टिर्भक्तिर्विज्ञानमलुब्धता क्षमा सत्यं।
यस्यैते सप्तगुणास्तं दातारं प्रशंसन्ति॥"

- रत्नक श्रा 4/23 टीका (यशस्तिलक, कल्प 43)

यह पद्य यशस्तिलकचम्पू (शक संवत् 881 वि. सं. 1016 ई. 950) के 43 वें "कल्प' का पद्य है। यशस्तिलक यशोधर-महाराजचरित के रूप में भी जाना जाता है। इसमें दाता के सात गुणों की चर्चा की गई है। वसुनंदिश्रावकाचार में यह गाथा 224 संख्या पर (प्राकृत में) प्राप्त होती है।

समन्तभद्र निखिलात्मबोधनं जिनं प्रणम्याखिलकर्मशोधनम्।
निबन्धनं रत्नकरण्डके परं करोमि भव्यप्रतिबोधनाकरम्॥

- रत्नक. श्रा. 1/1 टीका

यह पद्य टीकाकार का मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञावाक्य है।

सीम्रामित्यत्र "स्मृत्यर्थदयीशां कर्म" इत्यनेन षष्ठी।

- रत्नक. श्रा. 4/3 टीका

तदुक्तं -

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्वप्रकाशने
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्॥

-रत्नक. श्रा. 2/1 टीका

इस प्रकार हम देखते हैं कि रत्नकरण्डक के टीकाकार ने जो अवतरण उद्धृत किये हैं उनमें से कुछ का निर्देश स्थल तो प्राप्त होता है, परन्तु बहुतों का स्रोत अभी प्राप्त नहीं हो सका है। अतः उनकी शोध-खोज तथा प्रकाशन एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

सन्दर्भ एवं सहायक ग्रन्थ सूची

1 रत्नकरण्डक श्रावकाचारः सटीकः। माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई, विक्रम संवत् 1882

2 नीतिवाक्यामृतम्-प्राकृतभारती अकादमी, जयपुर मोदी फाउण्डेशन,कलकत्ता, 1987

3 यशस्तिलकचम्पू-भाग 1-2, भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् ई. 1989-90 एवं 1992

4 पदमनन्दि उपासकाचार, (पदमनन्दि पंचविंशतिका के अन्तर्गत), जैन संस्कृति संरक्षक सघ, सोलापुर,ई 1977

5 दसवेयालियंसुत्त, जैन आगम सीरीज, 15, महावीर जैन विद्यालय, बम्बई,ई सन् 1977

6 वसुनन्दि उपासकाध्ययन (श्रावकाचार संग्रह भाग 1 के अन्तर्गत) जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, ई. 1988

7. गोम्मटसार जीवकाण्ड, भाग - 2 सम्पादक - अनुवाद, डॉ ए. एन. उपाध्ये एवं पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, ई. 1997

प्रभाचन्द्र का तत्वार्थ सूत्र-मेरी दृष्टि में

पं. विजय कुमार शास्त्री, एम.ए.,
महावीर जी

जनमानस को आचार्य कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, पात्रकेशरी आदि अनेक जिनवाणी को विस्तार देने वाले प्राचीन आचार्यों एवं उनके द्वारा रचित ग्रन्थों को अपनी खोजपूर्ण लेखनी से परिचय देने वाले, जैन वाङ्मय के प्रचार प्रसादमें सतत अपने को तिल-तिल जलाने वाले साहित्य मनीषियों में आचार्य जुगल किशोर मुख्तार साहब का नाम सर्वोपरि है।

आवाल-वृद्ध नर-नारियों में ऐसा कौन है जिसके कण्ठ में राष्ट्रीय, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं व्यक्ति कल्याणकारी उनकी मेरी भावना कण्ठस्थ और हृदयगत हो। मात्र 11 पदों में लिखी गयी यह भावना-मेरी श्री मुख्तार साहब की अपनी तो है ही, अपनी सबकी मेरी है, जो इसे हृदय में सजा ले। सरस, कोमल, प्रसादगुण पूर्ण एवं अनेक आचार्यों के शास्त्र निविष्ट भावों के स्वरस रुप 'मेरी भावना' रूप कविता से मुख्तार साहब राष्ट्रीय कवियों में उच्च स्थानीय हो गये हैं। धार्मिक कवियों मे सिर मौर हो गये हैं। इस मेरी भावना के पद उच्च सांस्कृतिक धारा के प्रवाह हैं मानवता एवं आध्यात्मिकता के स्रोत हैं, उन्नत चेतना के उत्स हैं। सचमुच उनका 'युगवीर' उपनाम सार्थक व सटीक है।

फैले प्रेम परस्पर जग में मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं कोई मुख से कहा करे॥
बनकर सब युगवीर हृदय से देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु स्वरुप विचार खुशी से सब दुख संकट सहा करे॥

मेरा सौभाग्य है कि मुझे श्री मुख्तार साहब जैसे महान साहित्यिक विभूति के सान्निध्य में लगभग एक वर्ष तक कुछ सीखने का अवसर मिला, मेरे जीवन की वह पच्चीसवीं सीढी होगी।

प्रात:काल नित्य चार बजे जगकर वह ध्यान में बैठ जाते और अन्त में-मुझे है स्वामी उस बल की दरकार स्वरचित कविता का पाठ करते,जिसमें आत्मा के बल को प्रकट होने की कामना की गई थी। यद्यपि श्री मुख़्तार साहब बहुआयामी व्यक्तित्व के साहित्यकार थे-उत्कृष्ट कोटि के भाष्यकार, समीक्षाकार, इतिहासकार,पत्रकार, निबन्धकार सम्पादक और अनुवादक थे, पर यहाँ मुझे उनके सम्पादक-अनुवादक रूप को ही प्रस्तुत करना है। उनमें भी मैं उन्हें केवल आचार्य प्रभाचन्द्र और उनका तत्वार्थ सूत्र ग्रन्थ के अनुवादक-सम्पादक के रूप में ही यहां प्रस्तुत कर रहा हूँ।

'आचार्य समन्तभद्र का तत्वार्थ सूत्र'-ग्रन्थ की प्रस्तावना बड़ी महत्वपूर्ण है। प्रस्तावना के पूर्व एक प्रावधान भी दिया गया है उसमें भी अनेक तथ्यों का उल्लेख है। बताया गया है कि पुस्तकाकार प्रकाशन से पूर्व तत्वार्थ सूत्र अनेकान्त, किरण ६ व ७ में अनुवाद पूर्वक प्रकाशित हुआ था। अनेकान्त में प्रकाशन के आधार पर भारतीय महाविद्यालय कलकत्ता ने पं. ईश्वरचन्द्र नामक किसी बंगाली विद्वान् से इसकी संस्कृत व बंगाली टीका करा कर प्रकाशित करवाया था। वीर सेवा मंदिर ने प्रस्तुत तत्त्वार्थसूत्र को अनुवाद एवं संक्षिप्त भाष्य के साथ प्रकाशित किया है।

प्रस्तावना में आचार्य प्रभाचन्द्र के तत्त्वार्थसूत्र की उपलब्धि के प्रसंग के एक हृदय द्रावक घटना का उल्लेख किया है कि कोटा में भट्टारक की गद्दी पर विराजमान एक भट्टारक ने अपने अज्ञान से वहां के शास्त्र भण्डार को रद्दी में बेच दिया था। कोटा के ही श्री केशरीमल जी ने उस मुसलमान बोहरे से आठ आने में बोरी भरके हिसाब से वह रद्दी खरीद ली, उसी में यह अमूल्य निधि उन्हें प्राप्त हुई। श्री केशरीमल जी से रामपुर 'सहारनपुर' निवासी बाबू कौशल प्रसाद जी ने यह देखा और उसे अपूर्व वस्तु के रूप में श्री केशरीमल जी से प्राप्त कर विशेष जाँच-पड़ताल के लिए मेरे पास (श्री मुख़्तार साहब) लाये। ग्रन्थ प्राप्ति की यह छोटी सी घटना जिनवाणी के प्रति समाज के उपेक्षा भाव को प्रकट करती है कि हमारे ही अज्ञान से हमारा अमूल्य साहित्य इस प्रकार नष्ट हो गया ऐसा एक जगह ही नहीं अनेक जगहों के मन्दिरों में जो

अमूल्य साहित्य निधि थी उसको हमने नष्ट कर दिया। यही बात है कि अनेक ग्रन्थों के नामोल्लेख के होने पर भी हमें वे प्राप्त नहीं हुए।

इस तत्वार्थ सूत्र में चूंकि तत्वार्थ का वर्णन है, इसलिए इसका तत्वार्थ सूत्र तो उपयुक्त नाम है ही। इसके अध्यायों की संख्या दस होने के कारण दस सूत्र नामोल्लेख भी मिलता है। एक जगह तत्वार्थसार सूत्र भी नामोल्लेख है जिससे यह अनुमान होता है कि यह उमास्वामी या उमास्वामी कृत तत्वार्थ सूत्र के आधार पर उसके अधिक संक्षिप्तीकरण के प्रयोजन से लिखा गया है। इसका एक और नाम जिनकल्पी सूत्र भी दिया गया है। जो बड़ा महत्वपूर्ण है इसी नाम ने भी कौशल प्रसाद जी को केशरीमल कोटा से यह ग्रन्थ प्राप्त करने की उत्सुकता हुई।

ग्रन्थ के आकार की दृष्टि से देखें तो उमास्वामी महाराज के तत्वार्थसूत्र से यह प्रभाचन्द्रीय तत्वार्थ सूत्र बहुत छोटा है।

उमास्वामी के तत्वार्थसूत्र में क्रमशः ३३, ५३, ३९, ४२, ४२, २९, ३९, २६, ४७ व ९ कुल ३२७ सूत्र हैं तथा आदि अन्त में कुल ११ छन्द है। इस प्रभाचन्द्रीय सूत्र में क्रमशः १५, १२, १८, ६, ११, १४, ११, ८, ७ व ५ कुल १०७ ही सूत्र हैं, यही नहीं इसके सूत्र भी अल्पाक्षर (छोटे) हैं। कण्ठस्थ करने की दृष्टि से ये सूत्र अत्यत उपयोगी है।

उमास्वामी के तत्त्वार्थ सूत्र में जो तत्त्वार्थ वर्णन है वही क्रम इस प्रभाचन्द्रीय तत्त्वार्थ सूत्र में भी वर्णित है।

यह भी उल्लेख है कि ग्रन्थ के मंगलाचरण रूप पद्य हो सकता है। अन्त में भी कोई पद हो। अगर वह पद मिल जाय तो बहुत कुछ ग्रन्थ के इतिहास पर प्रकाश पड़ सकता है।

ग्रन्थ के मंगलाचरण में वीर प्रभु की वन्दना की गई है, क्योंकि मोक्षमार्ग-तत्वार्थ उन्हीं प्रभु से आविर्भूत हुआ, हमें प्राप्त है।

यह भी उल्लेख है कि उस रद्दी में श्री केशरीमल जी को प्रभाचन्द्रीय तत्वार्थ सूत्र की जो प्रति प्राप्त हुई थी तथा श्री कौशलप्रसाद जी के माध्यम से

प्राप्त हुई, उसके लेखन कर्त्ता पण्डित रतनलाल हैं जिन्होंने इसे कोटखावदा में सम्पूर्ण किया था। हो सकता है कि कोटा के किसी मुहल्ले या उपनगर का यह नाम हो। कागज की स्थिति तथा लिखावट की स्थिति से यह प्रति २५०-३०० वर्ष की मालूम पड़ती है। ग्रन्थ प्रति में कोई लिपि सम्वत् नहीं दिया गया है।

प्रभाचन्द्र आचार्य के विषय में भी प्रस्तावना में प्रकाश डाला गया है कि अध्याय समाप्ति पर इति श्री वृहत् प्रभाचन्द्रतत्वार्थसूत्र प्रथमोध्याय, श्री प्रभाचन्द्र जी आचार्य के साथ जो वृहत् शब्द लगा हुआ है उससे बड़े प्रभाचन्द्र की सूचना मिलती है। बड़े प्रभाचन्द्र तो आमतौर पर प्रमेयकमलमार्तण्ड के तथा न्यायकुमुदचन्द्र के कर्त्ता ही माने जाते हैं। वैसे प्रभाचन्द्र नाम के अनेक आचार्य हुए हैं जैसे एक प्रभाचन्द्र परलुस निवासी विनयनन्दी के शिष्य हुए, जिन्हें कीर्तिवर्मा प्रथम ने दान दिया था। ये विक्रम की छठी-सातवी शती के हैं। दूसरे प्रभाचन्द्र जिनका उल्लेख श्री पूज्यपादाचार्य ने अपने जैनेन्द्र व्याकरण में सूत्र में किया है ये छठी शताब्दी से पहले हुए हैं।

तीसरे प्रभाचन्द्र का उल्लेख श्रवणबेलगोला के शिलालेख में है जो भद्रबाहु के शिष्य थे, जो चन्द्रगुप्त मौर्य का ही दीक्षा के बाद का नाम है, पर उन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रमेयकमलमार्तण्ड एवं न्यायकुमुदचन्द्र के कर्त्ता प्रभाचन्द्र आचार्य ही इसके लेखक हैं।

प्रभाचन्द्रीय तत्त्वार्थसूत्र के प्रथम अध्याय का पहला सूत्र है- 'सम्यग्दर्शनावगमवृत्तानि मोक्षहेतुः'। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष के कारण हैं, मोक्ष का एक साधन है। यहाँ अवगम, वृत्त और हेतु का प्रयोग किया गया है, किन्तु इन शब्दों का अर्थ उमास्वामी के सूत्र की तरह ही है।

इस प्रकार मुख्तार साहब ने मोटे अक्षरों में सूत्र का शब्दार्थ लिखकर फिर आचार्य के अभिप्राय को स्पष्ट किया ह। साथ में तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है।

इसी प्रकार 'जीवदिसप्ततत्त्वम्' एक दूसरे सूत्र के अभिप्राय में 'आदि' पद के द्वारा ही शेष तत्त्वों का उल्लेख किया है। इस सूत्र में उमास्वामी के सूत्र की अपेक्षा अल्पाक्षरता है।

वस्तुतः प्रभाचन्द्र ने संक्षेपता पर ध्यान देते हुए सर्वनाम या सर्वनाम विशेषणों का प्रयोग किया है। जैसे-तदर्थ-श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' में तत् का अर्थ सप्त तत्व है। किसी शब्द के अर्थ को समझाने के लिए मुख्तार साहब लम्बे डेश देकर उसे समझाते हैं। जैसे-उसकी-सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति दो प्रकार से है। दोनों-तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् (उमास्वामी), तदर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् (प्रभाचन्द्र) के क्षयोपशम (क्षय) हेतव: (हेतूनि) इत्यादि सूत्रों को शुद्ध करके कोष्ठक में लिख दिया गया है, जिससे लेखक का मूल पाठ भी रहे और उसका शुद्ध रूप भी।

श्री मुख्तार सा ने दिगम्बरीय तत्वार्थ सूत्र एवं श्वेताम्बरीय तत्वार्थ सूत्र का भी जगह-जगह तुलनात्मक विवेचन किया है। यथा-आहरक प्रमत्त संयतस्यैव सूत्र के विशेषार्थ में बतलाया गया है कि 'प्रमत्त संयतस्यैव' के स्थान पर श्वेताम्बरीय सूत्र पाठ में चतुर्दश पूर्वधरस्यैव पाठ है।

तीर्थेशदेवनारक भोगभुवोऽखण्डामुयुष:।

उमास्वामी के तत्वार्थ सूत्र के 'औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयव-र्षायुषोऽनपवर्त्यायुष।' का अर्थ प्रगट करता है पर उक्त प्रभाचन्द्रीय सूत्र सरल सुगम अल्पाक्षरी तथा स्पष्ट है।

'तासुनारका: सपंच दु:खा' (सूत्र क्र. 2 अध्याय 3) इसके विशेषार्थ में बताया गया है कि नारकियों के-शारीरिक, स्वसंक्लेश परिणामज (मानसिक) क्षेत्रस्वभावज, परस्परोदीरित और असुरोदीरित ये पाँच प्रकार के दु:ख हैं। कार्तिकेयानुप्रेक्षा में वर्णित दुखों के समान हैं।

तन्मध्येलक्ष योजन प्रम: सचूलिको मेरु:।

इस सूत्र में जम्बूद्वीप का प्रमाण नहीं बताया, चूलिका सहित मेरु का प्रमाण एक लाख योजना है। तीसरे अध्याय के 8वें सूत्र में तस्मात की जगत

तेभ्यो: शुद्ध है आदि शब्द से गंगा के अतिरिक्त अन्य जम्बूदीपवर्ती 13 नदियों का संग्रह है।

गुणानामगुणत्वम्-(अ. 4 सू. 11) में गुणों को अन्यगुणों से रहित बताया है। अन्यथा गुण-गुणी पर गुणवान बन जायेंगे। द्रव्य बन जायेंगे-ऐसा विशेषार्थ में स्पष्ट है।

'सह-कम भावि गुण-पर्ययवद्रव्यम्' (अ. ५ सू. ८) इस सूत्र में गुणों के सहभावी पर्यायों को क्रमभावी बताया है। यह सूचना उमास्वामी के गुणपर्ययवद्रव्यं सूत्र में नहीं है।

ब्रह्मारम्भ परिग्रहाद्या नरकाद्यायुएक: हेतव:

(अ. 6 सूत्र 8)

इस अति संक्षिप्त सूत्र में चारों गतियों को बन्ध हेतुत्व का स्पष्ट खुलासा नहीं होता।

श्रमणानामाष्टाविंशतिर्मूलगुणा:

(अ. 7 सूत्र 5)

उक्त सूत्र के अर्थ को बताने वाला सूत्र उमास्वामी के तत्वार्थ सूत्र में नहीं।

श्रावकाणामष्टौ

(अ. 7 सूत्र 8)

इस सूत्र का अर्थवाची सूत्र तत्वार्थ सूत्र (उमा स्वामी) में नहीं है।

उत्तम संहननस्यान्तर्मुहूर्तावस्थामि ध्यानम्

(अ. 9 सूत्र 3)

इस सूत्र में उमास्वामी के उत्तम सहननस्यैकाग्र-चिन्तानिरोधे ध्यानम् की तरह ध्यान का स्वरुप प्रतिपादित नहीं है।

क्षेत्रादि सिद्धभेदा साध्या

(अ. 10 सूत्र 5)

उमास्वामी के 'क्षेत्र कालगति लिंग आदि सूत्र का संक्षेप कर सिद्धों' में भेद भी कारणवश किये जा सकते हैं। ऐसा बताया गया है।

इस प्रकार प्रभाचन्द्रीय इस तत्वार्थ सूत्र के अनुवाद के सम्पादक श्री मुख्तार साहब ने उमास्वामी के तत्वार्थ सूत्र, स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, सवार्थसिद्धि, तत्वार्थराजवार्तिक आदि का कथनकर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

पं रतनलाल के द्वारा लिखित प्रति में जो अशुद्धियां थीं, उनका शुद्धिकरण किया है।

श्वेताम्बरीय तत्वार्थ सूत्र पाठ में भी कहाँ क्या विशेषताएँ है उसे भी प्रकट किया है।

इस प्रभाचन्द्रीय तत्वार्थसूत्र को कण्ठस्थ करने वालों की सुवधिा हेतु प्रारम्भ में मूल पाठ भी दे दिया है।

इस प्रकार इसका सम्पादन और अनुवाद विविध शास्त्रों के अध्ययन पूर्वक बड़ी सावधानी से किया गया है। सूत्रों को बड़े टाइप में, मूलानुगामी सूत्रार्थ को मध्यम टाइप में तथा विशेष अध्ययन को छोटे टाइप में रखकर इसे अत्यन्त सुगम, सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया गया है जो प्रशंसनीय है।

सूत्र का जो भी अश सुधारा गया है उसका मूल शब्द नीचे फुट नोट में दे दिया गया है।

छिमा बड़न को चाहिए, छोटिन को उत्पात।

–रहीम (दोहावली, ५५)

दंड देने की शक्ति होने पर भी दंड न देना सच्ची क्षमा है।

–महात्मा गांधी (सर्वोदय, ९८)

क्षमा पर मनुष्य का अधिकार है, वह पशु के पास नहीं मिलती।

–जयशंकर प्रसाद (स्कंदगुप्त, द्वितीय अंक)

सत्साधु-स्मरण-मंङ्गलपाठ : एक समीक्षा

डॉ. कमलेश कुमार जैन, वाराणसी

प्राच्यविद्याओं के गहन अध्येता महामनस्वी पं. जुगलकिशोर मुख्तार एक सफल सम्पादक, समालोचक, अनुवादक, भाष्यकार, निबंधकार और सहृदय कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने बीसवीं शती के पहले दशक से सातवें दशक तक के लगभग सत्तर वर्षों में जो साहित्य-साधना की है, वह अद्वितीय हैं। उन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा जहाँ अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया है वहीं विस्तृत भूमिकाओं अथवा प्रस्तावनाओं के माध्यम से ग्रन्थ और ग्रन्थकार पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। साथ ही ग्रन्थ के प्रारम्भ, मध्य अथवा अन्त में उल्लिखित प्राचीन आचार्यों, कवियों, शासकों या उनके उद्धरणों अथवा दूसरे ग्रन्थो या शिलालेखों में प्राप्त तथ्यों या सिद्धान्तों के आधार पर आचार्यों के काल-निर्धारण में जो सयुक्तिक मापदण्डों को प्रस्तुत किया है वह उनके अगाध पाण्डित्य, चिन्तन-मनन एवं शोध-खोज का निदर्शन है।

प्राचीन जैनाचार्यों के प्रति श्री मुख्तार सा. की अनन्य श्रद्धा रही है, अत: उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को उजागर करने के लिये वे सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। किसी ग्रन्थ की उत्थानिका अथवा शिलालेख में किसी प्राचीन आचार्य का नामोल्लेख उनकी शोध-खोज का विषय रहा है। इसीलिये उन्होंने 'पुरातन वाक्य सूची' की प्रस्तावना में इन सबका विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। श्री मुख्तार सा. द्वारा लिखित उक्त प्रस्तावना अपने लेखनकाल से ही बहुचर्चित रही है और आज भी उसकी प्रासङ्गिकता बनी हुई है। प्राच्यविद्याओं की शोध-खोज में संलग्न प्राय: सभी आधुनिक विद्वानों ने इसका उपयोग कर अपनी शोध-खोज को मूर्त रूप दिया है। ऐसे ही कतिपय नामाङ्कित हस्ताक्षरों का उल्लेख श्री मुख्तार सा. ने अपनी संकलित कृति 'सात्साधु-स्मरण-मङ्गलपाठ' के अन्तर्गत किया है।

प्रस्तुत कृति में विभिन्न ग्रन्थों अथवा शिलालेखों में उल्लिखित आचार्यों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित उन पद्यों का संकलन किया गया है जो उन-उन आचार्यों की कीर्ति में चार चाँद लगाते हैं तथा उनके दिग्-दिगन्तव्यापी प्रभाव को सूचित करते हैं। इन प्राचीन आचार्यों की धवलकीर्ति को प्रस्तुत करने वाले इन पद्यों के संकलन के साथ ही मुख्तार सा. ने उनका सभाष्य मूलानुगामी अनुवाद भी प्रस्तुत किया है, जिससे विषय-बोध सहज हो गया है।

प्रस्तुत कृति में कुल 21 उन पूतात्माओं का उल्लेख है, जिन्होंने जैनधर्म की दुन्दुभि बजाने का न केवल सार्थक प्रयास किया है, अपितु अपने जीवन में उन देवीय गुणों को आत्मसात कर स्वपर कल्याण किया है।

श्री मुख्तार सा. ने प्रस्तुत कृति के प्रारम्भ में एक चार पृष्ठीय लघु किन्तु महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना लिखी है, जिसमें इसके संकलन का प्रयोजन स्पष्ट करते हुये वे लिखते हैं कि - "पूतात्मा साधु पुरुषों का संसर्ग अथवा सत्संग जिस प्रकार आत्मा को जगाने, ऊँचा उठाने और पवित्र बनाने में सहायक होता है, उसी प्रकार उनके पुण्य-गुणों का स्मरण भी पापों से हमारी रक्षा करता है और हमें पवित्र बनाता हुआ आत्म विकास की ओर अग्रसर करता है।"

आगे वे लिखते हैं कि - "जब-जब मैं स्वामी समन्तभद्रादि जैसे महान् आचार्यों के पुरातन स्मरणों को पढ़ता हूँ तब-तब मेरे हृदय में बड़े ही पुष्ट विचार उत्पन्न हुये हैं, औद्धत्य तथा अहङ्कार मिटा है, अपनी त्रुटियों का बोध हुआ है और गुणों में अनुराग बढ़कर आत्म-विकास की ओर रूचि पैदा हुई है। साथ ही अनेक उलझनें भी सुलझी हैं।"

श्री मुख्तार सा. के उपर्युक्त लेखन में आचार्य समन्तभद्र का यह कथन मूर्तिमान हो गया है कि-

तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः।

वस्तुतः इस संकलन में जिन पुण्यात्माओं का स्मरण किया गया है वे अपने-अपने समय के महान् प्रभावक आचार्य हैं। अतः यह संकलन होते

हुये भी एक स्वतन्त्र स्तोत्र बन गया है। स्वामी समन्तभद्र ने अपने 'स्वयम्भू स्तोत्र' में चौबीस तीर्थङ्करों का स्मरण किया है और मुख्तार सा. ने प्रस्तुत सत्साधु-स्मरण-मंगलपाठ में भगवान् महावीर और उनके उत्तरवर्ती गणधरादि इक्कीस महान् प्रभावशाली आचार्यों के गुणों का स्मरण किया है, जिससे सामान्य श्रावकों के लिये तीर्थङ्करों की स्तुति के पश्चात् जैनधर्म के प्रभावक आचार्यों की स्तुति का मार्ग प्रशस्त हुआ है, साथ ही स्वयम्भूस्तोत्र का पूरक बना गया है।

इन आचार्यों का स्मरण करने वालों में अनेक आचार्य, भट्टारक, विद्वान, कवि और शिलालेखों को लिखाने वाले भव्यजन हैं। संकलित आचार्यों में अनेक तो ऐसे महान् आचार्य हैं जो परवर्ती अन्य आचार्यों द्वारा भी स्मरण किये गये हैं।

श्री मुख्तार सा. ने जिन प्रभावशाली आचार्यों का संकलन किया है, वे सभी ऐतिहासिक हैं और इनका संयोजन कालानुक्रम से है।

श्री मुख्तार सा. ने अपनी इस कृति में सर्वप्रथम - "मंगलं भगवान् वीरो............।" इत्यादि मंगलपाठ का स्मरण कर लोकमंगल की कामना से भगवान् जिनेन्द्र देव की पूजा के अन्त में पठनीय संस्कृत शान्तिपाठ के एक पद्य को उद्धृत करते हुये कहा है कि -

> क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभावतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः,
> काले काले च सम्यग्विकिरतु मघवा व्याधवो यान्तु नाशम्।
> दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां या स्म भूज्जीवलोके,
> जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्व-सौख्य-प्रदायि॥

तदनन्तर आत्म-विकास हेतु शास्त्रों के अभ्यास किंवा स्वाध्याय से लेकर आत्मसिद्धि तक के लिये जो सार्थक प्रयास है उनकी भावना उसी संस्कृत शान्तिपाठ से प्रकट की है। साथ ही वादिराजसूरिकृत एकीभावस्तोत्र के उस पद्य को उद्धृत किया है, जिसमें भगवान् जिनेन्द्रदेव की सर्वाङ्ग सुन्दरता एवं उनके अपराजित व्यक्तित्व को प्रकट कर आभूषणों और शस्त्रास्त्रों को धारण करने की व्यर्थता प्रतिपादित की है।

'परमसाधु-मुख-मुद्रा' शीर्षक के अन्तर्गत परम साधु स्वरूप भगवान् जिनेन्द्रदेव को क्रोध से रहित होने के कारण अताम्रनयनोत्पलत्व, काम से रहित होने के कारण कटाक्षशरमोक्षहीनत्त्व और विषाद एवं मद से रहित होने के कारण प्रहसितायमानत्व - इन तीन विशेषणों से सम्बोधित किया है। तदनन्तर 'साधुवन्दन' के अन्तर्गत आचार्य कुन्दकुन्दकृत योगिभक्ति से एक प्राकृत गाथा उद्धृत की है, जिसमें भय, उपसर्ग, इन्द्रिय, परीषह, कषाय, राग, द्वेष, मोह तथा सुख और दुःख के विजेता मुनिराजों की वन्दना की गई है अर्थात् ये गुण जिस किसी भी साधु में विद्यमान हों उसे नमस्कार किया गया है।

इस प्रकार सामान्य रूप से सत्साधुओं के गुणों का स्मरण करने के पश्चात् नाम संकीर्तन पूर्वक सर्वप्रथम वीरप्रभु की वन्दना निम्न स्वरचित पद्य से की है -

शुद्धि-शक्त्योः परां काष्ठां योऽवाप्य शान्तिरुत्तमाम्।
देशयामास सद्धर्मं तं वीरं प्रणमाम्यहम॥

अर्थात् जिन्होंने ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मों के क्षय से आत्म शुद्धि, अन्तरायकर्म के क्षय से शक्ति की पराकाष्ठा तथा मोहनीय कर्म के क्षय से उत्तम शान्ति को प्राप्तकर धर्मका उपदेश दिया है ऐसे वीर प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ।

इसी क्रममें श्री मुख्तार सा. ने स्वामी समन्तभद्र, आचार्य प्रभाचन्द्र, आचार्य हेमचन्द्र और आचार्य विद्यानन्द के ग्रन्थों से पद्यों को उद्धृत कर वीर प्रभु का सातिशय स्मरण किया है।

वीरप्रभु का स्मरण करने के पश्चात् वीर प्रभु के समवसरण (धर्मसभा) को देखकर जिनका मान गल गया था ऐसे गौतम गणधर स्वामी का यशोगान किया है। तदनन्तर भद्रबाहु स्वामी, कसायपाहुड के रचयिता आचार्य गुणधर, महाकर्म प्रकृति-प्राभृत के उपदेष्टा आचार्य धरसेन और षट्खण्डागम के रचयिता एवं उनके शिष्यद्वय पुष्पदन्त-भूतबली का स्मरण किया है।

इसी क्रममें योगिराज कुन्दकुन्द का स्मरण श्रवणबेलगोला के शिलालेखों के आधार पर किया है और बतलाया है कि आचार्यकुन्दकुन्द श्रीचन्द्रगुप्त मुनिराज के वंश में उत्पन्न हुये थे तथा दीक्षा समय का नाम पद्मनन्दी था। सत्संयम के प्रसाद से उन्हें चारणऋद्धि प्राप्त थी, जिसके कारण वे पृथ्वी से चार अङ्गुल ऊपर आकाश में गमन करते थे। पुनः तत्त्वार्थसूत्र के कर्ता आचार्य उमास्वामी का स्मरण नगरताल्लुक और श्रवणबेलगोल के शिलालेखों के आधार पर किया है।

उपर्युक्त आचार्यों का स्तुतिपूर्वक स्मरण करने के पश्चात् श्री मुख्तार सा. ने अपने अनन्य आराध्य आचार्यसमन्तभद्र का विस्तार से स्मरण किया है। आचार्य समन्तभद्र के इस विस्तारपूर्वक विवेचन से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इनके पूर्व में जिन आचार्यों का उल्लेख किया गया है वह आचार्य समन्तभद्र पर प्रकाश डालने की पूर्व भूमिका थी और परवर्ती जिन आचार्यों पर प्रकाश डाला गया है वह आचार्य-परम्परा की स्तुति का निर्वाह मात्र है। क्योंकि पं. जुगलकिशोर मुख्तार आचार्य समन्तभद्र के अनन्य भक्त हैं, इसीलिये उन्होंने समन्तभद्र रचित ग्रन्थों पर विस्तृत हिन्दी भाष्य लिखे हैं और उनके ग्रन्थों के मर्म को जिस श्रद्धा-भक्ति के साथ उद्घाटित किया है वह बेजोड़ है। समन्तभद्रीय ग्रन्थो का भाष्य लिखते समय श्री मुख्तार सा. ने कोरा पाण्डित्य-प्रदर्शन नहीं किया है, अपितु उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति को भी प्रकट किया है, जिससे आचार्य समन्तभद्र के प्रति उनका विशेष अनुराग झलकता है।

सत्साधु-स्मरण-मङ्गलपाठ के कुल 74 पृष्ठों में से 27 पृष्ठ एवं 142 पद्यों में 54 पद्य मात्र आचार्य समन्तभद्र के परिचय एवं यशोगान में समर्पित हैं। इससे भी समन्तभद्र के प्रति उनका विशेष अनुराग दृष्टिगोचर होता है।

'स्वामि समन्तभद्र-स्मरण' शीर्षक को समन्तभद्र वन्दन, समन्तभद्र-स्तवन, समन्तभद्र-अभिनन्दन, समन्तभद्र-कीर्तन, समन्तभद्र-प्रवचन, समन्तभद्र-प्रणयन, समन्तभद्र-वाणी, समन्तभद्र-भारती, समन्तभद्र-शासन, समन्तभद्र-माहात्म्य, समन्तभद्र-जयघोष, समन्तभद्र-विनिवेदन और समन्तभद्र-हृदिस्थापन- इन 13 उपशीर्षकों में विभाजित किया है। श्री मुख्तार सा. ने

स्वामी समन्तभद्र का सम्यक्तया स्मरण करने हेतु अकलंकदेव की अष्टशती, जिनसेन का आदिपुराण, भट्टारक सकलकीर्ति का पार्श्वनाथचरित, भट्टारक सोमसेन का रामपुराण, कवि कृष्णदास का मुनिसुव्रत पुराण, नरसिंह भट्ट की जिनशतक टीका, भट्टारक शुभचन्द्र का पाण्डवपुराण, कवि दामोदर का चन्द्रप्रभचरित, निरुमकुडलु नरसीपुर के शिलालेख, विद्यानन्द की अष्टसहस्री, श्रवणबेलगोल के शिलालेख, शुभचन्द्र का ज्ञानार्णव, विजयवर्णी की शृङ्गरार्णवचन्द्रिका, वादिराजसूरि का पार्श्वनाथचरित, विद्यानन्द की युक्त्यनुशासन टीका, प्रभाचन्द्र की स्वयम्भूस्तोत्र टीका, हस्तिमल्ल का विक्रान्तकौरव, वीरनन्दी का चन्द्रप्रभचरित, कवि नागराज का समन्तभद्र भारती स्तोत्र, वसुनन्दीसूरि की देवागमवृत्ति, अजितसेन की अलङ्कारचिन्तामणि, ब्रह्म अजित के हनुमच्चरित्र, वादीभसिंह की गद्यचिन्तामणि, वर्द्धमानसूरि का वराङ्गचरित, वादिराज का यशोधरचरित और शिवकोटि की रत्नमाला से उद्धरण संकलित किये हैं।

इन उद्धरणों में स्वामी समन्तभद्र को कवित्व, गमकत्व, वादित्व और वाग्मित्व - इन चार असाधारण विशेषणों से अलङ्कृत किया है तथा भावी तीर्थङ्कर के रूप में प्रतिष्ठित करते हुये उनकी भक्ति के प्रभाव से चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिभा के प्रकट होने का उल्लेख है।

बेलूर ताल्लुका के शिलालेख नं 17 से ज्ञात होता है कि "श्रुतकेवलियों तथा और भी कुछ आचार्यों के बाद समन्तभद्रस्वामी श्रीवर्धमान महावीर स्वामी के तीर्थ की सहस्रगुणी वृद्धि करते हुये उदय को प्राप्त हुये हैं।" अतः स्वामी समन्तभद्र का जितना भी गुणगान किया जाये कम ही है।

तदनन्तर सिद्धसेन, देवानन्दि-पूज्यपाद एवं पात्रकेसरी का स्मरण करके शास्त्रार्थी अकलङ्कदेव को बौद्धों को बुद्धि की वैधव्य-दीक्षा देने वाला गुरू कहा है। इसके पश्चात् विद्यानन्द, माणिक्यनन्दी, अनन्तवीर्य, प्रभाचन्द्र, वीरसेन, जिनसेन और वादिराज का स्मरण किया है।

आचार्य समन्तभद्र के प्रसङ्ग में उल्लिखित ग्रन्थों, ग्रन्थकारों एवं शिलालेखों के अतिरिक्त अन्य जिन सन्दर्भों का उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ में हुआ है, उनमें वादिराजसूरि का एकीभावस्तोत्र, पूज्यपाद की चैत्यभक्ति, कुन्दकुन्द

की योगिभक्ति, समन्तभद्र का रत्नकरण्डश्रावकाचार स्वयम्भू: स्तोत्र एवं युक्त्यनुशासन, प्रभाचन्द्र का तत्त्वार्थसूत्र, हेमचन्द्र की अन्ययोगव्यवच्छेदिका, धर्मचन्द्र का गौतमचरित, रत्ननन्दी का भद्रबाहुचरित्र, वीरसेन की जयधवला टीका, जिनसेन का हरिवंशपुराण, मुनि कल्याणकीर्ति का यशोधरचरित, विद्यानन्दी का सुदर्शनचरित, प्रभाचन्द्र का न्यायकुमुदचन्द्र एवं प्रमेयकमलमार्तण्ड, अकलङ्कदेव का तत्त्वार्थवार्तिक, अनन्तवीर्य का सिद्धविनिश्चय, वादिराजसूरि का न्यायविनिश्चयविवरण, लघु अनन्तवीर्य की प्रमेयरत्नमाला, गुणभद्र का उत्तरपुराण और मल्लिषेणप्रशस्ति का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री मुख्तार सा. द्वारा किया गया प्रस्तुत संकलन अपनी अनेक विशेषताओं के कारण विद्वज्जनों का हृदयहार बन गया है। साथ ही शोधी-खोजी विद्वानों के लिये एक ही स्थान पर महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक शोध-सामग्री प्रस्तुत करता है।

श्रोत्रेण श्रवणं तस्य वचसा कीर्तनं तथा।
मनसा मननं तस्य महासाधनमुच्यते॥

कान से भगवान के नाम, गुण और लीलाओं का श्रवण, वाणी द्वारा उनका कीर्त्तन तथा मन के द्वरा उनका मनन इन तीनों को महान् साधन कहा गया है।

-शिवपुराण

स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य।

भगवान की पूजा ही स्वधर्म है।

-भागवत (५।१०।२३)

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः॥

अच्छे पुरुष दूसरों के सन्ताप से सन्तप्त रहते हैं। यही उनके लिए परमात्मा की सर्वोच्च आराधना है।

-भागवत (८।७।४४)

समाधितन्त्र प्रस्तावना की समीक्षा

डॉ. रतनचन्द्र जैन, भोपाल

पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार का जन्म आज से 121 वर्ष पहले मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी विक्रमसंवत् 1934 (ईसवी सन् 1877) को उत्तरप्रदेश के सरसावा कस्बे में हुआ था, जो सहारनपुर जिले में स्थित है।

मुख्तार जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे एक अच्छे कवि, कुशल पत्रकार, क्रान्तिकारी निबन्धकार, निष्पक्ष समीक्षक, दक्ष ग्रन्थसम्पादक, निपुण प्रस्तावना-लेखक, विद्वान् भाष्यकार एवं पटु इतिहासकार थे। उनके व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष यह था कि उन्होंने निष्पक्षता के मैदान में उतरकर सामाजिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, शिथिलाचारों और विकृतियों पर निर्भीक होकर कुठाराघात किया था।[1]

मुख्तार जी ने जिन अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया है उनमें आचार्य पूज्यपादकृत 'समाधितन्त्र' भी है। सम्पादक का एक महत्त्वपूर्ण कार्य होता है ग्रन्थ की प्रस्तावना का लेखन। प्रस्तावना में ग्रन्थकार के जीवन और कृतियों का शोधपूर्ण परिचय देते हुए विवक्षित ग्रन्थ के बहुमुखी पक्षों का उद्घाटन किया जाता है।

'समाधितन्त्र' आचार्य पूजयपादकृत एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है। इसकी प्रस्तावना में मुख्तार जी ने सर्वप्रथम ग्रन्थलेखक के स्थितिकाल, पाँचवीं शताब्दी ईसवी का संकेत कर श्रवणबेलगोला के शिलालेखों के आधार पर बतलाया है कि वे तीन नामों से प्रसिद्ध थे: पूज्यपाद, देवनन्दी और जिनेन्द्रबुद्धि देवनन्दी उनका दीक्षानाम था, जिनेन्द्रबुद्धि नाम बुद्धि की प्रकर्षता के कारण आगे चलकर प्राप्त हुआ और लोक में धर्म की पुन: प्रतिष्ठा करने के कारण जब से उनके चरणयुगल देवताओं ने पूजे तब से सुधीजन उन्हें 'पूज्यपाद' नाम से अभिहित करने लगे।[2]

श्रवणबेलगोला के शकसंवत् 1355 के शिलालेख के आधार पर मुख्तार जी ने पूज्यपाद स्वामी के चामत्कारिक गुणों का भी प्रकाशन किया है। यथा, वे अद्वितीय औषधऋद्धि के धारक थे, विदेहक्षेत्रस्थित जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन से उनका गात्र पवित्र हो गया था और उनके चरण-धोए जल के स्पर्श से एक समय लोहा भी सोना बन गया था।[3]

इन शिलालेखीय उल्लेखों तथा पूज्यपाद स्वामी के सर्वार्थसिद्ध ग्रन्थ की लोकप्रियता से मुख्तार जी ने पूज्यपाद स्वामी के व्यक्तित्व का जो आकलन किया है वह अत्यन्त सटीक है। उसे उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया है-

"इस तरह आपके इन पवित्र नामों के साथ कितना ही इतिहास लगा हुआ है और वह सब आपकी महती कीर्ति, अपार विद्वत्ता एवं सातिशय प्रतिष्ठा का द्योतक है। इसमें सन्देह नहीं कि पूज्यपाद स्वामी एक बहुत ही प्रतिभाशाली आचार्य, माननीय विद्वान्, युगप्रधान और अच्छे योगीन्द्र हुए हैं। आपके उपलब्ध ग्रन्थ निश्चय ही आपकी असाधारण योग्यता के जीते-जागते प्रमाण हैं। भट्ट अकलंकदेव और आचार्य विद्यानन्द जैसे बड़े-बड़े प्रतिष्ठित आचार्यों ने अपने राजवार्तिकादि ग्रन्थों में आपके वाक्यों का, सर्वार्थसिद्धि आदि के पदों का खुला अनुसरण करते हुए बड़ी श्रद्धा के साथ उन्हें स्थान ही नहीं दिया, बल्कि अपने ग्रन्थों का अंग तक बनाया है।"[4]

कृतियाँ

मुख्तार जी ने अपनी प्रस्तावना में पूज्यपाद की कृतियों का सप्रमाण परिचय दिया है। शिलालेखों तथा ग्रन्थान्तरों में प्राप्त उल्लेखों के आधार पर जिन ग्रन्थों को उन्होंने पूज्यपाद द्वारा रचित माना है वे इस प्रकार हैं : जैनेन्द्रव्याकरण, सर्वार्थसिद्धि, समाधितन्त्र, इष्टोपदेश, सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चरित्रभक्ति, योगिभक्ति, आचार्यभक्ति, निर्वाणभक्ति तथा नन्दीश्वरभक्ति। ये सब ग्रन्थ संस्कृत में लिखे गये हैं। इनके अतिरिक्त एक आयुर्वेदविषयक ग्रन्थ वैद्यशास्त्र, एक व्याकरणविषयक ग्रन्थ शब्दावतार, एक नयप्रमाण विषयक ग्रन्थ सारसंग्रह, दो काव्यशास्त्र विषयक ग्रन्थ जैनाभिषेक एवं छन्दःशास्त्र तथा

एक न्यायविषयक ग्रन्थ की रचना भी उनके द्वारा की गई थी। ये ग्रन्थ वर्तमान में उपलब्ध नहीं है।

जैनेन्द्रव्याकरण के द्वारा पूज्यपाद स्वामी ने उत्कृष्ट वैयाकरण के रूप में जो ख्याति अर्जित की थी उसे मुख्तार जी ने अनेक प्राचीन आचार्यों के प्रशंसावचनों को उद्धृत कर प्रमाणित किया है। जिनसेन, वादिराज, पाण्डवपुराणकर्ता शुभचन्द्र, पद्मप्रभमलधारिदेव धनञ्जय, गुणनन्दी तथा ज्ञानार्णवकार शुभचन्द्र इन आचार्यों के प्रशंसावचन मुख्तार जी ने उद्धृत किये हैं। इससे स्पष्ट होता है कि प्रस्तावनालेखन में पं. जुगलकिशोर जी ने कितना परिश्रम किया था, कितने ग्रन्थों का मन्थन करने के बाद उन्होंने प्रस्तावना लिखी थी।

पं नाथूराम जी प्रेमी ने अपने एक आलेख में यह प्रतिपादित किया था कि आचार्य पूज्यपाद ने वैद्यकशास्त्र पर कोई ग्रन्थ नहीं रचा। पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार ने अनेक प्रमाण देकर प्रेमी जी के इस मत का खण्डन किया है और पूज्यपाद स्वामी को वैद्यकशास्त्र ग्रन्थ का रचयिता सिद्ध किया है। इससे पता चलता है कि मुख्तार जी की गवेषणाशक्ति कितनी उत्कट थी। वे किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कितनी छानबीन करते थे। अपनी सूक्ष्म आँखों से देखे बिना दूसरों के निश्कर्षों को सहज स्वीकार कर लेना उनकी प्रवृत्ति में नहीं था।

इसी प्रकार प्रेमी जी ने 'शब्दावतार' नामक ग्रन्थ के भी पूज्यपाद द्वारा रचित होने में सन्देह व्यक्त किया था, परन्तु मुख्तार जी ने अपनी प्रस्तावना में इस सन्देह का प्रमाणपूर्वक निरसन किया है।

कृतियों और प्रशंसावचनों के आधार पर व्यक्तित्व का मूल्यांकन

शिलालेखों और ग्रन्थान्तरों में प्राप्त प्रशंसावचनों तथा पूज्यपाद के कृतिवैभव के आधार पर मुख्तार जी ने पूज्यपाद स्वामी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया है। वे लिखते हैं -

"ऊपर के सब अवतरणों एवं उपलब्ध ग्रन्थों पर से पूज्यपाद स्वामी की चतुर्मुखी प्रतिभा का स्पष्ट पता चलता है और इस विषय में कोई सन्देह

नहीं रहता कि आपने उस समय के प्रायः सभी महत्त्व के विषयों में ग्रन्थों की रचना की है। आप असाधारण विद्वत्ता के धनी थे, सेवापरायणों में अग्रगण्य थे, महान् दार्शनिक थे, अद्वितीय वैयाकरण थे, अपूर्व वैद्य थे, धुरन्धर कवि थे, बहुत बड़े तपस्वी थे, सातिशय योगी थे और पूज्य महात्मा थे। इसी से कर्णाटक के प्रायः सभी प्राचीन कवियों ने, ईसा की ८वीं, ९वीं शताब्दियों के विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थों में बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ आपका स्मरण किया है और आपकी मुक्तकण्ठ से खूब प्रशंसा की है।"[5]

आचार्य पूज्यपाद के जीवन से कुछ चमत्कारिक घटनाएँ जुड़ी हुई हैं, जैसे विदेहगमन, घोर तपश्चर्यादि के कारण आँखों की ज्योति का नष्ट हो जाना तथा 'शान्त्यष्टक' के पाठ से उसकी पुनः प्राप्ति, देवताओं के द्वारा चरणों का पूजा जाना, औषधिऋद्धि की उपलब्धि, और पादस्पृष्टजल से लोहे का स्वर्ण में परिणत हो जाना। इनके विषय में मुख्तार जी ने न्याय-विशेष के आधार पर अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि "इनमें असम्भव कुछ भी नहीं है। महायोगियों के लिए सब कुछ शक्य है। जब तक कोई स्पष्ट बाधक प्रमाण उपस्थित न हो तब तक 'सर्वत्र बाधकाभावाद् वस्तुव्यवस्थितिः' की नीति के अनुसार इन्हें माना जा सकता है।"

पितृकुल और गुरूकुल

नामपरिचय, गुणपरिचय और ग्रन्थपरिचय के बाद प्रस्तावनालेखक ने पूज्यपादस्वामी के पितृकुल और गुरूकुल का पचिय दिया है। इसके भी स्रोत शिलालेख और ग्रन्थान्तरों में प्राप्त उल्लेख हैं। मुख्तार जी लिखते हैं-

"आप मूलसंघान्तर्गत नन्दिसंघ के प्रधान आचार्य थे, स्वामी समन्तभद्र के बाद हुए हैं। श्रवणबेलगोल के शिललेखों (नं. 40, 108) में समन्तभद्र के उल्लेखानन्तर 'ततः' पद देकर आपका उल्लेख किया गया है और स्वयं पूज्यपाद ने भी अपने 'जैनेन्द्र' में 'चतुष्टयं समन्तभद्रस्य' इस सूत्र (5-4-168) के द्वारा समन्तभद्र के मत का उल्लेख किया है। इससे आपका समन्तभद्र के बाद होना सुनिश्चित है। आपके एक शिष्य वज्रनन्दी ने विक्रम संवत् ५२६ में द्राविड़संघ की स्थापना की थी, जिसका उल्लेख देवसेन के 'दर्शनसार'

ग्रन्थ में पाया जाता है। आप कर्णाटक देश के निवासी थे। कन्नड़ भाषा में लिखे हुए 'पूज्यपादचरिते' तथा 'राजवलीकथे' नामक ग्रन्थों में आपके पिता का नाम 'माधवभट्ट' तथा माता का नाम 'श्रीदेवी' दिया है और आपको ब्राह्मणकुलोद्भव लिखा है। इसके सिवाय प्रसिद्ध व्याकरणकार पाणिनि ऋषि को आपका मातुल (मामा) भी बतलाया गया है, जो समयादिक दृष्टि से विश्वास किये जाने के योग्य नहीं है।''[7]

यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि मुख्तार जी ने उक्त ग्रन्थों की अन्य बातें तो स्वीकार कर ली, किन्तु पाणिनि के पूज्यपाद के मामा होने की बात स्वीकार नहीं की। इससे यह तथ्य सामने आता है कि प्रस्तावनालेखक ने प्राचीन ग्रन्थों में किये गये उल्लेखों को आँख मूँदकर स्वीकार नहीं किया, बल्कि उनके औचित्य की परीक्षा करने पर जो उल्लेख उचित प्रतीत नहीं हुआ उसे अस्वीकार्य भी घोषित किया है। इससे ग्रन्थसम्पादक की निष्पक्षता एवं प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

समाधितन्त्र

चूँकि समाधितन्त्र प्रस्तावना का केन्द्रबिन्दु है, अतः मुख्तार जी ने इस ग्रन्थ के स्वरूप का उद्घाटन करने में विशेष परिश्रम किया है। जिन विविध द्वारों से मुख्तार जी ने ग्रन्थ के स्वरूप को उद्घाटित किया है वे इस प्रकार हैं–

1 ग्रन्थ के प्रकार, महत्व और सौन्दर्य का उन्मीलन
2. प्रतिपाद्य विषय के स्रोतों का निरीक्षण
3 ग्रन्थान्तरों के प्रभाव का अनुसन्धान
4. ग्रन्थान्तरों पर पड़े प्रभाव का अन्वेषण
5. प्रतिपाद्यविषय एवं प्रतिपादनशैली का विश्लेषण
6. ग्रन्थनाम एवं पद्यसंख्या का निर्णय
7. संस्कृतटीकाकार की पहचान

ग्रन्थ के प्रकार, महत्त्व और सौन्दर्य का उन्मीलन

वाङ्मयाचार्य मुख्तार जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकार, महत्त्व और सौन्दर्य का उन्मीलन निम्नलिखित शब्दों में किया है–

''यह ग्रन्थ आध्यात्मिक है और जहाँ तक मैंने अनुभव किया है, ग्रन्थकार महोदय के अन्तिम जीवन की कृति है, उस समय के करीब की रचना है, जबकि आचार्य महोदय की प्रवृत्ति बाह्य विषयों से हटकर बहुत ज्यादा अन्तर्मुखी हो गयी थी और आप स्थितप्रज्ञ जैसी स्थिति को पहुँच गये थे। यद्यपि जैन समाज में अध्यात्मविषय के कितने ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं और प्राकृतभाषा के समयसार जैसे महान् एवं गूढ ग्रन्थ भी मौजूद हैं, परन्तु यह छोटा-सा संस्कृत ग्रन्थ अपनी खास विशेषता रखता है। इसमें थोड़े ही शब्दों द्वारा सूत्ररूप से अपने विषय का अच्छा प्रतिपादन किया गया है। प्रतिपादनशैली बड़ी ही सरल सुन्दर एवं हृदयग्राहिणी है। भाषा सौष्ठव देखते ही बनता है और पद्यरचना प्रसादादि गुणों से विशिष्ट है। इसी से पढ़ना प्रारम्भ करके छोड़ने को मन नहीं होता। ऐसा मालूम होता है कि समस्त अध्यात्मवाणी का दोहन करके अथवा शास्त्रसमुद्र का मन्थन करके जो नवनीतामृत निकाला गया है, वह सब इसमें भरा हुआ है और अपनी सुगन्ध से पाठक-हृदय को मोहित कर रहा है। इस ग्रन्थ के पढ़ने से चित्त बड़ा ही प्रफल्लित होता है, पद-पद पर अपनी भूल का बोध होता चला जाता है, अज्ञानादि मल छँटता रहता है और दु:खशोकादि आत्मा को सन्तप्त करने में समर्थ नहीं होते।''[8]

प्रतिपाद्य विषय के स्रोतों का निरीक्षण

समाधितन्त्र के प्रतिपाद्य विषय के स्रोतों पर प्रकाश डालते हुए मुख्तार जी कहते हैं -

''इस ग्रन्थ में शुद्धात्मा के वर्णन की मुख्यता है और वह वर्णन पूज्यपाद ने आगम, युक्ति तथा अपने अन्तकरण की एकाग्रता द्वारा सम्पन्न स्वानुभव के बल पर भले प्रकार जाँच-पड़ताल के बाद किया है, जैसा कि ग्रन्थ के निम्न प्रतिज्ञा वाक्य से प्रकट है-

श्रुतेन लिङ्गेन यथात्मशक्ति समाहितान्त: करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये॥[9]

ग्रन्थ का तुलनात्मक अध्ययन करने से भी यह मालूम होता है कि इसमें श्री कुन्दकुन्द जैसे प्राचीन आचार्यों के आगम वाक्यों का बहुत कुछ अनुसरण किया गया है। कुन्दकुन्द का

एगो में सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा में बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥[10]

यह वाक्य तो इस ग्रन्थ का प्राण जान पड़ता है। ग्रन्थ के कितने ही पद्य कुन्दकुन्द के 'मोक्षप्राभृत' की गाथाओं को सामने रखकर रचे गये हैं (उनके संस्कृत रूपान्तर मात्र है)। ऐसी कुछ गाथाएँ पद्य नं. 4, 5, 7, 10, 11, 12, 18, 78, 102 के नीचे फुटनोटों में उद्धृत कर दी गयी है। एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है-

जं मया दिस्सदे रूवं तण्ण जाणादि सव्वहा।
जाणगंदिस्सदे णं तं तम्हा जंपेमि केण हं॥ मोक्षप्राभृत २९
यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम्॥ समाधितन्त्र १८

इससे स्पष्ट होता है कि समाधितन्त्र की विषयवस्तु पर आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का विशेष प्रभाव है।

ग्रन्थान्तरों पर पड़े प्रभाव का अन्वेषण

तुलनात्मक अध्ययन से मुख्तार जी की दृष्टि में यह बात भी आयी कि युक्ति, आगम तथा स्वानुभव पर आश्रित होने से समाधितन्त्र इतना प्रमाणिक और आकर्षक ग्रन्थ बन गया है कि उत्तरवर्ती आचार्यों के साहित्य पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा है। 'परमात्म प्रकाश' और 'ज्ञानार्णव' जैसे ग्रन्थों में इसका खुला अनुसरण किया गया है, जिसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत ग्रन्थ के पादटिप्पणों में दिखाये गये हैं।

प्रतिपाद्यविषय एवं प्रतिपादनशैली का विश्लेषण

प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादनशैली का विश्लेषण मुख्तार जी ने इन शब्दों में किया है-

"चूँकि ग्रन्थ में शुद्धात्मा के कथन की प्रधानता है और शुद्धात्मा को समझने के लिए अशुद्धात्मा को भी जानने की जरूरत होती है, इसी से ग्रन्थ में आत्मा के बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद करके उनका

स्वरूप समझाया है। साथ ही, परमात्मा को उपादेय (आराध्य), अन्तरात्मा को उपायरूप आराधक और बहिरात्मा को हेय (त्याज्य) ठहराया है। इन तीनों आत्मभेदों का स्वरूप समझाने के लिए ग्रन्थ में जो कलापूर्ण तरीका अख्तियार किया गया है वह बड़ा ही सुन्दर एवं स्तुत्य है और उसके लिए ग्रन्थ को देखते ही बनता है।"

वह कलात्मक तरीका है बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा शब्दों के अर्थ को खोलने वाले विविध पदों का स्थान-स्थान पर प्रयोग। उन पदों को पढ़ने से ही बहिरात्मादि शब्दों का अभिप्राय सरलतया हृदयंगम हो जाता है। उन समस्त पदों की सूची मुख्तार जी ने प्रस्तावना में पद्यक्रमांक सहित दी है। उनके कुछ उदाहरण इस प्रकार है:-

बहिरात्मार्थसूचक पद : शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिः आत्मज्ञानपराङ्मुखः, अविदितात्मा, देहे स्वबुद्धिः, उत्पन्नात्ममति र्देहे, परत्राहम्मतिः, देहात्मदृष्टिः, अनात्मदर्शी।

अन्तरात्मार्थसूचक पद : स्वात्मन्येवात्मधीः, देहादौ विनिवृत्तात्मविभ्रमः, स्वस्मिन्नहम्मतिः, आत्मवित्, स्वात्मन्येवात्मदृष्टिः, आत्मदर्शी, दृष्टात्मत्त्वः।

परमात्मार्थसूचक पद : अक्षयानन्तबोधः, विविक्तात्मा, परमानन्दनिर्वृतः, स्वस्थात्मा, विद्यामयरूपः, केवलज्ञप्तिविग्रहः।

अर्थविशेष को प्रकट करने वाले इन विविध पदों का प्रयोग ग्रन्थकार की अद्भुत साहित्यिक प्रतिभा का उद्घोष करते हैं।

समाधितन्त्र के प्रत्येक पद्य में वर्णित विषय की अनुक्रमणिका संलग्न करके भी पद्यों के अर्थ को समझना सुकर बना दिया गया है। इसने मुख्तार सा. की सम्पादनकला में चार चाँद लगा दिये हैं।

ग्रन्थनाम और पद्यसंख्या का निर्णय

ग्रन्थकार पूज्यपादस्वामी ने अन्तिम पद्य में ग्रन्थ को 'समाधि तन्त्र' नाम से अभिहित किया है। टीकाकार प्रभाचन्द्र ने इसे 'समाधिशतक' नाम

दिया है। इस आधार पर मुख्तार जी ने ग्रन्थ का मुख्य नाम 'समाधितन्त्र' और उपनाम 'समाधिशतक' स्वीकार किया है। किन्तु डॉ. परशुराम लक्ष्मण (पी. एल.) वैद्य ने मुख्तार जी के मत पर आपत्ति करते हुए ग्रन्थ का मुख्य नाम समाधिशतक माना है, क्योंकि उनके अनुसार पद्यसंख्या मूलत: सौ ही है। ग्रन्थ में जो 105 पद्य मिलते हैं, उनमें से पद्यक्रमांक 2, 3, 103, 104 और 105 को वैद्य जी ने प्रक्षिप्त बतलाया है। किंतु मुख्तार जी ने अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर उक्त पाँचों पद्यों के प्रक्षिप्त होने का खण्डन किया है और सिद्ध किया है कि पूज्यपाद स्वामी द्वारा रचित पद्यों की संख्या 105 ही है। इस प्रकार जब 105 वाँ पद्य ग्रन्थकार द्वारा ही रचित है तब उसमें उल्लिखित समाधितन्त्र नाम भी ग्रन्थकार द्वारा ही दिया गया है, यह स्वयमेव सिद्ध होता है। अत: 'समाधितन्त्र' ही ग्रन्थ का प्रमुख नाम है।

टीकाकार की पहचान

ग्रन्थ के संस्कृत टीकाकार का नाम प्रभाचन्द्र है। प्रभाचन्द्र नाम के अनेक मुनि, आचार्य तथा भट्टारक हो गये हैं। रत्नकरण्ड श्रावकाचार के टीकाकार का नाम भी प्रभाचन्द्र है। इनमें समाधितन्त्र के टीकाकार कौनसे प्रभाचन्द्र हैं, यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। मुख्तार जी ने रत्नकरण्डश्रावकचार तथा समाधितन्त्र की टीकाओं की तुलना करके उनमें प्राप्त समानताओं के आधार पर सिद्ध किया है कि समाधितन्त्र के टीकाकार वही प्रभाचन्द्र हैं जिन्होंने रत्नकरण्डश्रावकचार की टीका की है। दोनों टीकाओं के मंगलाचरण पद्यों, मंगलाचरण के बाद के प्रस्तावना वाक्यों, प्रथमपद्य के सारांश-वाक्यों, परमेष्ठी पद की व्याख्याओं तथा टीकाओं के अन्तिम पद्यों में भाव, भाषा शैली और छन्दों की अत्यन्त समानता है।

उपसंहार

इस प्रकार वाङ्मयाचार्य पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार ने समाधितन्त्र की प्रस्तावना में विभिन्न तर्कों और प्रमाणों से ग्रन्थ के कर्ता और कृति के सर्वांगीण स्वरूप का उद्घाटन करने में अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया है। जिससे स्वाध्यायियों और शोधार्थियों के लिये समाधितन्त्र के हार्द को हृदयंगम करना

अति सुकर हो गया है। प्रस्तावना की भाषा सरल, प्रौढ और भावोद्वेलक है। ग्रन्थ के सम्पादन एवं प्रस्तावना की गहन अनुसन्धानात्मक बहुआयामी छवि का अवलोकरन करने से वाङ्मयाचार्य पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' एक सिद्धहस्त ग्रन्थसम्पादक एवं प्रस्तावनालेखक के रूप में सामने आते हैं।

सन्दर्भ

1 प जुगलकिशोर जी मुख्तार : कृतित्व एवं व्यक्तित्व - डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, पृष्ठ 78

2 समाधितन्त्र-प्रस्तावना, पृष्ठ 1

3. वही पृष्ठ 2

4. वही, पृष्ठ 2

5 वही, पृष्ठ 9

6 वही, पृष्ठ 10

7 वही, पृष्ठ 10

8 वही, पृष्ठ 10-11

9 श्लोक, 3

10 नियमसार गाथा १०२ तथा मोक्षप्राभृत गाथा ५९

11 समाधितन्त्र-प्रस्तावना, पृष्ठ 12-13

आत्मानं तन्मयं ध्यायन् मूर्ति संपूजयेद्धरेः।

अपने आपको भगवन्मय ध्यान करते हुए ही भगवान की मूर्ति का पूजन करना चाहिए।

-भागवत (११।३।५४)

हिन्दू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावे परम पद जहँ देहुरा न मसीत॥

-गोरखनाथ (गोरखबानी, सबदी, ६८)

कबीर दुनियाँ देहुरै, सीस नवाँवण जाइ।
हिरदा भीतर हरि बसै, तू ताही सौं ल्यौ लाइ॥

-कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ. ४४)

''अध्यातम-रहस्य'' का भाष्य और उसके व्याख्याकार

पं. निर्मल जैन, सतना (म. प्र.)

''अध्यात्म-रहस्य'' ग्रंथ तथा उसका भाष्य दो ऐसे मनीषी विद्वानों के विचारों का सम्मिलन है जो अपनी विद्वत्ता के कारण अपने-अपने समय में विद्वंत्शिरोमणि बनकर रहे। इतना ही नहीं दोनों ने ग्रंथ रचना में अपने ज्ञान का सम्यक् उपयोग करके सरस्वती भण्डार की जो श्रीवृद्धि की और ज्ञान के साथ आचरण का जो सामंजस्य बनाकर रखा उसके कारण वे आचार्यकल्प और आचार्य जैसे संबोधनों से भी स्मरण किये जाते रहे।

इन दोनों विद्वानों ने जैन दर्शन के गूढ़तम विषय योग और ध्यान को भी अपने चिंतन में उतारा और उसका नवनीत जिज्ञासु श्रावकों के लिये लिपिबद्ध किया। दोनों विद्वानों ने मौलिक लेख के साथ ही पूर्वाचार्यों के गूढ़ रहस्य वाले ग्रंथों की सरल टीकायें भी कीं। दोनों विद्वानों की एक समानता और भी उल्लेखनीय है कि इन्हें अपने-अपने समय में ही पूर्वाचार्यों के ग्रंथों में से कुछ नये अथवा प्रचलन के विपरीत प्रकरण उद्‌घाटित करके उनका दृढ़तापूर्वक समर्थन करने के कारण कतिपय विद्वानों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं का कोपभाजन भी बनना पड़ा।

यद्यपि इन दोनों विद्वानों के समय में 700 वर्षों का अंतराल है परंतु दोनों ने ही अपने-अपने समय में जैनधर्म को संकीर्ण बनाने वाली विचारधाराओं का विरोध करके स्पष्ट घोषित किया था कि - ''केवल जैन कुल में जन्म लेने वाले ही जैन नहीं होते वरन अपने आचरण को जैनत्व के अनुकूल बनाकर कोई भी जैन बन सकता है।

अध्यात्म-रहस्य ग्रंथ पंडितप्रवर आशाधरजी की कृति है। यथानाम यह गंथ अध्यात्म के रहस्यों को योग और ध्यान के द्वारा उद्‌घाटित करने की

कुंजी है। इस ग्रंथ का अपरनाम "योगोद्दीपन-शास्त्र" है। ग्रंथ की रचना वि. सं. 1300 के आसपास हुई और इसका अनुवाद तथा व्याख्या लिखने का कार्य जैनदर्शन, साहित्य एवं इतिहास के चिंतक विद्वान् पं. जुगलकिशोर मुख्तार जिनका कवि के रूप में "युगवीर" नाम भी प्रचलित था, ने वि. सं. 2014 में सम्पन्न किया।

पं. आशाधरजी ने 72 श्लोकों वाले इस छोटे से ग्रंथ में अध्यात्म का सार गागर में सागर के रूप में भर दिया है। उन्होंने इस ग्रंथ की रचना अनगार-धर्मामृत और सागर-धर्मामृत जैसे ग्रंथों को लिखने के बाद की है इससे इस ग्रंथ में उनके चिंतन का वैशिष्ठ्य छलकता हुआ दिखाई पड़ता है। पंडितप्रवर ने आचार्य पूज्यपाद के ग्रंथों का विशेषरूप से अध्ययन-मनन किया होगा, क्योंकि अध्यात्म-रहस्य में समाधितंत्र की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। आचार्य पूज्यपाद के प्रसिद्ध ग्रंथ "इष्टोपदेश" पर तो आपने संस्कृत में टीका भी लिखी थी।

अध्यात्म-रहस्य ग्रंथ के विषय में स्वयं पं आशाधर जी ने अनगार-धर्मामृत की टीका की प्रशस्ति में यह श्लोक लिखा है -

आदेशात् पितुरध्यात्म-रहस्यं नाम यो व्यधात।
शास्त्रं प्रसन्न-गंभीरं प्रियमारब्धयोगिनाम्॥

अर्थात् अध्यात्म-रहस्य नाम का यह शास्त्र अपने अध्यात्म रसिक पिता के आदेश से लिखा है तथा यह ग्रंथ प्रसन्न, गंभीर और योगाभ्यास करने वालों के लिये प्रिय है।

मेरे इस आलेख का विषय ग्रंथ के भाष्य और भाष्यकार से संबंधित है अतः मैं उसकी चर्चा ही विशेष रूप से करना चाहूंगा। अध्यात्म रहस्य का भाष्य पढ़ने से पूर्व हमें भाष्यकार पं. जुगलकिशोर मुख्तार की लम्बी प्रस्तावना पढ़ने को मिलती है। पंडितजी प्रस्तावना लेखन में सिद्धहस्त थे, अपने सभी सम्पादित ग्रंथों में उन्होंने लम्बी प्रस्तावनायें लिखी हैं। इनके लिखनेमें उन्होंने जो श्रम किया है, वह ग्रंथ के अनुवाद में हुए श्रम से कम नहीं है।

छोटे से ग्रंथ अध्यात्म-रहस्य का मूल, अनुवाद और व्याख्या कुल 92 पृष्ठों में समाहित है, जबकि इस पर पंडित जी ने 32 पृष्ठ की प्रस्तावना लिखी है। इस प्रस्तावना में उन्होंने ग्रंथ का परिचय देते हुए उसकी खोज की कहानी प्रस्तुत की है। ग्रंथ के विषय का विवेचन वृहत् रूप मे करके विषय की अन्य प्रसिद्ध ग्रंथों से तुलना भी की है। ग्रंथकार का संक्षिप्त परिचय देते हुए ग्रंथ निर्माण का काल निर्णय भी तर्क सहित किया गया है।

मुख्तार सा. ने ग्रंथ की प्रस्तावना में आत्मा के गुणों की और विकास की चर्चा करते हुए अन्य दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित आत्मस्वरूप की मान्यमाओं का खण्डन भी किया है। पं. आशाधर जी ने "अध्यात्म-रहस्य" में विभिन्न विषयों जैसे आत्मस्वरूप, उसके साक्षात्कार का उपाय, शास्त्र और गुरू की उपादेयता, व्यवहार और निश्चय से गुरू का स्वरूप, मोक्षमार्ग का स्वरूप, व्यवहार और निश्चय रत्नत्रय, राग-द्वेष-मोह का स्वरूप, उसकी प्रवृत्ति का फल, अशुभ-शुभ और शुद्ध उपयोगों का स्वरूप, त्रिविध कर्मों का स्वरूप, हेय-उपादेय-विवेक आदि का बहुत अच्छा स्पष्ट विवेचन श्लोकों में किया है। पं जुगलकिशोरजी ने भी सभी विषयों की विवेचना अन्य ग्रंथों के उदाहरण देकर तथा अपने चिंतन के बल पर की है।

ग्रंथ के श्लोकों का पहले पंडितजी ने सरल हिन्दी में अर्थ किया है। फिर व्याख्या शीर्षक से उसका विस्तार किया है। व्याख्या सभी श्लोकों पर है जो आवश्यकतानुसार पांच पंक्तियों से लेकर आठ पृष्ठों तक में लिखी गई है। व्याख्या में आपने श्लोक के गूढ़ अर्थों को भी अत्यंत सरलता से इस प्रकार समझा दिया है कि विषय को गहराई से न समझने वाले भी उसका सामान्य बोध तो कर ही लेंगे। जैसे ध्यान का स्वरूप समझाने के लिये वे लिखते हैं -

"अब देखना यह है कि ध्यान किसको कहते हैं - तत्वार्थसूत्रदि ग्रंथों में "एकाग्रचिंतानिरोधों ध्यानं" जैसे वाक्यों के द्वारा एकाग्र में चिंता के निरोध को ध्यान कहा है। इस लक्षणात्मक वाक्य में एक, अग्र, चिन्ता और निरोध ये चार शब्द हैं। इनमें एक प्रधान का, अग्र आलम्बन का, चिन्ता स्मृति का और निरोध शब्द नियंत्रण का वाचक है और इससे लक्षण का फलितार्थ यह हुआ कि किसी एक प्रधान आलम्बन में - चाहे वह द्रव्य रूप हो या पर्याय रूप -

स्मृति का नियंत्रण करना, नाना अवलम्बनों से हटाकर उसी में उसे रोक रखकर अन्यत्र न जाने देना ध्यान कहलाता है।"

इतनी सरल व्याख्या करने के बाद भी प्राचीन शास्त्रों में अन्य प्रकार से की गई ध्यान की विवेचना को स्मरण करके मुख्तार जी लिखते हैं कि -

"अंगति जानातीत्यग्र आत्मा" इस निर्युक्ति से अग्र नाम आत्मा का है, सारे तत्वों में अग्रगण्य होने से भी आत्मा को अग्र कहा जाता है। द्रव्यार्थिक नय से "एक" नाम केवल, असहाय या तथोदित (शुद्ध) का है, चिन्ता अंतःकरण की वृत्ति को और निरोध नियंत्रण तथा अभाव को भी कहते हैं। इस दृष्टि से एकमात्र शुद्ध आत्मा में चित्तवृत्ति के नियंत्रण एवं चिन्तांतर के अभाव को ध्यान कहते हैं।" फिर निष्कर्ष रूप में अपना मंतव्य भी उन्होंने व्यक्त किया कि - "ध्यान में एकाग्रता को सबसे अधिक महत्व प्राप्त है, वह व्यग्रतामय अज्ञान की निवृत्तिरूप है और उससे शक्ति केन्द्रित एवं बलवती होकर शीघ्र ही सफलता की प्राप्ति होती है।" अध्यात्म-रहस्य में द्रव्य की उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्मकता को दर्शाने वाले पं. आशाधरजी के श्लोक नं. 34-35 की व्याख्या करते हुए पंडित जी ने पहले विषय को स्वर्ण और आभूषणों के प्रसिद्ध उदाहरणों से स्पष्ट किया है, फिर लिखा है कि - "इस तरह स्वर्ण द्रव्य अपने गुणों की दृष्टि से ध्रौव्य और पर्यायों की दृष्टि से व्यय तथा उत्पाद के रूप में लक्षित होता है। यह सब एक ही समय में घटित हो रहा है। व्यय और उत्पाद का समय यदि भिन्न-भिन्न माना जायेगा तो द्रव्य के सत्‌रूप की कोई व्यवस्था ही नहीं बन सकेगी, क्योंकि एक पर्याय के व्यय के समय यदि दूसरी पर्याय का आविर्भाव नहीं हो रखा है तो द्रव्य उस समय पर्याय से शून्य ठहरेगा और द्रव्य का पर्याय से शून्य होना, गुण से शून्य होने के समान उसके अस्तित्व में बाधक है। इसी से द्रव्य का लक्षण गुण-पर्यायवान् भी कहा गया है, जो प्रत्येक समय उसमें पाया जाना चाहिये, एक क्षण का भी अंतर नहीं बन सकता। आत्मा भी चूंकि द्रव्य है इसलिये उसमें भी ये प्रतिक्षण पाये जाते हैं, इसमें सन्देह के लिये कोई स्थान नहीं है।"

भवितव्यता का आशय ठीक से समझकर अहंकार छोड़ने और कर्तव्य की प्रेरणा देने के लिये ग्रंथ के 66 नं. श्लोक में ग्रंथकार ने जो महत्वपूर्ण

शिक्षा दी है उसकी व्याख्या उदाहरण देकर करने के बाद मुख्तार जी ने निष्कर्ष रूप में लिखा है कि – "भवितव्यता का आश्रय लेने का अभिप्राय इतना ही है कि स्वयं तत्परता के साथ कार्य करके उसे फल के लिये भवितव्यता पर छोड़ दो, फल की अभिलाषा से आतुर मत हो, क्योंकि इच्छित फल की प्राप्ति उस सब साधन–सामग्री की पूर्णता पर अवलंबित है, जो तुम्हारे अकेले के वश की नहीं है, तुम किसी द्रव्य के स्वभाव को उससे पृथक् नहीं कर सकते और न उसमें कोई नया स्वभाव उत्पन्न ही कर सकते हो। सब द्रव्यों का परिणमन उनके स्वभाव तथा उनकी परिस्थितियों के अनुसार हुआ करता है इसलिये कर्तृत्व-विषय में तुम्हारा एकांगी अहंकार निःसार है।"

ग्रंथ का 52 नं. का श्लोक यह दर्शाता है कि तत्वज्ञान से व्याप्त व्यक्ति के मन और इन्द्रियों की दशा कैसी हो जाती है। इसकी व्याख्या में पंडित जी ने समझाया है कि – "चित्त जब वस्तुतत्व के विज्ञान से पूर्ण और वैराग्य से व्याप्त होता है तब इन्द्रियों की ऐसी अनिर्वचनीय दशा हो जाती है कि उन्हें न तो मृत कहा जाता है न जीवित। न सुप्त कहने में आता है और न जाग्रत। मृत कहा जाता कि उनमें स्व विषय ग्रहण की योग्यता पाई जाती है और वे कालान्तर में अपने विषय को ग्रहण करती हुई देखी जाती है, जबकि मृतावस्था में ऐसा कुछ नहीं बनता। जीवित इसलिये नहीं कहा जाता कि विषय ग्रहण की योग्यता होते हुए भी उनमें उस समय विषय ग्रहण की प्रवृत्ति नहीं होती। सुप्त इसलिये नहीं कहा जाता कि विषय के अग्रहण में उनके निद्रा की परवशता जैसा कोई कारण नहीं है और जाग्रत इसलिये नहीं कहा जाता कि निद्रा का अस्तित्व अथवा उदय न होने से उपयोग की स्वतंत्रता के होते हुए भी वह उनके उन्मुख नहीं होता। उपयोग की अनुपस्थिति में इन्द्रियाँ सुप्त न होतें हुए भी जागृतावस्था जैसा कोई काम नहीं कर पातीं।

ग्रंथ में व्यवहार और निश्चय नय के माध्यम से भी अनेक विषयों जैसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि का विश्लेषण किया गया है। इनकी व्याख्याओं को भी मुख्तार जी ने विस्तृत करके समझाया है तथा उसके लिये अनेक उदाहरण भी दिये हैं। उदाहरण देने में उन्होंने आचार्य पूज्यपाद के प्रसिद्ध

आध्यात्मिक ग्रंथ "समाधितंत्र" एवं आचार्य रामसेन के ध्यान-ग्रंथ "तत्वानुशासन" का भरपूर उपयोग किया है। 72 श्लोकों की व्याख्या में समाधितंत्र के 16 और तत्वानुशासन के 22 उद्धरण उन्होंने प्रस्तुत किये हैं।

उक्त दोनों ग्रंथ योग और ध्यान को विशेष वर्णन करने वाले ग्रंथ हैं और मुख्तार जी ने दोनों ग्रंथों का अनुवाद भी विशद व्याख्याओं के साथ किया है तथा उनकी विस्तृत प्रस्तावनाएँ लिखी हैं। तत्वानुशासन की प्रस्तावना तों छोटे टाइप में छपने के बाद भी 90 पृष्ठों में छपी इससे यह स्पष्ट है कि पं. जुगलकिशोर जी को योग और ध्यान जैसे आध्यात्मिक विषयों का गहन अध्ययन था। समाधितंत्र, इष्टोपदेश जैसे ग्रंथ उनके नियमित पाठ से सम्मिलित रहे होंगे, उन पर निरंतर चिंतन चलता रहता होगा।

भाष्यकार की विशेषताओं का वर्णन करते हुए डा. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ने लिखा है कि - "भाष्यकार की सबसे प्रमुख विशेषता तटस्थता और ईमानदारी है। जो भाष्यकार प्राचीन लेखक के विश्लेषण में ग्रंथ के भावों का ही स्पष्टीकरण करता है, अपनी कोई बात सिद्धान्त के रूप में पाठकों के ऊपर नहीं लादता, वही वास्तविक भाष्यकार होता है। भाष्यकार के व्यक्तित्व में एक साथ मौलिक चिंतन, उस चिंतन को आत्मशात् कर सशक्त अभिव्यंजना की क्षमता एवं प्राचीन लेखक के प्रति अपार आस्था का रहना आवश्यक है। केवल दो भाषाओं की जानकारी होने मात्र से कोई भाष्य निर्माता नहीं हो सकता। भाष्य निर्माता बनने के लिये प्रतिभा, अभ्यास और अनेक भाषाविज्ञता एवं विषय संबंधी पांडित्य का रहना परमावश्यक है।"

अध्यात्म-रहस्य के भाष्य में इन सब विशेषताओं का समावेश स्पष्ट परिलक्षित होता है। छोटे से ग्रंथ के अनुवाद एवं व्याख्याओं में भी पंडित जी ने पूरी लगन से श्रम करके अपने चिंतन के आधार पर विषय को सहज बोधगम्य बना दिया है।

ग्रंथ के अंत में दो परिशिष्टों में 72 श्लोकों की अकारादि क्रम से पद्यानुक्रमणी तथा व्याख्या में उद्धृत वाक्यों की भी अकारादि क्रम से अनुक्रमणी देकर पंडित जी ने ग्रंथ के अध्ययन को और सुगम बना दिया है। व्याख्या में

सहायक ग्रंथों की एक सूची भी दी गई है जिसमें प्राचीन आचार्य भगवंतों एवं आचार्यकल्प पदवी से विभूषित पं. आशाधरजी के 24 ग्रंथों के नामों का उल्लेख है। इससे व्याख्याओं पर प्रामाणिकता की मुहर लगती है।

यह एक सुखद संयोग है कि "अध्यात्म-रहस्य" ग्रंथ की यह समीक्षा ग्रंथ लेखक के जन्मस्थान मंडलगढ़ (चित्तौड़) और भाष्यकार के जन्मस्थान सरसावा (सहारनुपर) के मध्य एक ऐसे मनीषी वात्सल्यमूर्ति मुनिराज उपाध्याय ज्ञानसागर जी के सानिध्य में हो रही है जिन्होंने विद्वानों के श्रम का सही मूल्यांकन किया है। वर्तमान पीढ़ी के विद्वानों को वे सतत प्रेरणा देते हैं तथा पुरातन विद्वानों के अवदान का स्मरण कराके उनके व्यक्तित्व-कृतित्व को नये सिरे से व्याख्यायित कराते हैं। मैं कहना चाहिता हूं कि यदि उपाध्याय श्री की प्रेरणा से ऐसे उपक्रम निरंतर होते रहे तो जहां एक ओर प्राचीन विद्वानों की कृतियों से अनेक महत्वपूर्ण तथ्य उदघाटित होकर जिज्ञासुओं के समक्ष आयेंगे, वहीं शोधकर्ता विद्वानों को पर्याप्त अवसर, मार्गदर्शन एवं प्रेरणा मिलती रहेगी।

कबीर माला काठ की, कहि समझावे तोहि।
मन न फिरावै आपणा, कहा फिरावै मोहि॥

-कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ. ४४)

यथापि नाम जच्चंधो नरो अपरिनायको।
एकदा याति मग्गेन कुमग्गेनापि एकदा॥
संसारे संसरं बालो तथा अपरिनायको।
करोति एकदा पञ्जं अपुञ्ञमपि एकदा॥

जिस प्रकार जन्मांध व्यक्ति हाथ पकड़ कर ले जाने वाले व्यक्ति के अभाव में कभी मार्ग में जाता है तो कभी कुमार्ग से। उसी प्रकार संसार में संसरण करता अज्ञानी प्राणी पथप्रदर्शक सद्गुरु के अभाव में भी कभी पुण्य करता है तो कभी पाप।

[पालि] -विसुद्धिमग्ग (१७/११९)

अनेकान्त-रस-लहरी : एक अध्ययन

डॉ. श्रीमती मुन्नी पुष्पा जैन, वाराणसी

जैनदर्शन का हार्द यदि एक शब्द में कहना हो तो वह शब्द है अनेकान्तवाद। यही जैनदर्शन की विश्व को एक अनुपम और मौलिक देन है। जैनदर्शन की यह मान्यता है कि वस्तु बहुआयामी है उसमें परस्पर विरोधी अनेक गुणधर्म है, किन्तु प्राय: लोग अपनी दृष्टि से वस्तु का समग्र बोध नहीं कर पाते। जबकि अनेकान्तवाद एक ऐसा सिद्धान्त है जो वस्तुतत्त्व को उसके समग्र स्वरूप के साथ प्रस्तुत करता है। इसके बिना निर्विवाद लोक व्यवहार भी नहीं चल सकता। वस्तुत: आग्रही, एकान्त और संकीर्ण स्वार्थपूर्ण विचारों के कारण ही आज ईर्ष्या, कलह कलुषता और परस्पर विवाद की स्थिति निर्मित होती जा रही है, ऐसी स्थिति में अनेकान्तवाद बहुत उपयोगी है। क्योंकि अनेकान्तवादी वस्तुतत्त्व के विभिन्न पक्षों को तत्-तद् दृष्टि से स्वीकार कर समन्वय का श्रेष्ठ मार्ग अपनाता है, वह सिर्फ अपनी ही बात नहीं करता, अपितु सामने वाले की बात को भी धैर्यपूर्वक सुनना है। जहाँ सिर्फ अपनी ही बात का आग्रह होता है, वहाँ दूर-दूर तक सत्य के दर्शन नहीं होते।

इस तरह इस अनुपम अनेकान्त सिद्धान्त को सहज और सरल भाषा में बच्चों से लेकर बड़ों एवं विद्वानों तक को समझाने हेतु जैन साहित्य मनीषी, अनेक ग्रन्थों के लेखक, संपादक, अनुवाद पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' ने ''अनेकान्तरस लहरी'' नामक अपनी पुस्तक में 'अनेकान्त' को अनेक उदाहरणों द्वारा समझाया है। यह पुस्तक जनवरी १९५० में सन्मति विद्या प्रकाशमाला के प्रथम प्रकाश के रूप में वीरसेवा मंदिर, सरसावा (सहारनपुर) से प्रकाशित हुई है।

इस 54 पृष्ठीय पुस्तक में अनेकान्त के सरस रूप में समझाने के लिए 4 पाठों में गुरू और शिष्यों के माध्यम से कक्षा प्रणाली की विधि अपनाई गई है। इसके प्रथम दो पाठों में अनेकान्त का सूत्र निर्दिष्ट है। शेष दो पाठों में

अनेकान्त के व्यवहारिक ज्ञान का दिग्दर्शन कराया गया है, जिसके द्वारा अनेकान्त तत्त्व विषयक समझ को विस्तृत परिपुष्ट एवं विकासोन्मुख किया गया है।

आज सम्पूर्ण विश्व में जिस तरह नित-नवीन विषमतायें पनप रही हैं वैसे ही विश्वशान्ति तथा व्यक्तिगत सुख चैन पर भी खतरे मंडरा रहे हैं ऐसी स्थिति में अनेकान्त का मानना समझना कितना आवश्यक है, इसे बतलाने की जरूरत नहीं है। वस्तुत: अनेकान्त के रस को जाने बिना सत्य को जाना और पहिचाना नहीं जा सकता। सत्य को पहिचाने और जाने बिना व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। और न जीवन में उतारा जा सकता है। बड़े-बड़े विद्वान्, धर्माचार्य और नेता तक इस अनेकान्त रूपी सत्य को न जानने के कारण भ्रम की स्थिति में रहते हुए इसका प्रतिपादन भी गलत ढंग से प्रस्तुत करते हैं। मुख्तार जी ने अनेकान्त जैसे गंभीर विषय को ऐसे मनोरंजक ढंग से सरल शब्दों में समझाया है कि बच्चों एवं विद्यार्थियों को आसानी से समझ में आ सके। पुस्तक पढ़ने से जनसाधारण को भी इस गूढ़ विषय में रस आता है और एक वैठक में वह पूरी पुस्तक पढ़े बिना नहीं रह पाता इसलिये इसका नाम 'अनेकान्तरसलहरी' सार्थक है।

पाठ-1. छोटापन और बड़ापन

इस पाठ में अपेक्षा भेद से छोटापन और बड़ापन को समझाया गया है। अध्यापक वीरभद्र बोर्ड पर.तीन इंच की लाइन खींचकर विद्यार्थियों से पूछते हैं कि "बतलाओ यह लाइन छोटी है या बड़ी?"

विद्यार्थी कहता है यह तो छोटी है। तब अध्यापक इसी लाइन के पास एक इंच की दूसरी लाइन खींच देते हैं और फिर पूछते हैं - बतलाओ लाइन नं. १ छोटी है या बड़ी? विद्यार्थी तुरन्त उत्तर देता है- यह तो साफ बड़ी नजर आती है। अध्यापक पुन: प्रथम लाइन के ऊपर पांच इंच की बड़ी लाइन खींचकर पूछते हैं, तब विद्यार्थी असमंजस में पड़ जाते हैं कि जिस लाइन को अभी-अभी हमने बड़ी कहा था, वही अब छोटी नजर आने लगी। मुख्तार जी यहाँ अध्यापक के माध्यम से विद्यार्थियों को यह समझाने का प्रयत्न करते हैं

कि एक ही लाइन में छोटे और बड़े होने का गुणधर्म विद्यमान है। जबकि उस लाइन को घटाया बढ़ाया नहीं गया। एक ही वस्तु में दो विरूद्ध प्रतीत होने वाले धर्म एक ही समय में कैसे रह सकते हैं? इसको समझाने की इतनी अच्छी और सरल दृष्टान्त विधि का प्रयोग करके मुख्तार जी वास्तव में इस माध्यम से मात्र बच्चों को ही नहीं वरन् बड़ों को भी समझाना चाहते हैं, जो अनेकान्तवाद को छल और स्याद्वाद को संशयवाद कहकर नकारना चाहते हैं।

पाठ-2. बड़े से छोटा और छोटे से बड़ा

इस द्वितीय पाठ के माध्यम से मुख्तार जी 'ही' और 'भी' के कथन को उन्हीं लाइनों के द्वारा (उदाहरणों से) समझाने का प्रयत्न करते हैं। इसमें अध्यापक विद्यार्थियों को समझाते हैं कि बिना अपेक्षा भेद लगाये किसी लाइन (वस्तु) को छोटी ही या बड़ी ही कहना एकान्त है। उससे भी छोटी वाली लाइन पर दृष्टि नहीं डाली और यदि बड़ी ही कहता है तो, उसने उससे भी बड़ी लाइन पर दृष्टि नहीं डाली। अतः यह समग्र दृष्टिकोण न होने के कारण एकांत हुआ सम्यग्दृष्टि या अनेकान्तदृष्टि वाला उन लाइनों या वस्तुओं को अपेक्षा से छोटी-बड़ी कहेगा। या फिर अपेक्षा न लगाने पर 'भी' का प्रयोग करेगा।

पाठ-3. बड़ा दानी कौन?

दान की सर्वत्र चर्चा रहती है। बड़े-बड़े दानियों की महिमा गायी जाती है। परन्तु वास्तव में बड़ा दानी कौन? इस बात पर विद्यार्थियों के इस सहज-सामान्य उत्तर को - 'कि लाखों रू. का दान करने वाला सबसे बड़ा दानी' सुनकर मुख्तार जी ने अध्यापक के माध्यम से दानी-दान के तीन महत्वपूर्ण तथ्य निकाले

1. लाख रू. से कम अर्थात् दो-पाँच हजार रू. का दान करने वला क्या बड़ा दानी नहीं है।
2. लाखों रूपये का दान करने वाले जो समान रकम के दानी हैं क्या वे परस्पर समान दानी हैं?

3. क्या रूपयों का दान करने वाला ही बड़ा दानी हो? रूपयों के अलावा अन्य वस्तु या गुणों का दानी क्या दानी नहीं?

सर्वप्रथम लेखक ने अध्यापक के माध्यम से समझाया मात्र रू. का दान ही दान नहीं बल्कि निःस्वार्थ प्रेमसेवा, अभयदानादि अथवा क्रोधादि कषायों का त्याग, दया, क्षमा भाव आदि ऐसी चीजें या गुणों के माध्यम से जो सेवा, उपकार किया जाता है रू. आदि की तुलना में ज्यादा अमूल्य है अनुपम है। ऐसे दानी बड़े होते हैं-

लेखक ने दान के दिये जाने के कारण भावों को बतलाते हुये उनकी समालोचना और तुलना करने के लिए चार उदाहरण देकर श्रेष्ठ दान की परिभाषा समझाने का प्रयत्न किया है-

1. एक वह दानी जो सेना के लिए दो लाख रूपये का दान करता है।
2. दूसरा आक्रमण के लिए दो लाख रू का हथियार दान करता है।
3. अपने ही आक्रमण में घायल हुये सैनिकों की मर्हमपट्टी के लिए दो लाख रू. की दवाइयों आदि के लिए दान करता है।
4. अकाल पीडितों एवं, अन्नाभाव के कारण भूख से तड़फ-तड़फ कर मरने वाले निरपराध प्राणियों की प्राण रक्षा के लिए दो लाख रूपये का अन्नदान करता है।

यद्यपि उक्त चार दानों में रूपयों की राशि समान है किन्तु दान में द्रव्यदाता और पात्र से कितना अन्तर आ गया है परखदृष्टि से बड़ी सुगमता से समझाया है कि मांस, हथियार तथा परस्पर हिंसक लडाई से घायल को दवाई आदि इन तीनों के आगे निःस्वार्थ, जरूरतमंद सुपात्रों को अन्नदान को अपेक्षाकृत बड़ा माना जायेगा। फिर भी इस चौथे दान को और भी सूक्ष्म (पैनी) दृष्टि से परीक्षा करते हुये बताया है।

दान देने की परिस्थितियाँ इस प्रकार रही हों तो फिर दान की श्रेष्ठता क्रम-

1 एक ने किसी उच्च अधिकारी के दबाव से (न चाहते हुये), स्टाक जब्ती या इनकमटैक्स (आयकर) के भय से दो लाख रुपये का अन्न दान किया हो।

2. दूसरे ने इस आशा से दान दिया कि गवर्नर आदि प्रसन्न होकर रायबहादुर जैसी उच्ची पदवीं प्रदान करेंगे।

3 तीसरे ने किसी अन्य दानी से ईर्ष्या करके प्रतिद्वन्द्वतावश अधिक दान दिया।

4 चौथे ने वास्तव में दया-भाव के वशीभूत अकालपीड़ितों को नि:स्वार्थ भाव से अन्नदान किया।

इस प्रकार लेखक बार-बार अनेकों उदाहरणों द्वारा दान की श्रेष्ठता को समझाने का भरसक प्रयत्न करते हैं।

विभिन्न दृष्टियों से ही इसे देखना होगा।

पाठ-4. बड़ा और छोटा दानी कौन

तत्त्वार्थसूत्र में सातवें अध्याय में आयी दान की परिभाषा-

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्॥३८॥
विधि द्रव्य दातृ पात्र-विशेषातद्विशेष:॥३९॥

अनुग्रह के लिए स्व-पर उपकार वास्ते जो अपने धनादिक का दान (त्याग) करता है उसे 'दान' कहते हैं। उस दान में विधि, द्रव्य, दाता और पात्र के विशेष से विशेषता आती है।

इस बात को समझाने के लिए मुख्तार जी निम्न उदाहरण देते हैं-

1. पहले सेठ डालचन्द जो पांच लाख रुपये एक विद्या संस्थान को मात्र इसलिए देते हैं कि वे समाज में विश्वास एवं प्रेम सम्मान के पात्र बनें।

2. दूसरे सेठ ताराचंद ब्लेकमनी (कालाधन) रखे हुए हैं, वे सरकारी छापे के डर से 'गांधी मीमोरियल फंड' को पांच लाख का दान देते हैं।

3. तीसरे सेठ रामानन्द अपने मिल में बने वनस्पति घी पर रोक हटाने के लिए उच्चाधिकारी को 5 लाख गुप्तदान देते हैं।

4. चौथे सेठ विनोदीराम रायबहादुर और आनरेरी मजिस्ट्रेट बनने की प्रबल इच्छा के कारण जिलाधीश के नाम पर एक अस्पताल बनवाने के लिए पांच लाख का दान देते हैं।

इस अध्याय में अध्यापक इन्हीं चार दानियों और मात्र दस हजार का दान देने वाले अन्य दानियों की तुलना से ही करवाते हैं।

1. पहले सेठ दयाचन्द निज की कमाई से दस हजार रुपये निकालकर गरीब रोगियों की सेवा के लिए ओषधालय खुलवाकर उसकी व्यवस्था का आज भी पूरा ध्यान रखते हैं।

2 सेठ ज्ञानचन्द ने गाढ़ी कमाई से 10,000 रुपये जैन सिद्धान्त ग्रंथों के उद्धार के लिए दान दिये।

3. लाला विवेकानन्द ने बेरोजगारों को रोजगार दिलवाने के लिए दस हजार रुपये दान दिये।

4. चौथे गवर्नमेंट के पेंशन बाबू जेवाराम अपनी पेंशन से दस हजार रुपये निस्वार्थभाव से लगे समाज सेवकों को भोजनार्थ दान देते हैं।

इस तरह उपर्युक्त पांच लाख रुपये देने वाले चार दानियों और दस हजार रुपये दान देने वाले चार दानियों में श्रेष्ठ कौन? इस बात को सूक्ष्म एवं पैनी दृष्टि से समझकर लेखक अनेकांत के मर्म को बखूबी स्पष्ट करते हैं कि जब अधिक द्रव्य के दानी भी अल्प द्रव्य के दानी से छोटे हो जाते हैं। द्रव्य की संख्या पर ही दान तथा दानी का छोटा बड़ा होना निर्भर नहीं है तब समान द्रव्य के दानी परस्पर में समान और एक ही दर्जे के होंगे, ऐसा कोई नियम नहीं हो सकता, वे समान भी हो सकते हैं और असमान भी।

इन चारों पाठों में विद्यार्थियों की समझ की परीक्षार्थ बहुत सटीक प्रश्नावली भी दी गई है। जिनमें करीब ६२ प्रश्न है।

इस प्रकार जैन दर्शन के गहन सिद्धान्तों को करीब 20-25 एवं मनोरंजक उदाहरणों द्वारा बालकों को समझाने का सहज, सरल, सुगम प्रयत्न "अनेकान्त रस लहरी" बालोपयोगी पुस्तक में किया गया है। निश्चित ही यह पुस्तक प्रत्येक विद्यालय में पढ़ाने हेतु उपलब्ध कराना श्रेयस्कर होगा। पं. जुगलकिशोर मुख्तार जी ने भी यही हार्दिक इच्छा अपने प्राक्कथन में व्यक्त की है।

त्यजति तु यदा मार्गं मोहात्तदा गुरुरंकुशः।

जब शिष्य अज्ञान के कारण मार्ग को छोड़ देता है तभी गुरु उसके लिए अंकुश के समान हो जाता है। उसे सन्मार्ग में लगाता है।

-विशाखदत्त (मुद्राराक्षस, ३।६)

गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिल-मल-प्रक्षालनक्षममजलस्नानम् अनुपजातपलितादि-वैरूप्यमजरं वृद्धत्वं, अनारोपितमेदोदोषं गुरूकरणं, असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्, अतीतज्योतिरालोको, नोद्वेगकरः प्रजागरः।

गुरु का उपदेश मनुष्यों के वृद्धत्व के समान हैं किंतु इस वृद्धत्व में केशों का पकना और अंगों की शिथिलता आदि दोष उत्पन्न नहीं होते हैं और शरीर जीर्ण-शीर्ण भी नहीं होता है। यह भारीपन देता है परन्तु मेद-दोष उत्पन्न नहीं करता है। यह कानों का आभूषण है परन्तु सुवर्ण-निर्मित नहीं है और न ग्राम्य है। यह जागरण-स्वरूप है किंतु उद्वेगकर नहीं है।

-बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ. ३१७-३१८)

सापेक्षवाद

पं. श्रेयांस कुमार जैन, कीरतपुर

"हे विश्वके दर्शन शास्त्रियों! अपने-अपने विचारों को लेकर आपस में क्यों विवाद करते हो यदि सापेक्षवाद सिद्धान्त को अपने जीवन में अपनाओ तो विश्व के समस्त विवाद स्वत: ही दूर हो जायेंगे।"

आज पतन के गर्त में गिरते हुए विश्व को भगवान महावीर के अनमोल सिद्धान्त के द्वारा ही बचाया जा सकता है और वह है सापेक्षवाद।

दुराग्रह या हठधमी संघर्ष की मूल जड़ है, मूल कारण है। यदि सापेक्षवाद पर दृष्टि डाली जाये यहां सभी प्रकार विचार-वैभिन्य सम्पाप्त हो जाता है। यह एक अनाग्रही दृष्टिकोण है। इसमें दुराग्रह या हठधर्मी के लिये कोई स्थान नहीं। जहाँ सापेक्षवाद न होकर दुराग्रह होगा, वही संघर्ष और द्वन्द्वका घोर गर्जन सुनाई पड़ेगा। जब भी कोई विकट समस्या उत्पन्न होती है तो उसका मूल कारण हठधर्मिता और दुराग्रह होता है, उदाहरण के तौर पर अमरीका का रवैया सी. टी बी. टी पर दस्तखत करने के लिये भारत और पाकिस्तान पर दबाव डालना है जोकि उसकी हठधर्मी और दुराग्रह का द्योतक है। भारत सी. टी. बी टी. पर तभी हस्ताक्षर करेगा जबकि विश्व बिरादरी भारत को एक परमाणु शक्ति के रूप में स्वीकार कर ले। निश्चित है कि भारत किसी दबाव में आकर सी. टी. बी. टी. पर हस्ताक्षर नहीं करेगा, इसी प्रकार पाकिस्तान का रवैया काश्मीर के प्रति दुराग्रहपूर्ण है और इसी कारण काश्मीर की समस्या का समाधान नहीं हो पा रहा है सापेक्षवाद के अभाव में आज विश्व में त्राहि-त्राहि मच रही है।

मानव जीवन को सफल और शांतिमय बनाने के लिये जीवन के प्रत्येक विभाग में सापेक्षवाद्द का उपयोग करने की आवश्यकता है। अगर हम दुखी हैं तो इसका प्रमुख कारण केवल यही हो सकता है कि हम जीवन में

सापेक्षवाद का उपयोग नहीं करते। वैयक्तिक, कौटुम्बिक, सामाजिक और राष्ट्रीय तथा विश्व अशान्ति का कारण केवल "ही" के आग्रह के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। इस आग्रह का न होना ही सापेक्षवाद कहलाता है। विश्व शान्ति का सापेक्षवाद ही अमोघ उपाय है।

विश्व की सब उलझनें यदि सुलझ सकती है तो केवल ऐसे सिद्धान्त से, जो किसी भी विषय पर, एक दृष्टिकोण (One point of view) से विचार न कर विविध दृष्टिकोणों (By all points of view) से विचार करता है। यदि मनुष्य विश्व शान्ति और आनन्द का अनुभव करना चाहता है तो उसे सापेक्षवाद के सिद्धान्तरूपी परमसरोवर में डुबकियाँ लगानी चाहिये। सापेक्षवाद ही विश्व-शान्ति का अचूक उपाय है।

गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिः तिरस्कृता यांति नरा महत्त्वम्।
अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसंति॥

गुरुओं की कठोर अक्षरों वाली वाणी से तिरस्कृत मनुष्य महत्त्व प्राप्त करते हैं। सान पर घिसे बिना मणि राजाओं के सिर पर स्थान नहीं पाती।

-पंडितराज जगन्नाथ (भामिनी विलास, प्रास्ताविक विलास)

गुरौ प्रणामो हि शिवाय जायते।

गुरु को किया गया प्रणाम कल्याणकारी होता है।

-कर्णपूर (पारिजातहरण १/२९)

अंधो अंध पहं णिंतो, दूरमद्धाणुगच्छइ।

अन्धा अन्धे का पथप्रदर्शक बनाता है तो वह अभीष्ट मार्ग से दूर भटक जाता है।

[प्राकृत] -सूत्रकृतांग (१।१।२।१९)

समन्तभद्र-विचार-दीपिका-प्रथम भाग: एक अध्ययन

डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन साहिबाबाद

प्राच्य विद्या के महासागर, सिद्धान्तरत्न, सम्पादनकला विशेषज्ञ स्व. पण्डित जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' ने जैन संस्कृति, साहित्य और समाज की जो तन-मन-धन से तन्मय होकर सेवा की है उसे जैन समाज कभी नहीं भुला सकता है। बहुत ऊँची स्कूल कालेज की उपाधि उनके पास नहीं थी, केवल मैट्रिक तक पढ़े थे, परन्तु गहन-स्वाध्याय, साहित्य-उपासना एवं अभीक्ष्णज्ञानोपयोग के बल पर उन्होंने जिस विपुल साहित्य का सृजन किया है, जैन विद्या एवं संस्कृति के अनेक पक्षों को अन्धकार से निकाल कर प्रकाशित किया है, अनेक भ्रान्तिपूर्ण मान्यताओं को प्रमाणिक आधारों पर निर्णयात्मक स्थिति में पहुँचया है, यह सब देख-सुनकर बड़े-बडे विद्वान् भी दांतो तले अंगुली दबाते हैं। उन्होंने जैन गजट, जैन हितैषी और अनेकान्त सदृश पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन कर जैन पत्रकारिता को गरिमा प्रदान की है। शास्त्रभण्डारों से खोज-खोज कर कितने ही महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थों का, उनकी जीर्ण-शीर्ण पाण्डुलिपियों में अपना सिर खपाकर उद्धार किया, संशोधित एवं सुसम्पादित कर उनको प्रकाशित कराया। पुरातन जैन वाक्यसूची, जैनग्रन्थ प्रशस्तिसंग्रह, जैन लक्षणावली जैसे उपयोगी सन्दर्भ ग्रन्थ तैयार किये। अनेक दुर्बोध ग्रन्थों के अनुवाद भाष्य लिखे तथा अनेक ग्रन्थों की विद्वत्ता पूर्ण प्रस्तावनाएं लिखीं। कई लेखकों की नव प्रकाशित कृतियों की गम्भीर, विस्तृत एवं निष्पक्ष समीक्षाएं लिखीं। आपने महत्त्वपूर्ण, विवादास्पद सैद्धान्तिक विषयों पर लगभग 150 प्रामाणिक लेख लिखे। मुख्तारसाहब ने हिन्दी एवं संस्कृत दोनों ही भाषाओं में उच्च कोटि की कविताएँ लिखीं। हिन्दी में रचित 'मेरी भावना' ने तो इन्हें अमर ही कर दिया है।

विधिवत् संस्कृत का शिक्षण प्राप्त न करने पर भी उन्होंने आचार्य समन्तभद्र स्वामी की जटिल ग्रन्थों का अनुवाद कर तन्निहित रहस्य सरल एवं सुबोध भाषा में प्रस्तुत किये। उन्होंने अपने ग्रन्थों में एकान्तवाद का खण्डन एवं अनेकान्तवाद का मण्डन किया। मुख्तार साहब प्रबल तार्किक थे। उन्होंने विकार का कारण बने हुए अनार्ष परम्परा का अनुकरण करने वाले भट्टारककालीन अनेक विषयों पर करारी चोट की।

वे जैन पुरातत्त्व एवं संस्कृति के वैज्ञानिक संशोधक थे। उन्होंने तर्कहीन धार्मिक पोंगापंथी की पोल खोल कर उनका अन्धानुकरण रोका। जैनियों में दस्सा, बीसा आदि के निरर्थक भेद-भाव के विरुद्ध उन्होंने खूब संघर्ष किया।

मुख्तार साहब में अनुसन्धान प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल थी। अनेकान्त पत्रिका में उनके अनुसन्धान कार्यों का भण्डार भरा हुआ है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों आचार्य प्रभाचन्द्र का तत्त्वार्थ सूत्र, युक्त्यनुशासन, स्वयम्भू-स्तोत्र, योगसार प्राभृत, समीचीन धर्म शास्त्र, अध्यात्म रहस्य, अनित्य भावना, तत्त्वानुशासन, देवागम, सिद्धिसोपान, सिद्धभक्ति, सत्साधुस्मरण मंगलपाठ, आदि का भाषानुवाद करके ग्रन्थों में निहित गूढ़ तत्त्वों का विश्लेषण किया। नए-नए ग्रन्थों को खोजकर उन पर प्रकाश डालने के लिए आप सदा तत्पर रहते थे।

आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार आचार्य समन्तभद्र के अनन्य भक्त थे। आचार्य समन्तभद्र के ग्रन्थ महासमुद्र में से आपने अनेक विचार-रत्न निकाल कर जैन विद्या निधि की खूब अभिवृद्धि की। आचार्य समन्तभद्र दूसरी शताब्दी में उत्पन्न हुए थे। वे एक महान् तत्त्ववेत्ता थे। उन्होंने अपने समय में वीर शासन की सहस्त्रगुणित अभिवृद्धि की। ऐसा एक पुरातन शिलालेख में उल्लेख है। आचार्य समन्तभद्र के विचारों का सर्वत्र प्रचार करने की दृष्टि से आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार ने 'समन्तभद्र-विचार-दीपिका' नाम से अनेक भागों में आचार्य समन्तभद्र के विचार-रत्न जिज्ञासुओं के मध्य में बड़ी उदारता से वितरित किये हैं।

'समन्तभद्र-विचार-दीपिका' के प्रथम भाग में बहुचर्चित चार विषयों पर मुख्तार साहब ने बहुत विस्तार से तर्क पूर्ण शैली में सांगोपाङ्ग विवेचन

प्रस्तुत किया है। ये चार विषय है - 1. स्व-पर-वैरी कौन? 2. वीतराग की पूजा क्यों? 3. वीतराग से प्रार्थना क्यों? 4 पाप-पुण्य की व्यवस्था कैसे?

समन्तभद्र-विचार-दीपिका का प्रथम निबन्ध 'स्व-पर-बैरी कौन?' अनेकान्त सिद्धान्त को पुष्ट करने वाला तथा एकान्तवाद का खण्डन करने वाला है। निबन्ध के आरम्भ में मुख्तार साहब कहते हैं कि लोक में हम जिन्हें अपना तथा पराया शत्रु समझते हैं, वे उतनी मात्रा में अपने-पराए शत्रु नहीं हैं जितने कि वे जो अनन्त धर्मात्मक वस्तु के किसी एक पक्ष को लेकर उसी का पोषण और समर्थन करते हुए उससे अन्य धर्मों की उपेक्षा तथा खण्डन करते हैं। प्रायः लोक में यह माना जाता है कि जो अपने बच्चों को शिक्षा नहीं देते हैं, छोटी उम्र में बच्चों की शादी कर देते हैं या हिंसा, झूठ, चोरी, कुशीलादि पापों में लिप्त रहते हैं, वे सब अपना तो अहित करते ही हैं साथ-साथ दूसरों को भी कष्ट पहुँचाते हैं। परन्तु मुख्तार साहब की दृष्टि में संसार में सबसे बढ़कर अपने तथा दूसरों के शत्रु वे हैं, जो एकान्त-ग्रह-ग्रस्त हैं अर्थात् जो लोग एकान्त के ग्रहण करने में आसक्त हैं सर्वथा एकान्त पक्ष के पक्षपाती अथवा उपासक हैं और अनेकान्त को नहीं मानते वस्तु में अनेक गुण-धर्मो के होते हुए भी उसे एक ही गुण-धर्म रूप अंगीकार करते हैं।

आचार्य समन्तभद्र की देवागम की कारिका को उद्धृत कर मुख्तार साहब अपने विचार की पुष्टि करते हैं -

कुशलाऽकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्त-ग्रह-रक्तेषु नाम स्व-पर-वैरिषु॥

इस कारिका में इतना और भी बताया गया है कि ऐसी एकान्त मान्यता वाले व्यक्तियों में से किसी के यहाँ भी किसी के भी मत में शुभ-अशुभ कर्म की, अन्य जन्म की, कर्मफल की तथा बन्ध-मोक्षादि की कोई व्यवस्था नहीं बन सकती।

वास्तव में प्रत्येक वस्तु अनेकान्तात्मक है उसमें अनेक अन्त-धर्म-गुण-स्वभाव अंग अथवा अंश हैं। जो मनुष्य किसी भी वस्तु को एक तरफ से देखता है- उसके एक ही अन्त-धर्म अथवा गुण-स्वभाव पर दृष्टि डालता है,

वह उसका सम्यग्दृष्टा नहीं हो सकता है। सम्यग्दृष्टा होने के लिए वस्तु को सब ओर से देखने वाला होना चाहिए। जो मनुष्य किसी वस्तु के एक ही अन्त, अंग, धर्म अथवा गुण को, स्वभाव को देखकर उसे उसी स्वरूप मानता दूसरा रूप स्वीकार नहीं करता और इस तरह अपनी एकान्त धारणा बना लेता है और उसे ही जैसे-जैसे पुष्ट किया करता है। इस प्रकार के एकान्त-ग्राहक व्यक्ति जन्मान्ध व्यक्तियों के समान हाथी के एक ही अंग को सम्पूर्ण हाथी का स्वरूप मानकर झगड़ा करने वालों की तरह आपस में झगड़ते रहते हैं और एक दूसरे से शत्रुता धारण करके जहाँ दूसरों के बैरी बनते हैं, वहीं अपने को वस्तु के समग्र रूप से अनभिज्ञ रखकर अपना भी अहित करते हैं। मुख्तार साहब कहते हैं कि जो अनेकान्त के द्वेषी हैं वे अपने एकान्त के भी द्वेषी हैं। क्योंकि अनेकान्त के बिना वे एकान्त को भी प्रतिष्ठित नहीं कर सकते हैं।

जो लोग अनेकान्त का आश्रय लेते हैं वे कभी स्व-पर-वैरी नहीं होते, उनसे पाप नहीं बनते, उन्हें आपदाएं नहीं सताती और वे लोक में सदा उन्नत, उदार तथा जयशील बने रहते हैं।

समन्तभद्र-विचार-दीपिका का दूसरा निबन्ध है - वीतराग की पूजा क्यों? इस विषय का आचार्य जुगलकिशोर जी मुख्तार बड़ी तर्क पूर्ण शैली में स्वामी समन्तभद्र की उक्तियों के उद्धरण देते हुए समर्थन करते हैं कि वीतराग देव ही सबसे अधिक पूजा के योग्य हैं। कुछ लोगों की भ्रान्त धारणा है कि जिसकी पूजा की जाती है, वह यदि उस पूजा से प्रसन्न होता है और उस प्रसन्नता के फलस्वरूप पूजा करने वाले का कोई काम बना देता अथवा सुधार देता है तो लोक में उसकी पूजा सार्थक समझी जाती है और पूजा से किसी का प्रसन्न होना भी तभी कहा जा सकता है जब या तो वह उसके बिना अप्रसन्न रहता हो या उससे उसकी प्रसन्नता में कुछ वृद्धि होती हो अथवा उससे उसको कोई दूसरे प्रकार का लाभ पहुँचता हो। परन्तु वीतराग देव के विषय में यह सब कुछ भी नहीं कहा जा सकता - वे न किसी पर प्रसन्न होते हैं, न अप्रसन्न और न किसी प्रकार की कोई इच्छा ही रखते हैं, जिसकी पूर्ति-अपूर्ति पर उनकी प्रसन्नता-अप्रसन्नता निर्भर हो। अतः अन्य मतावलम्बी उपहास पूर्वक कहते हैं कि जब तुम्हारा देव परम वीतराग है, उसे पूजा उपासना की कोई

जरूरत नहीं। कर्ता-धर्ता न होने से वह किसी को कुछ देता अथवा किसी से कुछ लेता नहीं है। तब उसकी पूजा-वन्दना क्यों की जाए?

मुख्तार साहब ने वीतराग पूजा विरोधियों की भ्रान्तियों का बड़ी तर्कपूर्ण शैली में समाधान प्रस्तुत किया है।

मुख्तार साहब पूजा विरोधियों के तर्कों को लक्ष्य में रखकर स्वामी समन्तभद्र जो कि वीतराग देवों की पूजा, उपासना, वन्दना के प्रबल पक्षधर हैं और जो स्वयं भी अनेक स्तुति-स्तोत्रों के द्वारा उनकी पूजा में संलग्न रहते थे - के स्वम्भू स्तोत्र का एक उद्धरण प्रस्तुत कर वीतराग-पूजा की सार्थकता पर प्रकाश डाला है।

स्वम्भू स्तोत्र का पद्य है -

नपूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ विवान्त वैरे।
तथापि ते पुण्य गुणस्मृतिर्नः पुनाति चित्तं दुरिताञ्जवेभ्यः॥

अर्थात् हे भगवान्, पूजा-वन्दना से आपका कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि आप वीतरागी हैं- राग का अंश भी आपके आत्मा में विद्यमान नहीं है, जिसके कारण किसी की वन्दना-पूजा से आप प्रसन्न होते हैं। इसी तरह निन्दा से भी आपका कोई प्रयोजन नहीं, कोई कितना भी आपको बुरा कहे, गालियाँ दे, परन्तु उस पर आपको जरा भी क्षोभ नहीं आ सकता। परन्तु फिर भी हम जो आपकी पूजा-वन्दनादि करते हैं। उसका ध्येय आपके गुणों का स्मरण-भावपूर्वक अनुचिन्तन जो हमारे चित्त को निर्मल एवं पवित्र बनाता है और पाप मलों को छुड़ाकर चिद्रूप आत्मा को सांसारिक वातावरण से हटाकर स्वस्थ करता है। इस तरह हम उसके द्वारा अपने आत्मा के विकास की साधना करते हैं।

मुख्तार साहब कहते हैं कि वीतराग भगवान् के पुण्य-गुणों के स्मरण से पापमल से मलिन आत्मा के निर्मल होने की जो बात कही गई है, वह बड़ी ही रहस्यपूर्ण है। उसमें जैनधर्म के आत्मवाद, कर्मवाद, विकासवाद और उपासनावाद जैसे सिद्धान्तों का बहुत कुछ रहस्य सूक्ष्म रूप से सन्निहित है।

और भी अनेक तर्क एवं उदाहरण प्रस्तुत कर मुख्तार साहब ने वीतराग देवों की पूजा-वन्दना को अत्यन्त आवश्यक नित्य करणीय कर्तव्य बताया है।

परन्तु यह बात ध्यातव्य है कि देव-वन्दना पूजादि के समय जिनेन्द्र देव से आन्तरिक भावों का जुड़ना आवश्यक है। देव और पूजादि के बीच किसी प्रकार का प्रदर्शन अथवा नित्य पूजा करने के व्रत को निपटाने मात्र का भाव नहीं होना चाहिये। समन्तभद्र विचार-दीपिका का तीसरा निबन्ध है- वीतराग से प्रार्थना क्यों?

कुछ लोगों का विचार है कि जब वीतराग अर्हन्त देव परम उदासीन एवं कृतकृत्य होने से कुछ करते-धरते नहीं तब पूजा उपासनादि के अवसरों पर उनसे बहुधा प्रार्थनाएं क्यों की जाती है और क्यों उनमें व्यर्थ ही कर्तृत्त्व का आरोप किया जाता है? जिसे स्वामी समन्तभद्र जैसे महान् आचार्यों ने भी अपनाया है।

उक्त भ्रान्तजनों की शंकाओं का समधान करते हुए मुख्तार साहब कहते हैं कि सबसे पहली बात तो इस विषय में यह जान लेने की है कि इच्छापूर्वक अथवा बुद्धिपूर्वक किसी काम को करने वाला ही उसका कर्ता नहीं होता, बल्कि अनिच्छा पूर्वक अथवा अबुद्धिपूर्वक कार्य को करने वाला भी कर्ता होता है। वह भी कार्य का कर्ता होता है जिसमें इच्छा-बुद्धि का प्रयोग ही नहीं बल्कि सद्भाव नहीं होता। अथवा किसी समय उसका संभव भी नहीं हो ऐसे इच्छा शून्य तथा बुद्धि विहीन कर्ता कार्यों के प्राय: निमित्त कारण ही होते हैं और प्रत्यक्ष रूप में अथवा अप्रत्यक्ष रूप में उनके कर्ता जड़ और चेतन दोनों ही प्रकार के पदार्थ हुआ करते हैं।

किसी कार्य का कर्ता या कारण होने के लिये यह जरूरी नहीं है कि उसके साथ में इच्छा-बुद्धि तथा प्रेरणादिक भी हों। यह उसके बिना भी हो सकता है।

भले प्रकार से सम्पन्न हुए स्तुति-वन्दनादि कार्य इष्ट फल को देने वाले हैं और वीतराग देव में कर्तृत्त्व विषय का आरोप सर्वथा असंगत तथा व्यर्थ

नहीं है, बल्कि संगत सुघटित है। वे स्वेच्छा, बुद्धि-प्रयत्नादि की दृष्टि से कर्ता न होते हुए भी निमित्तादि की दृष्टि से कर्ता जरूर हैं और इसलिये उनके विषय में अकर्तापन सर्वथा एकान्त पक्ष घटित नहीं होता। तब उनसे तद्विषयक अथवा ऐसी प्रार्थनाओं का किया जाना भी असंगत नहीं कहा जा सकता, जो उनके सम्पर्क अथवा शरण में आने से स्वयं सफल हो जाती है। ये सब प्रार्थनाएं चित्त को पवित्र करने, जिनश्री तथा शिव सन्मति को देने और कल्याण करने की याचना को लिए हुए हैं आत्मोत्कर्ष एवं आत्म-विकास का लक्ष्य करके की गई हैं। सभी जिनेन्द्र देव के सम्पर्क, प्रभाव तथा शरण में आने से स्वयं सफल होने वाली अथवा भक्ति-उपासना के द्वारा सहज साध्य हैं।

वास्तव में परम वीतराग देव से विवेकीजन की प्रार्थना का अर्थ देव के समक्ष अपनी भावना को व्यक्त करना है अथवा यों कहिए कि आलंकारिक भाषा में मनःकामना को व्यक्त करके यह प्रकट करना है कि वह आपके चरण-शरण एवं प्रभाव में रहकर और उससे कुछ पदार्थ-पाठ लेकर आत्मशक्ति को जाग्रत एवं विकसित करता हुआ अपनी इच्छा-कामना या भावना को पूरा करने में समर्थ होना चाहता है। उसका यह आशय कदापि नहीं होता कि वीतराग देव भक्ति-भावना से द्रवीभूत होकर अपनी इच्छा शक्ति अपना प्रयत्नादि को काम में लाकर उसका कोई काम कर देंगे।

समन्तभद्र-विचार-दीपिका का चौथ निबन्ध है – पुण्य-पाप की व्यवस्था कैसे? इस सम्बन्ध में मुख्तासर साहब ने पुण्य-पाप के बन्ध के सम्बन्ध में प्रचलित सामान्य धारणाओं का खण्डन करके पुण्य-पाप की व्यवस्था के सम्बन्ध में स्वामी समन्तभद्र के मत की सप्रमाण पुष्टि की है।

पुण्य-पाप का उपार्जन कैसे होता है – कैसे किसी को पुण्य लगता, पाप चढ़ता अथवा पाप-पुण्य का उसके साथ सम्बन्ध होता है। यह एक विचारणीय समस्या है। अधिकांश विचारकों की यह एकान्त धारणा है कि दूसरों को दुःख देने, दुःख पहुँचाने, दुःख के साधन जुटाने अथवा उनके लिए किसी भी तरह दुःख का कारण बनने से नियमतः पाप होता है – पाप का आस्रव बन्ध होता है। इसके विपरीत दूसरों को सुख देने, सुख पहुँचने, सुख

के साधन जुटाने अथवा उनके लिये किसी भी तरह सुख का कारण बनने से नियमत: पुण्य होता है – पुण्य का आस्रव-बन्ध होता है। अपने को सुख-दु:ख देने आदि से पाप-पुण्य के बन्ध क़ा कोई सम्बन्ध नहीं है।

इसके विपरीत्त इस विषय में दूसरों की यह एकान्त धारणा है कि अपने को दु:ख देने, पहुँचाने आदि से नियमत: पुण्योंपार्जन और सुख देने आदि से नियमत: पापोपार्जन होता है – दूसरों के सुख-दु:ख का पुण्य-पाप के बन्ध से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मुख़्तार साहब का विचार है कि स्वामी समन्तभद्र की दृष्टि में ये दोनों ही विचार एवं पक्ष निरे एकान्तिक होने से वस्तु-तत्त्व नहीं है। इसीलिए उन्होंने इन दोनों को सदोष ठहराते हुए पुण्य-पाप की जो व्यवस्था सूत्ररूप से अपने देवागम (92 से 95) तक में दी है वह बड़ी ही मार्मिक एवं रहस्यपूर्ण है। प्रथम पक्ष को सदोष ठहराते हुए स्वामी जी लिखते हैं

पापं ध्रुवं परे दु:खात्पुण्यं च सुखतो यदि।
अचेतनाऽकषायौ च बध्येयातां निमित्तत:॥

यदि परमें दु:खोत्पादन से पाप का और सुखोत्पादन से पुण्य का होना निश्चित है – ऐसा एकान्त माना जाए तो फिर अचेतन पदार्थ और अकषायी (वीतराग) जीव भी पुण्य-पाप से बंधने चाहिए। क्योंकि वे भी दूसरों में सुख-दु:ख की उत्पत्ति के निमित्त कारण होते हैं।

मुख़्तार साहब ने अचेतन पदार्थों के सुख-दु:ख में निमित्त बनते हुए दूध-मलाई और कांटे का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत कर विषय को बहुत स्पष्ट कर दिया है। मुख़्तार साहब आगे कहते हैं कि यदि यह कहा जाए कि चेतन ही बन्ध के योग्य हैं अचेतन नहीं तो फिर कषाय रहित वीतरागियों के विषय में आपत्ति को कैसे टाला जाएगा। वीतरागियों के दु:ख में निमित्त कारण बनने का उदाहरण देते हुए मुख़्तार साहब कहते हैं कि किसी मुमुक्षु को मुनि-दीक्षा देते हैं तो अनेक सम्बन्धियों को दु:ख पहुँचता है। शिष्यों तथा जनता को शिक्षा देते हैं तो उससे उन लोगों को सुख मिलता है। आगे भी वीतरागियों के सुख-

दु:ख में कारण बनने के अनेक उदाहरण दिए गये हैं। निष्कर्ष रूप में वे कहते हैं कि चेतन प्राणियों की दृष्टि से भी पुण्य-पाप की उक्त एकान्त व्यवस्था सदोष है।

दूसरा पक्ष अपने में दु:खोत्पादन से पुण्य का और सुखोत्पादन से पाप का बन्ध होता है, इसका खण्डन करते हुए मुख्तार साहब स्वामी समन्तभद्र की निम्नकारिका उद्धृत करते हैं :-

पुण्यं ध्रुवं स्वतो दु:खात्पापं च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनिर्विद्वांस्ताभ्यां युंज्यान्निमित्ततः॥

यदि अपने में दु:खोत्पादन से पुण्य का और सुखोत्पादन से पाप का बन्ध ध्रुव है तो फिर वीतराग (कषायरहित) और विद्वान् मुनिजन भी सुख-दु:ख की उत्पत्ति के निमित्त कारण हैं। वीतराग और विद्वान मुनि के त्रिकाल योगादि के अनुष्ठान द्वारा कायक्लेशादि रूप दु:ख की और तत्त्वज्ञान जन्य सन्तोष लक्षण रूप सुख की उत्पत्ति होती है। जब अपने में सुख-दु:ख के उत्पादन से ही पुण्य-पाप बंधता है तो फिर अकषाय जीव पुण्य-पाप के बन्धन से कैसे मुक्त रह सकते हैं।

स्वामी समन्तभद्र ने स्व-परस्थ सुख-दु:खादि की दृष्टि से पुण्य-पाप की जो सम्यक् व्यवस्था अर्हन्मतानुसार बतलाई है उसकी प्रतिपादक कारिका इस प्रकार है-

विशुद्‍दि-संक्लेशाङ्गं चेत् स्व-परस्थं सुखाऽसुखम्।
पुण्य-पापास्रवो युक्तौ न चेद् व्यर्थस्तवार्हता॥

अर्थात् सुख -दु:ख आत्मस्थ हो या परस्थ अपने को हो या दूसरे को- वह यदि विशुद्धि का अंग है तो वह पुण्यास्रव का, संक्लेशाङ्ग है तो पापास्रव का हेतु है।

मुख्तार साहब कहते हैं कि यहाँ संक्लेश का अभिप्राय आर्त-रौद्र ध्यान के परिणाम से है-'आर्त-रौद्र-ध्यान परिणामः संक्लेशः' ऐसा अकलंक

देव ने भी अष्टशती टीका में स्पष्ट लिखा है और श्री विद्यानन्द ने भी उसे अष्टसहस्त्री में अपनाया है। मुख्तार साहब ने विशुद्धि और संक्लेश के प्रचुर-उदाहरण देते हुए विस्तृत व्याख्या की। अन्त में वे लिखते हैं कि सुख और दु:ख दोनों ही चाहे स्वस्थ हो या परस्थ, अपने को हों या दूसरों के हो। कथंचित् पुण्य रूप आस्त्रव-बन्ध के कारण हैं विशुद्धि के अंग होने से। कथंचित् पाप रूप आस्त्रव-बन्ध के कारण हैं, संक्लेश का अंग होने से कथंचित् पुण्य-पाप उभयरुप आस्त्रव-बन्ध के कारण हैं, क्रमार्पित विशुद्धि-संक्लेश के अंग होने से, कथंचित् अव्यक्त रूप हैं क्रमार्पित विशुद्धि-संक्लेश का अंग होने से विशुद्धि और संक्लेश का अंग न होने पर दोनों ही बन्ध के कारण नहीं है।

आचार्य श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार की समन्तभद्र-विचार-दीपिका के उक्त चारों ही निबन्ध आज के भी ज्वलन्त प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करते हैं। आम लोगों की उक्त चारों विषयों में जो भ्रान्त धारणाएं हैं वे इस पुस्तिका के पढ़ने से नष्ट हो जाएगी। उक्त चारों ही विषयों में मुख्तार साहब का मौलिक चिन्तन है, जो कि स्वामी समन्तभद्र के ग्रन्थों के उद्धरण से परिपुष्ट है।

समन्तभद्र-विचार-दीपिका में मुख्तार साहब की प्रौढ़ लेखन शैली के दर्शन होते हैं। प्रत्येक वाक्य और वाक्य का प्रत्येक शब्द सार्थक है। उनकी विषय प्रतिपादन शैली बड़ी स्वाभाविक, रोचक, पूर्ण तथा उदाहरणों के द्वारा गूढ़तिगूढ़ विषय को भी सुपाच्य बना देने वाली है। भाषा में तत्सम शब्दों का बाहुल्य होने पर भी किसी प्रकार की दुर्बोधता नहीं है। विषय को स्पष्ट करने के लिए जो दृष्टान्त-उदाहरण दिए गए हैं-वे दिन प्रतिदिन व्यवहार में आने वाली वस्तुओं से ही लिए हैं। भाषा प्रसादगुणमयी तथा समास और व्यास दोनों ही शैलियों का आलम्बन लिए हुए हैं। अपने विचारों को पुष्ट तथा प्रमाणित करने के लिए लेखक पद-पद पर समन्तभद्र स्वामी के ग्रन्थों के उद्धरण प्रस्तुत करना नहीं भूलते।

समन्तभद्र-विचार-दीपिका लघुकाय होती हुई भी विषय गम्भीर्य की दृष्टि से बहुत बड़ी गागर में सागर की लोकोक्ति को चरितार्थ करती है।

मुख्तार साहब की दृष्टि में समन्तभद्र

डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, श्रावस्ती

जैन समाज समन्तभद्र के नाम से भलीभाँति परिचित है। जैन परम्परा में आप्तमीमांसा आदि स्तुतिकाव्यों की रचना करने वाले समन्तभद्र का स्थान बाल्मीकि जैसा है, वहीं रत्नकरण्ड-श्रावकाचार जैनों के लिए मनुस्मृति के समान है। समन्तभद्र के स्तुति ग्रन्थ, जैनदर्शन विषयक अज्ञानान्धकार को दूर करने वाले परमोज्ज्वल परम प्रकाशवान ज्ञानदीप हैं। इन ज्ञान दीपों के प्रकाश में अनेक परवर्ती आचार्यों ने जैन दर्शन के खोये-बिखरे हुए चिन्तन को संजोने का सफल प्रयास किया है। अकलंक, विद्यानन्द, माणिक्यनन्दि, प्रभाचन्द्र, वसुनन्दि और यशोविजय आदि आचार्यों ने समन्तभद्र को आधार बनाकर जैन दर्शन विषयक विशाल भाष्य ग्रन्थ लिखे। शिलालेखों, ताम्रलेखों, परवर्ती आचार्यों के आध्यात्मिक, दार्शनिक, चिकित्सा, व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष आदि ग्रन्थों में समन्तभद्र के अवदान को श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया गया है। समन्तभद्र से सम्बन्धित विभिन्न उल्लेखों की विपुल सामग्री होने पर भी पं मुख्तार से पूर्व उसका एक जगह संकलन कर उनके जीवन, समय और गुणादि का उतना आकलन नहीं किया गया था, जितना कि अपेक्षित था; क्योंकि उन्नीसवीं-बीसवीं शती में कतिपय इतिहासकार और समीक्षक विद्वान् दार्शनिक इतिहास के सन्दर्भ में सामग्री की अनुपलब्धता अथवा साम्प्रदायिक विद्वेषवश भ्रममूलक निष्कर्ष निकालने लगे थे। पं. मुख्तार साहब ने अथक परिश्रम करके यत्र-तत्र बिखरे हुए सन्दर्भों को संकलित कर उनके आधार पर ईमानदारी पूर्वक सप्रमाण अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किये, जिससे आगे चलकर भारतीय-दर्शनों के इतिहास में जैन दर्शन और समन्तभद्र के महत्त्वपूर्ण योगदान का मूल्याङ्कन हो सका।

मुख्तार साहब ने उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि समन्तभद्र के स्तुतिग्रन्थ तीर्थङ्करों को समर्पित होने के कारण उन्हें भले ही

जैन परम्परा का आचार्य स्वीकार किया जाये, पर सत्यान्वेषण और सर्वोदय दर्शन के साथ अन्य परम्पराओं से सामञ्जस्य एवं सौहार्द्र स्थापित करने की जो विचार पद्धति उन्होंने विकसित की, वह उनको विश्व के महान मनीषियों की कोटि में स्थान प्रदान कराती है। जो लोग उनको देश-काल के चौखटे में जकड़ने के प्रयत्न में लगे रहते हैं, वे उनके ज्ञान से ओझल होते जाते हैं। सत्य को किसी परिधि में बाँधा नहीं जा सकता। सत्य सत्य होता है, जो सभी के द्वारा स्वीकार होना चाहिए।

मुख्तार साहब ने समन्तभद्र विषयक सामग्री की खोज के दौरान यह अनुभव किया कि उपलब्ध सामग्री समन्तभद्र के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त नहीं है, फिर भी उन्होंने अन्य सामग्री की प्रतीक्षा किये बिना ही संकलित सामग्री के आधार पर समन्तभद्र के जीवन परिचय एवं समय पर महत्वपूर्ण निष्कर्ष देते हुए 'स्वामी समन्तभद्रः इतिहास' नामक पुस्तक प्रकाशित करा दी। समन्तभद्र से सम्बन्धित बिखरी हुई विपुल सामग्री को देखकर जान पड़ता है कि मुख्तार साहब के संकलन के चक्कर में संकलित सामग्री ही प्रकाशित न होने पाये। वस्तुतः समन्तभद्र, मुख्तार साहब के परम आराध्य थे और वे समन्तभद्र रूपी सूर्य को क्षणभर के लिए भी ढका नहीं रहने देना चाहते थे। समन्तभद्र को समझना और समझाना ही उनके जीवन का परम लक्ष्य बन गया था। उनकी दृष्टि में लोक-हित की अनुपम मूर्ति समन्तभद्र के ग्रन्थों में जैनधर्म, दर्शन का समस्त निचोड़ उपलब्ध होता है।

सन् 1940 में मुख्तार साहब ने समन्तभद्र के सभी ग्रन्थों का हिन्दी अनुवादादि के साथ 'समन्तभद्र भारती' के नाम से एक ग्रन्थ प्रकाशित करने की योजना बनाई थी। जिसके अनुवाद का कार्य उस समय के माने हुए पण्डितों ने करना स्वीकार कर लिया था। पं. बंशीधर व्याकरणाचार्य ने वृहत् स्वयम्भूस्तोत्रम् का, पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने जिनशतकम् का, न्यायाचार्य पं. महेन्द्र कुमार जी ने देवागम स्तोत्रम् का, पं. फूलचन्द्र जी शास्त्री ने युक्त्यनुशासनम् का और रत्नकरण्ड श्रावकाचार का अनुवाद स्वयं मुख्तार सा. ने करना स्वीकार किया था। जो भी कारण रहा हो पं. पन्नालाल और मुख्तार सा. को छोड़कर किसी भी पण्डित ने अनुवाद का कार्य करके नहीं दिया

अन्ततोगत्वा श्री मुख्तार सा को ही 'जिनशतकम्' छोड़कर अन्य चार ग्रन्थों के अनुवाद स्वयं करने पड़े। अदम्य साहस के धनी मुख्तार साहब जब युक्त्यानुशासनम् का अनुवाद कर रहे थे। उस समय उक्त ग्रन्थ का एक तिहाई ही अनुवाद हो पाया था कि उसको बक्से में रखकर मुख्तार सा. दि. जैन परिषद् के अधिवेशन में कानुपर गये हुए थे। वहाँ उनका बक्सा चोरी चला गया। तत्पश्चात् काफी लम्बे समय तक उनका अनुवाद का कार्य रुका रहा। परन्तु मुख्तार सा हिम्मत नहीं हारे और 'देहं वा पातयेयं कार्यं वा साधयेयम्' के अनुसार वे उसके अनुवाद में पुनः जुट गये और उसको पूर्ण किया। जब वे समीचीन धर्मशास्त्र के अनुवाद का कार्य कर रहे थे, उस समय उन्होंने समन्तभद्र के सभी ग्रन्थों की शब्द-सूची बनाई और उनके तत्कालीन अर्थ की खोज की, उस समय समन्तभद्र के ग्रन्थों में उस शब्द का जो अर्थ प्रचलन में रहा, उसी को रखा, शब्दाडम्बर में नहीं पड़े। उदाहरण के लिए उस समय 'पारव्रण्डि' का अर्थ साधु होता था। वही अर्थ ढूँढकर रखा गया।

यदि गहराई से विचार किय जाये तो मुख्तार साहब द्वारा समन्तभद्र के ग्रन्थों का मात्र अनुवाद नहीं किया गया, अपितु अनुवाद के साथ उन्होंने उन पर हिन्दी में भाष्य ही लिख डाले। कहीं-कहीं पर तो उनकी लेखनी इतनी विस्तृत चलती गयी कि जब तक कारिका का पूर्ण अर्थ नहीं खुल गया, तब तक रुकी नहीं। यहाँ यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि समन्तभद्र पर अकलंक, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र और वसुनन्दि के पश्चात् पं. जुगल किशोर मुख्तार ने गम्भीर अन्वेषण, विश्लेषण एवं जैनेतर शास्त्रों के गहन अध्ययन पूर्वक अनुवाद के साथ जो भाष्य लिखे वे ग्रन्थ के मौलिक स्वरूप को सुरक्षित रखे हुए जैन दर्शन के गूढ़ रहस्यों की पर्तों को खोलते हैं। मुख्तार सा. ने समन्तभद्र पर जितना लिखा उतना आज तक कोई विद्वान् नहीं लिख सका। जो कुछ भी लिखा भी गया वह 'मुख्तारोच्छिष्ट' है। कतिपय विद्वानों ने तो मुख्तार साहब के नामोलेख बिना ही उनके भाष्य ग्रन्थों से पृष्ठ के पृष्ठ अपने ग्रन्थों में उतार लिए।

पं. नेमीचन्द्र जी ज्योतिषाचार्य लिखते हैं कि "आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' के भाष्यों में मौलिक प्रतिभा दिखलाई पड़ती है। इन भाष्यों

की शैली-विषय प्रतिपादन की प्रक्रिया वैज्ञानिक है। समीचीन धर्म शास्त्र या रत्नकरण्ड श्रावकाचार का विषय तो मौलिक प्रतिपादन की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय है। आचार्य 'युगवीर' ने अपने इस भाष्य द्वारा कितनी ही भ्रान्तियों का निराकरण किया है। श्री मुख्तार ने बौद्धिक दृष्टि से दिगम्बर परम्परा के संरक्षण का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उनका यह कार्य वर्तमान युग में उनके आराध्य आचार्य समन्तभद्र के कार्यों के तुल्य है। जब जिज्ञासु अध्येता आसन लगाकर इस महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना का अध्ययन करने लगता है तो उसके अर्धोन्मीलित नेत्रों के समक्ष समन्तभद्र की आकृति उपस्थित होती है और ऐसा आभास होता है कि 'युगवीर' में समन्तभद्र की आत्मा बोलती हो। समन्तभद्र सूत्रकार है और आत्मावतारी युगवीर भाष्यकार।"

मुख्तार साहब कवि के रूप में 'युगवीर' उपाधि से विख्यात थे। उन्होंने हिन्दी और संस्कृत भाषा में कविताएँ लिखीं। संस्कृत में उनके द्वारा लिखीं गयीं कविताओं में स्वामी समन्तभद्र से सम्बन्धित ग्यारह पद्यों की कविताएं महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें शब्द सौष्ठव एवं अर्थ विन्यास की मधुरता के साथ समन्तभद्र के प्रति मुख्तार सा. की गुरू के रूप में अटूट श्रद्धा एवं अगाध भक्ति दृष्टिगोचर होती है। वे समन्तभद्र को ऐसा गुरू मानते थे जो दैवज्ञ, मान्त्रिक, तान्त्रिक, सिद्ध, सारस्वत, वाग्सिद्धि प्राप्त और महावाद विजेताओं के अधीश्वर लोक जीवन के नायक और सर्वोदय तीर्थ के प्रतिष्ठायक थे। वहाँ शिवकोटि और शिवापत का उदाहरण देकर कुमार्ग से रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है अपने स्तोत्र में मुख्तार सा. ने शास्ता समन्तभद्र की उस वाणी के द्वारा सन्मार्ग प्रदर्शन की अपेक्षा की है, जो सम्पूर्ण सुख की प्राप्ति का मार्ग बतलाने वाली, तत्त्वों के प्ररूपण में तत्पर नयों की विवक्षा से विभूषित और युक्ति तथा आगम के साथ अविरोध रूप है।

अद्यावधि समीक्षक विद्वानों द्वारा समन्तभद्र के जीवनवृत्त पर जो कुछ भी लिखा गया है, उसका मूलाधार पं. जुगल किशोर मुख्तार द्वारा किये गये उल्लेख "इति फणिमंडलालंकारस्योरगपुराधिप-सूनोः श्री स्वामी समन्तभद्र मुनेः कृतौ आप्तमीमांसायाम्" पुष्पिका वाक्य, शान्तिवर्मा और कथाओं के विभिन्न सन्दर्भ रहे हैं। मुख्तार सा. ने उक्त पुष्पिका वाक्य को उस प्राचीन

ताड़पत्रों पर लिखी हुई आप्त मीमांसा की प्रति का बताया है, जो श्रवणबेलगोला के दौर्बलि जिनदास शास्त्री के भण्डार में है समन्तभद्र के जन्म एवं पितृकुल के सम्बन्ध में विचार करने वाले श्री मुख्तार के उत्तरवर्ती सभी विद्वानों ने मुख्तार सा. के कथन का ज्यों का त्यों उपयोग किया है। किसी भी विद्वान् समीक्षक ने उक्त पाण्डुलिपि अथवा आप्तमीमांसा की अन्य ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियों में उक्त पुष्पिका वाक्य को खोजने का प्रयत्न नहीं किया, जबकि दक्षिण भारत में उपलब्ध आप्तमीमांसा की अधिकांश ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियों में उक्त पुष्पिका वाक्य पाया जाता है। यहां तक कि दक्षिणभारत से अन्य स्थानों पर पहुँची ताड़पत्रीय प्रतियों में भी वह परम्परा पाई जाती है। समन्तभद्र के आत्म-परिचय विषयक श्लोक 'आचार्योऽहं कविरहमहं इत्यादि' मुख्तार सा. ने ही सर्वप्रथम प्रकाश में लाया गया था।

समन्तभद्र के समय के सम्बन्ध विद्वानों में अनेक विप्रतिपत्तियां रहीं हैं। मुख्तार सा ने अपने समय तक के विद्वानों के मतों का अकाट्य तर्कों द्वारा समीक्षण करके समन्तभद्र का समय विक्रम की द्वितीय-तृतीय शताब्दी प्रतिपादित किया है।

मुख्तार सा. ने समन्तभद्र द्वारा रचित ग्यारह कृतियों का उल्लेख किया है, जिनमें वर्तमान में आप्तमीमांसा, युक्त्यानुशासनम्, स्वम्भूस्तोत्रम्, जिनशतकम् और रत्नकरण्डश्रावकाचार ही प्राप्त होते हैं।

जिस महाकवि ने राष्ट्रीय एकीकरण की पोषक 'मेरी भावना' जैसी कविता की रचना की हो। आबालवृद्ध सभी के कण्ठ जिस कविता से सुवासित हो उठते हों। आश्चर्य होता है उनके सद्गति प्राप्त करने के पश्चात् दि. जैन समाज ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया, जिससे यह कहा जा सके श्री मुख्तार समाज को अब भी स्मरण में हैं। उनके विचारों का अध्ययन करने के पश्चात् लगता है कि उनके मन में ऐसे साहित्य सृजन की कल्पना थी, जिससे दिगम्बर वाङ्मय की आकस्मिक रिक्तता को भरा जा सके। षड्खण्डागम के बाद, कुन्दकुन्द भारती, समन्तभद्र भारती जैसे ग्रन्थों को निकालने के पीछे उनका भाव भी यही रहा होगा।

संक्षेप में यह आलेख, मुख्तार साहब द्वारा किया गया समन्तभद्र का बहिरंग मूल्याङ्कन है। अन्तरंग मूल्यांकन के लिए समय एवं विस्तार आवश्यक है। क्योंकि समन्तभद्र की एक-एक कारिका में गागर में सागर भरा हुआ है और मुख्तार साहब ने अपनी व्यास-शैली से उसे स्पष्ट करने की पूर्ण कोशिश की है। मुख्तार सा. के आधार पर समन्तभद्र का आन्तरिक मूल्यांकन 'समन्तभद्र-परिशीलन' नामक अप्रकाशित अपने ग्रन्थ में किया है। मैं इस गोष्ठी की सफलता एवं मुख्तार सा. के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि तभी समझूंगा जब उन्होंने समन्तभद्र के प्रति जो सपने संजोये थे उन्हें पूर्ण किया जायें।

आधार ग्रन्थ

1 आचार्य समन्तभद्र,
   - देवागम अपरनाम आप्तमीमांसा, सं अनु पं. जुगलकिशोर मुख्तार, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट दिल्ली 1967
   - युक्त्यनुशासन, सं अनु. पं जु कि. मुख्तार, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, सरसावा, सहारनपुर, 1951
   - स्वयम्भूस्तोत्र, सं अनु पं. जु कि मुख्तार, वीर सेवा म ट्रस्ट सरसावा, सहारनपुर, 1951
   - स्वयम्भूस्तोत्र, सं व्या पं पन्नालाल साहित्याचार्य श्री शान्तिवीर दि जैन संस्थान, श्री महावीर जी,
   - जिनशतक-स्तुतिविद्या, सं अनु पं पन्नालाल साहि., वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट सरसावा, सहारनपुर, 1951
   - रत्नकरण्ड श्रावकाचार, , सं पं जु कि. मुख्तार माणिक्यचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, हीराबाग, बम्बई 1925
   - समन्तभद्र ग्रन्थावली, संकलन, डॉ गोकुलचन्द जैन, वीर सेवा मन्दिर वाराणसी, 1989
2. पं. उदयचन्द जैन, आप्तमीमांसा तत्त्वदीपिका, गणेशवर्णी, दि. जैन संस्थान, नरिया, वाराणसी, प्र. सं. वीर नि. सं. 2501
3. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, जैन न्याय, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्र. सं. 1966
4. डॉ. मोकुल चन्द्र जैन, समन्तभद्र ग्रन्थावलि, अप्रकाशित
5. पं. जुगलकिशोर मुख्तार,
   - समीचीन धर्मशास्त्र, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, दिल्ली 1955
   - स्वामी समन्तभद्र, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय हीराबाग, गिरगांव, बम्बई प्र. सं. 1925

6. डॉ. दरबारी लाल कोठिया,
युक्तयनुशासन-प्रस्तावना, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट वाराणसी 1969
7. डॉ नरेन्द्र कुमार जैन, समन्तभद्र-परिशीलन, अप्रकाशित
8. डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री, श्री पं जुगलकिशोर जी मुख्तार - ''युगवीर कृतित्व एवं व्यक्तित्व अ भा जैन विद्वत्परिषद् सागर 1968

कथणी कथै सों सिष्य बोलिए, वेद पढ़ै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरू हमारा, हम रहता का साथी॥

जो केवल कहता फिरता है, वह शिष्य है। जो वेद का पाठ मात्र करता है, वह नाती है। जो आचरण करता है, वह हमारा गुरू है और हम उसी के साथी हैं।

-गोरखनाथ (गोरखबानी, सबदी, २७१)

सतगुर की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार॥

-कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ. १)

सतगुर साँचा सूरिवाँ, सबद जू बाह्या एक।
लागत ही मैं मिल गया, पड़्या कलेजै छेक॥

-कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ. १)

गूँगा हूवा बावला, बहरा हुआ कान।
पाऊँ थैं पंगुल भया, सतगुर मार्‌या बान॥

-कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ. २)

पीछैं लागा जाइ था, लोक बेद के साथि।
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि॥

-कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ. २)

मुख्तार साहब के साहित्य का शिल्पगत सौन्दर्य

डॉ. सुशील कुमार जैन, कुरावली (मैनपुरी)

खद्दर के परिधान से विभूषित जिनके मस्तिष्क में अगाध विद्वत्ता की लिपि उजागर है, ज्ञान की भास्वर रश्मियों से आलोकित वनवीथियों के पावन उन्नत वदन पर उदात्त मन की आभा को विकीर्ण करता हुआ प्रतिभावान कलाकार साहित्यकार के जीवन में संघर्ष होना अनिवार्य है। संघर्ष की भूमि में ऐसे तन्तु जन्म लेते हैं जिनसे कला तथा साहित्य का विकास होता है। उनके लेखन में और भाषणों में भी एक सुलझी हुई समीक्षात्मकता तुलनात्मकता अध्ययन तथा स्वतन्त्र चिन्तन भी यत्र तत्र दृष्टिगोचर होता है। इसी श्रृंखला में जैनदर्शन के एक मेधावी भाष्यकार जिनके अन्तरंग में अध्यात्म का चिरंतन और शाश्वत आलोक विद्यमान है, आचार्य समन्तभद्र की प्राय: समस्त कृतियों पर भाष्य ग्रन्थ लिखने वाले आचार्य पं. श्री जुगलकिशोर मुख्तार 20 वीं शताब्दी के प्रगल्भ वाग्मी, अनासक्त योगी तथा सरलता की प्रतिमूर्ति हैं।

जैन साहित्य और उसके रचयिता आचार्यों के इतिवृत्त के सम्बन्ध में पं. श्री जुगल किशोर मुख्तार की देन अपूर्व है। ये संस्कृत के पठित पण्डित नहीं थे, किन्तु स्वत: अभ्यास करके ऐसी सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त की थी कि संस्कृत प्राकृत के शास्त्रों में से गूढ़ रहस्यों को पकड़ लेते थे। इनकी सूझबूझ और अनुसन्धान की शैली बेजोड़ थी। आपने जैन हितैषी में अनेक लेख जैन-साहित्य और जैनाचार्यों के सम्बन्ध में लिखे, जो बाद में पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुए। स्व. सेठ माणिक चन्द जी की स्मृति में (जो बम्बई के मूल निवासी थे) एक ग्रन्थमाला स्थापित की गयी थी, उसमें अनेक अप्रकाशित ग्रन्थों को प्रकाशित करके जैन साहित्य की श्रीवृद्धि हुई। उसी ग्रन्थमाला से आचार्य समन्तभद्र का रत्नकरण्ड श्रावकाचार मुख्तार साहब की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना के साथ प्रकाशित हुआ। आचार्य समन्तभद्र और उनके कृतित्व के सम्बन्ध में तथा टीकाकार प्रभाचन्द्र के सम्बन्ध में मुख्तार साहब ने अपने जीवन भर की शोध सामग्री के साथ प्रकाश डाला।

पं. कैलाशचन्द्र जी ने लिखा है – 'दिगम्बर जैन समाज में सर्वप्रथम' 'क्रमबद्ध इतिहास' विषय की ओर पं. श्री नाथूराम प्रेमी तथा पण्डित श्री जुगल किशोर मुख्तार का ध्यान गया। इन दोनों आदरणीय विद्वानों ने अपने पुरुषार्थ और लगन के बल पर अनेक जैनाचार्यों और जैन ग्रन्थों के इतिवृत्तों को खोज कर जनता के सामने रखा। आज के जैन विद्वानों में से यदि किन्हीं को इतिहास के प्रति अभिरुचि है तो उसका श्रेय इन्हीं दोनों विद्वानों को है। कम से कम मेरी अभिरुचि तो इन्हीं के लेखों से प्रभावित होकर इस विषय की ओर आकृष्ट हुई है। पं. श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री–जैन साहित्य का इतिहास पूर्व पीठिका (लेखक के दो शब्द, पृष्ठ 15) पण्डित जी ने अनेक ग्रन्थों का सम्पादन, अनुवाद और मौलिक सृजन किया है। वे धर्म, इतिहास और संस्कृति के जाने माने विद्वान हैं। उनके ग्रन्थ मनीषियों और साधारण जन – दोनों की बीच समान रूप से समादृत हैं। यही कारण है कि कवि ने मेरी भावना के ग्यारह पद्यों में अनेक आर्ष ग्रन्थों का सार भर दिया है। हम एक ओर रामायण, महाभारत, और गीता का सार प्राप्त करते हैं तो दूसरी ओर आचार्य कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, पद्मनन्दि प्रभृति आचार्यों के वचनों का सार भी प्राप्त करने में अछूते नहीं रहते।

पं श्री मुख्तार जी के भाष्य ग्रन्थों में दुरूहपदों की विश्लेषणात्मक व्याख्या, असंदिग्ध भाषा का प्रयोग, व्यंजनाओं का पूर्णतया स्पष्टीकरण, व्यंजना का आश्रय, औचित्य बोध, प्रेषणीयता उत्पन्न करना आदि सभी गुण पाये जाते हैं। पंडित जी के ग्रन्थों में गम्भीर अध्ययन और चिन्तन की स्पष्ट छाया है। पण्डित जी द्वारा प्रणीत निम्नलिखित भाष्य उपलब्ध हैं :-

1. स्वयम्भू स्तोत्र भाष्य।
2. युक्त्यानुशासन भाष्य।
3. रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाष्य (समीचीन धर्मशास्त्र)
4. देवागम - आप्तमीमांसा भाष्य।
5. अध्यात्मरहस्य भाष्य।
6. तत्त्वानुशासन भाष्य (ध्यानशास्त्र)

7. योगसार प्राभृत भाष्य।

8. कल्याणमन्दिर स्तोत्र भाष्य (कल्याण कल्पद्रुम)

जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ, तत्त्वों की चर्चा, उनका समीक्षण, स्वाध्याय, वाङ्मय निर्माण, संशोधन, सम्पादन, निबन्ध, भाष्य - इन सभी में पारंगत कोई व्यक्ति मिलता है तो हम कह सकते हैं, वह हैं - आचार्य श्री जुगलकिशोर मुख्तार। आपने अथक परिश्रम कर जैन इतिहास में अपने प्रकार का पहला ग्रन्थ "ग्रन्थ परीक्षा" (दो भाग) लिखकर एक उद्भट समीक्षक के रूप में साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ किया। पं. नाथूलाल जी प्रेमी ने लिखा कि पिछले सैकड़ों वर्षों में कोई समालोचनात्मक ग्रन्थ इतने परिश्रम और विद्वत्ता के साथ नहीं लिखा गया।

श्री मुख्तार जी ने सामाजिक, राष्ट्रीय, आधार मूलक, भक्तिपरक और दार्शनिक विषयों पर अनेक गवेष्णात्मक एवं समाज सुधारात्मक निबन्ध लिखे जो "युगवीर निबन्धावली" दो भाग तथा "जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश" नामक ग्रन्थों में संकलित हैं। मुख्तार जी का स्वाध्याय, मनन, चिन्तन सदैव चलता ही रहता था। मुख्तार जी ने धर्म, संस्कृति और जैनत्व की रक्षा में अपना तन-मन-धन सब कुछ समर्पित कर दिया। यही कारण है कि आज के विद्वान उनका नाम आदर के साथ लेने में अपना गौरव समझते हैं। आचार्य पं. श्री जुगल किशोर जी मुख्तार मेरी दृष्टि में मूलतः कवि हैं। इसके बाद ही उन्हें निबन्धकार, आलोचक या इतिहासकार कहा जा सकता है; क्योंकि कवि ने प्रभू की अर्चना में अनेक पद्य लिखे हैं। यही कारण है कि उन्हें कवि "युगवीर" भी कहा जाता है। कवि ने सूक्ति, भक्ति और लघु काव्यों में भक्ति-भावना का विशेष चित्रण किया है। काव्य में कवि की कथन शैली, रस और अलंकारों का पुट, सरस कविता, शान्त और वैराग्य रस तथा प्रसंगवश कला का अभिव्यंजन सुन्दर बन पड़ा है।

पंडित जी ने अपने विसर्जन पाठ में विनय को प्रधानता दी है, जो निम्न पद्य से प्रकट है :-

सम्पूर्ण विधि कर वीनऊँ इस परम पूजन पाठ में।
अज्ञानवश शास्त्रोक्त विधि लें चूक कीनो पाठ में॥
सो होहु पूर्ण समस्त विधिवत तुम चरण की शरण तैं।
बंदौ तुम्हें कर जोरि कें उद्धार जामन मरण तैं॥
तुम रहित आवागमन आह्वानन कियो निज भाव में।
विधि यथाक्रम निज शक्ति सम पूजन कियो अतिवाद में॥
तीन भुवन तिहुँ काल में, तुमसा देव न और।
सुख कारण संकट हरण, नमो "जुगल" कर जोर॥

उपर्युक्त दोहे में कवि ने देवाधिदेव से प्रार्थना की है कि आप जैसा तीन लोक में कोई भी देव नहीं है। आप मेरे संकटों को दूर कर परम सुख देने की कृपा करें। मैं विनम्रभाव से दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। यहाँ कवि भगवान के प्रति पूर्ण अनुराग प्रदर्शित कर रहा है। यहाँ श्लेष अलंकार है, भाव की प्रधानता है। कवि ने आत्म-सौन्दर्य का अनुभव कर उसे संसार के समक्ष उपस्थित किया है, जिससे वास्तविक आन्तरिक सौन्दर्य का परिज्ञान सहज में हो जाता है। इस दोहे में इतना सार भर दिया है जो मानव हृदय को स्वार्थ सम्बन्धों की संकीर्णता से ऊपर उठाकर लोक-कल्याण की भाव भूमि पर ले जाता है, जिससे मनोविकारो का परिष्कार हो जाता है।

इसी प्रकार कवि ने 'शान्तिपाठ' में भी इष्ट देव को नमस्कार करने के उपरान्त भक्ति और स्तुति की आवश्यकता, गृहवास का दुःख, संसार का दुःख आदि का चित्रण किया है :-

शास्त्रोक्त विधि पूजा महोत्सव सुरपती चक्री करें।
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे यथाविधि पूजा करें॥
धन क्रिया ज्ञान रहित न जानें रीति पूजन नाथ जी।
हम भक्तिवश तुम चरण आगे जोड़ लीनो हाथ जी॥
संसार भीषण विपिन में वसु कर्म मिल आतापियो।
तिस दाह तैं आकुल चित्त है शांति थल कहुँ ना लियो॥
तुम मिले शांतिस्वरूप शांतिकरण समरथ जगपती।
वसु कर्म मेरे शांत कर दो शांतिमय पंचम गती॥

दोहा :-कर प्रमाण के मान तैं, गगन नपै किहि भंत।
त्यों तुम गुण वर्णन करत, कवि पावै नहिं अंत॥

उपर्युक्त पद्य में भाव और शैली की दृष्टि से पर्याप्त साम्य है। मात्रिक छन्दों का सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। अनुप्रास, निदर्शना, अन्त्यानुप्रास आदि शाब्दिक अलंकारों के साथ काव्यलिंग आदि का भी प्रयोग सफलता पूर्वक किया गया है।

दोहे में कवि ने देवाधिदेव के गुणों की प्रशंसा की है। यहाँ कवि कहते हैं - आपके अन्दर - अनन्तगुणों की खान है, उनका वर्णन कर पाना मुश्किल है। यहाँ कालिदास ने लिखा है :-

क्व सूर्य प्रभवो वंशः।
क्व चाल्पविषया मतिः।

इन्हीं भावों को कवि ने दोहे में लिखा है कि कहाँ सूर्य वंश और कहाँ अल्प विषयों को जानने वाला। कहने का तात्पर्य है–सूर्य की महानता का वर्णन अल्प विषयों को जानने वाला नहीं कर सकता। यही बात कवि ने अपने दोहे में कही है - देवाधिदेव का वर्णन कोई भी नहीं कर सकता, उनमें अनन्त गुण विद्यमान हैं। उनका वर्णन हम संसारी प्राणी तो क्या देव लोग भी करने में असमर्थ हैं।

कवि युगवीर जी ने भक्ति की उपलब्धियाँ अनेक बतलाई हैं। जो सेवक के मानस को समुज्ज्वल करती हैं। काले मेघों के प्रति आकृष्ट होता हुआ स्वाति की बूँद के लिये लालायित रहता है, चकोर चन्द्रमा की शीतल किरणों का पान करने हेतु उत्सुक रहता है एवं मयूर पावस कालीन जलदों को देखकर विमुग्ध हो उठता है, उसी प्रकार की तितिक्षा भक्त के मानस में आराध्य की शान्त मुद्रा देखने के लिये प्रतिक्षण उमड़ती रहती है।

उपर्युक्त पद्यों में युगवीर ने जो भक्ति रस भर दिया है, वह देखते ही बनता है। यदि इन सभी पद्यों एवं अन्य लिखी हुई कविताओं को अपनी दृष्टि से ओझल कर दें तो कवि जी की मात्र 'मेरी भावना' में जो भाव मिलते हैं, वह सदैव उनकी गुणगाथा याद दिलाती रहेगी। यह छोटा-सा ग्यारह पद्यों का

काव्य मानव जीवन के लिये ऐसा रत्नदीप है, जिसका प्रकाश सदैव अक्षुण्ण बना रहेगा। आचार्य जुगल किशोर जी का नाम मात्र एक 'मेरी भावना' से अमर रहेगा। हम सभी ऐसे सरस्वती वरद् पुत्र को सादर नमन करते हैं।

ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ।
जय गोबिंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ॥

-कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ. २)

कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लूण।
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरौगे कौंण॥

-कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ. २)

भली भई जु गुर मिल्या, नहिं तर होती हाणि।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यूँ पड़ता पूरी जाणि॥

-कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ. २)

जैनियों का अत्याचार एवं समाज संगठन की समीक्षा

मुकेश कुमार जैन शास्त्री, जयपुर

परम हर्ष का विषय है कि सरस्वती पुत्र प्राक्तन विद्या विचक्षण, प्राच्य महाकवि, सिद्धान्ताचार्य पंडित जुगल किशोर जी मुख्तार जैसे मूर्धन्य विद्वान् के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विद्वत् सगोष्ठी के माध्यम से उनके द्वारा रचित पुस्तको, निबन्धो आदि का समीक्षात्मक परिचय प्रस्तुत कर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को जानने का प्रयास हम कर रहे हैं। पण्डित जी द्वारा लिखित 100 से अधिक निबन्ध? "जैनियों का अत्याचार एवं समाज संगठन की समीक्षा" जैसे विषय पर वक्तव्य देने का अवसर पाकर अपने आप को गौरवान्वित महसूस करता हूँ। यद्यपि प. मुख्तार जी ने अपने निबधों में विषय की गूढ़ता को सहज रूप मे प्रस्तुत करके उन विषयों को जन सामान्य की समझ के योग्य बनाया है। उनके द्वारा प्रत्येक विषय पर लिखा गया आलेख अपने आप में पूर्ण अर्थ को लिए हुए है। तथापि इस विद्वत् गोष्ठी के... व्याख्या करने का विनम्र प्रयास करूँगा।

'जैनियों का अत्याचार' जैसा विषय सुनकर ही हमें आश्चर्य होगा। जैनियों पर अत्याचार जैसे विषयों पर तो हमने ढेर सारी सामग्री पढी है, पढ़ते रहते हैं। किन्तु जैनियों द्वारा दूसरों पर अत्याचार जैसा विषय सुनकर लगता है कि यह विषय त्रुटि पूर्ण है। किन्तु मुख्तार जी ने इस विषय को जितनी गहराई के साथ प्रस्तुत किया है उससे हमें यह जानने मे बहुत सरलता होती है कि वास्तव में जैनियों की स्थिति बहुत खराब है उनका समस्त अभ्युदय नष्ट हो गया है। बल-पराक्रम नष्ट हो गया और वे धर्म से च्युत हो गए हैं। आचार से भ्रष्ट हो गए हैं। जैसा हम जानते हैं कि मनुष्य का उत्थान एवं पतन अपने ही कर्मों से होता है। अत: यह स्वत: ही सिद्ध है कि जैनियों की वर्तमान दशा उनके कर्मों का ही फल है यानि जैनियों ने दूसरे के ऊपर अत्याचार किए।

विचारणीय विषय यह है कि जैनियों ने दूसरों के ऊपर क्या अत्याचार किए। जैसा कि पं. मुख्तार जी ने लिखा, जैनियों ने बड़ा भारी अपराध तो यह किया कि उन्होंने दूसरों को धर्म से वंचित रखा और खुद धर्म के भंडारी बन गए। सामान्य रूप से यह देखे तो हम प. मुख्तार जी के इस विचार से सहमत नहीं हो पाते हैं। किन्तु विषय की गहराई में जाएं तो हमें उनके इस विषय से सहमत होना ही पडेगा। स्थिति तो यहाँ तक है कि जिन मन्दिरों पर बाहर बोर्ड लगा रहता है कि यह मन्दिर केवल दिगम्बर अथवा श्वेताम्बर के लिए पूजन एवं स्वाध्याय का स्थान है। अन्य लोगों के लिए प्रवेश वर्जित है। अन्य लोगों को जिन देव के दर्शनों तक से वंचित रखना जैनियों का अत्याचार नहीं तो क्या है। शायद हम इस विषय को स्वीकार न कर पायें,किन्तु हम देखते हैं कि अनेक विद्वान् या मुनि जैनियो के अलावा हुए हैं। जो जैन कुल में पैदा नहीं हुए, अधिकाश तीर्थकर तो जैन कुल में पैदा नहीं हुए, किन्तु उन्होंने जैनधर्म को स्वीकार किया, विद्वत्ता हासिल की। इससे भी जैनियों का अत्याचार समाप्त नहीं होता, यह तो जैनधर्म का प्रभाव है कि उसने, उनके सिद्धान्तों ने सहज रूप में आम लोगों को अपने वश मे कर लिया और वे सच्चे जैनी बन गए। जैनी तो यह चाहते रहे कि हम ही श्री वीर जिनेन्द्र की संपत्ति के अधिकारी बनें इस तरह मुख्तार जी विचार में जैनियों ने धर्म को अपने ठेके में लेना चाहा जो एक अत्याचार ही तो है। ऐसा पं जी ने लिखा है।

जबकि जैन धर्म साफ कहता है कि समस्त जीव परस्पर समान है। जैनधर्म आत्मा का निजधर्म है, प्राणी मात्र इस धर्म का अधिकारी है। जिनवाणी के इस पवित्र आदेश को छिपाना अत्याचार ही है। दया भाव रखना जैनधर्म का मूल मंत्र है किन्तु जैनी इसका खुले आम उल्लंघन करते हैं। एक मनुष्य यदि दूसरे को लूटता है तो सामने खड़ा एक जैनी इस कृत्य को आनन्द से देखता है। क्योंकि वह पाता है कि यह अपराध मेरे साथ नहीं दूसरे के साथ हो रहा है। परन्तु प. मुख्तार जी ने अपने निबंध में ऐसे व्यक्ति को महाअपराधी कहा है। जैनी अपने आप को सुरक्षित रखने का ही उपाय खोजते हैं। उन्हें दूसरों से कोई लेना या देना नहीं। कोई मरता है तो मर जाए बस मैं, मेरी संपत्ति सुरक्षित रहे। स्वामी समन्तभद्राचार्य ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में लिखा है कि

"जो लोग किसी कारणवश अपने यथार्थ सिद्धान्त अथवा आचरण से च्युत हो गये हैं उन्हें पुन: दृढ़ कर दें परन्तु जैनियों ने यह सब भुला दिया जिसका परिणाम यह हुआ है कि हजारों जैनी "समाज कट गये या विनेकया" बन गये।" और अपने बिछुड़े भाइयों को फिर से गले लगाने का कोई उपाय नहीं सोचा। पं. मुख्तार जी के इस तर्क से हमें सहमत होना पड़ेगा कि यह सब जैनियों का अत्याचार है।

जैनियों ने जिनवाणी माता के साथ कैसा सलूक किया -

इन जैनियों ने जिनवाणी माता को अंधेरी कोठरियों में बन्द करके रखा जहाँ रोशनी और हवा तक नहीं मिली, हजारों जैन ग्रन्थों को चूहों और दीमकों ने नष्ट कर दिया या मिट्टी हो गए। परन्तु इन जैनियों ने बचाने का उपाय नहीं किया ऐसे अत्याचार जिनवाणी माता के साथ किए। जैनियों ने स्त्री समाज पर भी अत्याचार किए। लड़कियों को बेचना, अनमेल संबंध करना, उन्हें अशिक्षित रखना आदि, अत्याचार जैनियों ने किए हैं। पं. मुख्तार जी ने अपने आलेख में ऐसा लिखा है। यद्यपि अब इन विचारों में काफी परिवर्तन आया है जैनी अपनी बेटियों को पर्याप्त शिक्षा में वर तलाशने में अथवा उचित उम्र में ही शादी करने का प्रयास करते हैं। किन्तु आज जैनी नैतिकता के प्रति या जैन धर्म के मूल सिद्धान्तजों के प्रति केवल दिखावा करने में लगे हैं।.घर में बिना छना जल पियेंगे, रात्रि में भोजन करेंगे, होटलों में खाएगें, किन्तु किसी के यहाँ निमंत्रण होने पर उसे परेशान करने का पूरा प्रयास करेंगे कि हम जैनी हैं, खुद का बनाया ही खाते हैं। बिना छना जल नहीं लेंगे। यह दुहरी नीति जैनियों के अत्याचार की खुली कहानी है। दुहरी नीति शब्द का प्रयोग पण्डित जी ने किया है। छानकर पानी पीने वाले और मंदिरों में पूजा-अर्चना करने वाले हजारों युवक शाम को शराब या माँस का सेवन करते हैं जबकि दूसरों को ऐसा न करने को बाध्य करते हैं बड़ी-बड़ी रैलियाँ निकालते हैं।

पं. जी ने पूर्व आचार्यों के कथन के अनुसार एवं उदाहरण देकर कहा है जहाँ तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वामी ने कहा है कि अत्यधिक परिग्रह नरक का कारण है एवं मायाचारी करना तिर्यंच गति का कारण है। वहीं कितने जैनी

उनके सिद्धान्तों का पालन करते है। आज सबसे अधिक परिग्रह देखा जाय तो जैनियो के पास मिलता है। ये जैन सिद्धान्तो पर अत्याचार ही तो है। यही जैनी धर्मार्जन के लिए दूसरे प्राणियों का घात करने में नहीं हिचकते हैं। जहाँ महावीर भगवान ने कहा है कि सत्य और अहिसा का प्रचार करो एवं उन्हें जीवन मे अपनाओ। वही आज जैनी बूचडखाने खुलवाकर के कितने मासूम गाय, बैल, बकरी आदि मूक प्राणियों को कटवाते हैं। तो इसे हम अब अत्याचार नहीं कहेगे क्या? अगर इस बात को कहने की हम कोशिश नहीं करेगे तो क्या होगा। आज कोई भी इस ओर ध्यान नहीं देता। लेकिन ऐसा कटु सत्य कहने वाले निर्भीक वक्ता थे तो वह पण्डित मुख्तार जी थे, क्योंकि आज तक इन जैनियो पर हुए अत्याचारो को कहने वाले तो मिले, पर इन्होने अन्य जीवो, जिनवाणी, धर्म सिद्धान्तों पर अत्याचार किये। इन सबको कहने वाले मात्र एक पण्डित जी के अलावा नहीं मिले।

स्मृति-परिचयात्मक निबन्ध : एक अध्ययन

डॉ. कस्तूरचन्द्र 'सुमन' श्री महावीर जी (राज.)

श्री मुख्तार जी ने विभिन्न विषयों पर अनेक निबन्ध लिखे हैं, उनमें कुछ ऐसे निबन्ध भी हैं जिनमें उनके जीवन को प्रभावित करने वाले व्यक्तित्वों का न केवल स्मरण किया गया है, अपितु उनके व्यक्तित्व की संक्षिप्त जानकारी भी प्रस्तुत की गयी है। ऐसे निबन्धों को ''स्मृति-परिचयात्मक निबन्ध'' संज्ञा दी गयी है।

युगवीर निबन्धावली में उक्त निबन्ध सगृहीत हैं। उनकी संख्या सत्रह है। वे जिस नाम से संकलित हैं, उनके क्रमश: नाम हैं-

1 वैद्य जी का वियोग
2 ईसरी के सन्त
3. शाह जवाहरलाल और जैन ज्योतिष
4 हेमचन्द्र-स्मरण
5 कर्मठ विद्वान (ब्र. शीतलप्रसाद जी)
6 राजगृह मे वीरशासन-महोत्सव
7 कलकत्ता में वीरशासन-महोत्सव
8 श्री दादी जी
9 जैनजाति का सूर्य अस्त!
10 अभिनन्दनीय पं. नाथूराम जी 'प्रेमी'
11 अमर पं. टोडरमल जी
12 सन्मति-विद्या-विनोद
13 पं. चैनसुखदास जी का अभिनन्दन
14 श्री पं. सुखलाल जी का अभिनन्दन
15. शुभ भावना (आचार्य श्री तुलसी-अभिनन्दन)

16 पंडित ठाकुरदास जी का वियोग
17. श्री छोटेलाल जी का निधन

इन निबन्धों में प्रथम निबन्ध है - "वैद्यजी का वियोग"। यहाँ श्री मुख्तार जी का वैद्यजी से तात्पर्य है - देहली के सुप्रसिद्ध राजवैद्य रसायनशास्त्री पं शीतलप्रसाद जी जिनका ३ सितम्बर ईसवी १९३० को स्वर्गवास हुआ।

मुख्तार जी की दृष्टि में वे एक कुशल चिकित्सक सत्परामर्शक थे। उनके वियोग से निःसन्देह, जैन समाज को ही नहीं, किन्तु मानव समाज को एक बहुत बड़ी हानि पहुँची है। उन्होंने कतिपय रोगियों को जिन्हें डॉक्टरों ने ऑपरेशन आवश्यक बताया था, बिना किसी ऑपरेशन के अच्छा स्वस्थ कर डॉक्टरों को चकित कर दिया था।

आप धार्मिक संस्थाओं को दान भी करते थे। समन्तभद्र आश्रम को आपने १०१ रुपयों और अपनी पुत्रवधू की ओर से ५० रुपये की सहायता प्रदान की थी।

वे विद्वानो से मिलकर प्रसन्न होते थे। जैन शास्त्रों का आपने बहुत अध्ययन किया था और उनके आधार पर आप "अर्हत्प्रवचन वस्तुकोश" तैयार कर रहे थे। इसी बीच बायीं हथेली में फोड़ा हुआ और उसी की चिकित्सा मे उनके प्राण पखेरू उड़ गये। मुख्तार जी ने सहानुभूति और सवेदना प्रकट करते हुए लिखा है कि वैद्य जी को परलोक में सुख-शान्ति प्राप्त होवे। यह निबन्ध युगवीर निबन्धावली में पृष्ठ ६६१-६६२ पर प्रकाशित हुआ है।

दूसरा निबन्ध है - 'ईसरी के सन्त'। युगवीर निबन्धावली पृष्ठ ६६३-६६४ में इस सन्त का नाम श्रीमान् गणेशप्रसाद वर्णी लिखा गया है। इस सन्त के सन्दर्भ में भी मुख्तार जी लिखते हैं - "वर्णी जी के ईसरी-निवास से ईसरी एक तीर्थस्थान के समान बना हुआ है। उनका आध्यात्मिक प्रवचन बड़ा ही धार्मिक और प्रभावक होता है। उनमें कषायो की मदता, हृदय की उदारता, समता, भद्रता, निर्वेदता, दयालुता आदि गुण अच्छे विकास को प्राप्त हुए हैं। बाह्य में मुनि न होते हुए भी आप भाव से मुनि हैं अथवा चेलोपसृष्ट मुनि के

समान हैं। मुनिवेष को धारणकर उसे लजाना उन्हें इष्ट नहीं। अनगारी बनकर मंदिर-मकानों में निवास करना भी उन्हें पसंद नहीं।"उनके प्रवचन सुनकर जनता आत्मविभोर हो जाती है। मुमुक्षु जन दूर देशों से प्रवचन सुनने आते हैं। सुनने से तृप्ति नहीं होती तो घर पहुँचकर उन्हें पत्र लिखते हैं।

मुख्तार जी की इस संत के प्रति हार्दिक भावना रही है कि आपको अपने ध्येय में शीघ्र सफलता की प्राप्ति होवे और आप अपनी आत्मसिद्धि करते हुए दूसरों की आत्मसाधना में सब प्रकार से सहायक बनें। निःसन्देह पूज्य वर्णी जी इस बीसवीं शताब्दी के अद्वितीय सन्त थे।

तीसरा निबन्ध है - 'शाह जवाहरलाल और जैन ज्योतिष'

श्री शाह प्रतापगढ़ के वैद्य थे। आपके पत्रों से मुख्तार जी ने इन्हें विनम्र और निरभिमानी बताया है। अपनी त्रुटियों को समझना, भूल को सहर्ष स्वीकार करना और भूल बतलाने वाले के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना - जैसे आप में उदार गुण रहे हैं। परोपकार और साहित्यसेवा की आप में लगन थी।

जैन ज्योतिष के क्षेत्र में त्रैलोक्य प्रकाश की भाषा वचनिका लिखी है, भद्रबाहु निमित्त शास्त्र के कुछ अध्यायों का अनुवाद और लोक विजययंत्र की टीका भी की थी। हुंवड जाति के महाजन होकर उन्होंने जो साहित्य सेवा की है मुख्तार जी ने उसके प्रति शुभ भावना व्यक्त की है।

हेमचन्द्र-स्मरण नामक चौथे निबंध में पं. नाथूलाल जी प्रेमी के पुत्र हेमचन्द्र का स्मरण किया गया है। उसे मुख्तार जी बहुत चाहते थे। उसके बचपन की एक घटना का भी निबंध में उल्लेख हुआ है। हेम के चाचा लालटेन की चिमनी साफ कर रहे थे। चिमनी हाथ में चुभ गयी, वे सिसकने लगे। हेम ने यह घटना मुख्तार जी से निवेदित की। मुख्तार जी ने हेम के विनोदार्थ घटना की तुकबन्दी कर दी और कहा - अपनी चाची को जाकर सुनाना -

काका तो चिमनी से डरत फिरत हैं,
काट लिया चिमनी ने 'सी-सी' करत हैं।

अब नहिं छुएँगे ऐसो वे कहत हैं।
देखो जी काकी यह वीर बनत हैं॥

हेमचन्द्र ने योग का अभ्यास किया था। उसकी इच्छा स्वय निर्विकार रहकर सहधर्मिणी को भी निर्विकार बनाकर योगमार्ग में दीक्षित करने की रही। विवाह के पूर्व हेम और प्रेमी जी के बीच कुछ आन्तरिक विरोध रहा, किन्तु विवाह के बाद ऐसा कुछ नहीं रहा। प्रेमी जी का पिछला जीवन निराकुल और सुखमय हो चला था, परन्तु दुर्दैव से वह नहीं देखा गया और उसने उनके अधखिले पुष्पसम इकलौते पुत्र को अकाल में ही उठा लिया। सद्‌मत हेमचन्द्र के लिए मुख्तार जी ने हार्दिक भावना भायी है कि उसे परलोक मे सुख-शान्ति की प्राप्त होवे। उसकी सहधर्मिणी तथा बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बने।

इस लेख मे यह बात भी अभिव्यक्त हुई है कि प्रेमी जी चाहते थे कि उनका पुत्र हेम दुकान सम्भाले, जबकि हेम ऐसा नहीं करना चाहता था। वह स्वाभिमानी था। मुख्तार जी ने यह सब ज्ञात कर प्रेमी जी को परामर्श देते हुए कहा था प्रेमी जी। ''प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्'' नीति के अनुसार पुत्र से व्यवहार किया कीजिए। प्रेमी जी पर मुख्तार जी के इस कथन का अच्छा प्रभाव पडा। वे नीति के अनुसार व्यवहार करने लगे और हेम भी उन्हे अच्छा सहयोग करने लगा। इस प्रकार सन्मार्ग दर्शाने में भी मुख्तार जी की अनूठी सूझ रही है।

पाँचवा निबन्ध है 'कर्मठ विद्वान् - ब्र. विमलप्रसाद जी'।

इस निबन्ध मे मुख्तार जी ने ब्र शीतल प्रसाद को कर्मठ विद्वान् की सज्ञा दी है। उनकी दृष्टि मे ब्रह्मचारी जी जैनधर्म और जैन समाज के प्रगाढ प्रेमी थे। उनकी उसके उत्थान की चिन्ता और लगन सराहनीय थी। वे महान सहनशील भी थे। उन्होने मुख्तार जी के विरोधी लेख लिखने पर भी कभी परस्पर मे मनोमालिन्य तथा व्यक्तिगत द्वेष को स्थान नहीं दिया। मुख्तार जी ने लिखा है कि वे विरोधों, कटु-आलोचनाओं, वाक् प्रहारो और उपसर्गों तक को खुशी से सह लिया करते थे और उनकी वजह से अपने कार्यों में बाधा अथवा विरक्ति का भाव नहीं आने देते थे। एक गुण और धुन के कारण,

जिसका एक समाजसेवी में होना आवश्यक है, वे मरते दम तक समाज की सेवा करने में समर्थ हो सके। ऐसे परोपकारी समाजसेवी का समाज जितना गुणगान करे और आभार प्रकट करे, वह सब थोड़ा है। उनकी याद में कोई अच्छा स्मारक बनाया जाना चाहिये था – ऐसा मुख्तार जी सोचते थे।

छठे निबन्ध में राजगृह के वीरशासन महोत्सव की झाँकी प्रस्तुत की गयी है। कहा गया है कि इस महोत्सव का सम्पूर्ण खर्च बाबू छोटेलाल जी जैन रईस कलकत्ता वालों ने वहन किया था। विपुलाचल पर्वत पर आयोजित इस महोत्सव के प्रति समाज का अच्छा उत्साह था। 'ऊँचा झंडा जिन शासन का, परम अहिंसा दिग्दर्शन का' – इस गायन के साथ इस महोत्सव के झंडाभिवादन की रस्म पं कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने पूर्ण की थी। पंडिता चंदाबाई, प फूलचन्द्र जी, प दरवारीलाल जी कोठिया, पं परमानन्द शास्त्री आदि उस महोत्सव में ग्यारह विद्वान आये थे। यहाँ सम्पन्न हुई पूजा को सुनकर श्रोताओं ने कहा था कि पूजा पढी जाय तो इसी तरह पढ़ी जाय।

सातवें निबन्ध में १ अक्टूबर से ४ नवम्बर तक कलकत्ते में आयोजित वीरशासन के सार्धद्वयसहस्राब्दि महोत्सव का वर्णन है। मुख्तार जी ने लिखा है - कलकत्ते में इसके पूर्व ऐसा महोत्सव नहीं हुआ। जुलूस १११ मील लम्बा था। लाखों जनता थी। झण्डाभिवादन सर सेठ हुकमचन्द्रजी ने किया था। वीरशासन के प्रचार तथा शोध-खोज के लिए सबसे बड़ी राशि ७१ हजार की सेठ बलदेवदास जी ने और ५१-५१ हजार की राशि क्रमश: बाबू छोटेलाल जी, साहू शान्तिप्रसाद जी और सेठ दयाराम जी पोतदार ने दी थी। बाबू छोटेलाल जी ने तो वीर शासन के लिए अपना जीवन समर्पित किया था, जिसकी तुलना में लाखों-करोड़ों का दान भी कोई चीज नहीं है। उनका जितना आभार माना जाय और धन्यवाद दिया जाय, वह सब थोड़ा है। इस महोत्सव में देश के अनेक बड़े विद्वान पधारे थे। इन निबन्धों में मुख्तार जी ने तत्कालीन सामाजिक धार्मिक-स्नेह दर्शाया है।

"श्री दादी जी" नामक आठवें निबन्ध में मुख्तार जी ने अपने पिता की मामी का स्मरण किया है। वे नानौता (सहारनपुर) के रईस स्व. लाला सुन्दर लाल जी की धर्मपत्नी थी। मुख्तार जी के अनुसार विवाह के बाद वे

जैनधर्म में ऐसी परिणत हो गयी थीं, जैसी कि पंडिता चंदाबाई जी आरा। कोई भी अतिथि घर आया, उन्होंने उसे सादर भोज किये बिना नहीं जाने दिया। शरीर पर झुर्रियाँ पड जाने पर भी उनके सिर का एक भी बाल सफेद नहीं हुआ था। ४५ वें वर्ष मे आप विधवा हुई। छः वर्ष बाद इकलौता पुत्र प्रभुदयाल भी चल बसा। पुत्री गुणमाला को भी वैधव्य प्राप्त हुआ। पुत्रवधू भी अपनी पुत्री जयन्ती को छोड़ चल बसी थी। इतनी विपदाओं के होने पर भी दादी ने कर्त्तव्य से मुख नहीं मोड़ा। पुत्री गुणमाला और पोती जयन्ती को आरा में पढाया। जयन्ती का त्रिलोकचन्द्र बी ए के साथ विवाह भी किया। दादी ने अपना सब कुछ त्रिलोकचद को सौंपकर धर्मध्यान करने का विचार किया कि छह वर्ष बाद त्रिलोकचंद का अचानक स्वर्गवास हो गया। दादी निराश फिर भी न हुई। सकटो में रहकर भी उन्होने धैर्य नहीं छोडा। मुख्तार जी का उन्होंने माता के समान सदा ध्यान रखा। आयु के अन्त में ७ जून १९४५ को ११ बजे दिन मे समाधिपूर्वक उन्होंने नश्वर शरीर त्याग कर स्वर्ग सिधार गईं।

मुख्तार जी ने लिखा है – दादी जी जैन समाज की एक धर्मपरायणा वीरागना थीं। कष्टों को धैर्य के साथ सहन करती हुई कर्त्तव्यपालन में निपुण थीं। उनका हृदय उदार था। अतिथि-सत्कार सराहनीय था। अपना दु:ख वे व्यक्त नहीं करती थीं। शाति पूर्वक सहती थीं। आशा, तृष्णा और मोह पर आपको विजय प्राप्त थी। वे निस्पृह हो गयी थीं। आपने मरण के पूर्व दान का सकल्प कर लिया था। आपने सब ओर से अपनी चित्तवृत्ति को हटा लिया था। देह त्याग के समय आपकी अवस्था ८६-८७ वर्ष की थी।

नौवे निबन्ध का शीर्षक है "जैन जाति का सूर्य अस्त"। इस निबंध मे सहारनपुर के बाबू सूरजभान वकील को मुख्तार जी ने जैन जाति का सूर्य कहा है। वे अन्धकार से लड़ते रहे। उन्होंने सदा समाज-सुधार के बीज बोये। इसके लिए जैन हित उपदेशक मासिक पत्र भी वे निकालते रहे। जैन ग्रंथों के प्रकाशन का गुरुतर कार्य आपने जान हथेली पर रखकर किया था। ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर की आपने सेवा की थी। सैकड़ों लेख लिखे। 77 वर्ष में 16 सितम्बर 1945 को उनकी इहलीला समाप्त हुई। समाज का कर्त्तव्य है कि उनका कोई अच्छा स्मारक खड़ा करें।

दसवाँ निबन्ध है - अभिनन्दनीय नाथूराम जी प्रेमी।

इस निबन्ध में मुख्तार जी ने प्रेमी जी को देश और समाज की सेवाओं के लिए अभिनन्दन के योग्य बताया है। उन्होंने प्रेमी जी के लिए यह भी लिखा है कि वे इस अभिनन्दन को पाकर कोई बड़े नहीं हो जावेंगे - वे तो स्वतः बड़े हैं - परन्तु समाज और हिन्दी जगत उनकी सेवाओं के ऋण से कुछ उऋण होकर ऊँचा जरूर उठ जायगा। प्रेमी जी का वास्तविक अभिनन्दन तो उनकी सेवाओं का अनुसरण है। उनकी निर्दोष कार्य पद्धति को अपनाना है और उन गुणों को अपने में स्थान देना है जिनके कारण वे अभिनन्दनीय बने हैं।

मुख्तार जी और प्रेमी जी के घनिष्ठ सम्बन्ध रहे। लगभग ७०० पत्रों का परस्पर में आदान-प्रदान हुआ। प्रेमी जी ने अपने पुत्र हेमचन्द्र की शिक्षा का भार मुख्तार जी पर ही डाला था। मुख्तार जी ने लिखा है कि प्रेमी जी प्रेम और सौजन्यता की मूर्ति हैं। उनका 'प्रेमी' उपनाम बिलकुल सार्थक है। वे सरल और निष्कपट हैं। उनका आतिथ्य सत्कार सदा ही सराहनीय रहा है। उनका हृदय परोपकार और सहयोग की भावना से पूर्ण जान पड़ा है। उन्होंने समाज की ठोस सेवाएँ की हैं। वे अपने ही पुरुषार्थ तथा ईमानदारी के साथ किए गये परिश्रम के बल पर इतने बड़े बने हैं।

ग्यारहवें निबन्ध का शीर्षक है - अमर पंडित टोडरमल जी।

मुख्तार जी ने टोडरमल जी को अमर पंडित कहा है। उनके व्यक्तित्व के संबंध में मुख्तार जी ने लिखा है कि वे भोगों में बहुत कम योग देते थे। भोगों के सुलभ होते हुए भी उनमें उनकी विशेष प्रवृत्ति नहीं थी। वे गृहस्थ होते हुए भी जल में कमल की तरह उससे भिन्न थे। उनका मोक्षमार्ग प्रकाशक एक बड़ा ही बेजोड़ ग्रन्थ है। इससे उनके अनुभव की गहनता, मर्मज्ञता तथा निर्भीक आलोचना का भी पता चलता है। उन्होंने मिथ्यादृष्टि एवं ढोंगी जैनियों की खूब खबर ली है। शंका-समाधान द्वारा बड़ी-बड़ी उलझनों को सुलझाया है। गोम्मटसार के अध्ययन-अध्यापन के प्रचार का श्रेय आपकी हिन्दी टीका को ही प्राप्त है। आपने अपनी कृतियों और प्रवृत्तियों के द्वारा जहाँ

जैन समाज को अपना चिर ऋणी बनाया है, वहाँ विद्वानों के सामने एक अच्छा अनुकरणीय आदर्श भी उपस्थित किया है। जैनधर्म और जैन साहित्य की सेवा के लिए जो कि वस्तुत: विश्व की सेवा है, टोडरमल जी के जीवन से शिक्षा ग्रहण कर उनके पथ का अनुकरण करते हुए अपने को उत्सर्ग कर दे तो हम टोडरमल जी के ऋण से उऋण हो सकते हैं।

बारहवे निबध का शीर्षक है - 'सन्मति विद्या-विनोद'।

मुख्तार जी की दो बेटियाँ थीं - सन्मति कुमारी और विद्यावती। इन दोनो की स्मृति मे मुख्तारजी ने एक बाल ग्रथालय की स्थापना की थी जिसे उन्होंने 'सन्मति विद्या-विनोद' नाम दिया था। यही नाम इस निबन्ध का रखकर उन्होने इसमें लिखा है कि कोई भी समाज अथवा देश जो उत्तम बाल-साहित्य न रखता हो, कभी भी प्रगति नही कर सकता। अच्छे-बुरे संस्कारो का प्रधान आधार बाल साहित्य ही होता है।

मुख्तार जी की दृष्टि मे पुत्र और पुत्री दोनों समान थे। उन्होंने सन्मति पुत्री के जन्मोत्सव पर गाने के लिए बधाई गीत भी बनाया था जिसकी प्रथम पंक्ति थीं - "दे आशिष शिशु हो गुणधारी।" इसमें शिशु शब्द का प्रयोग इसीलिए किया गया था कि बधाई गीत पुत्र हो या पुत्री दोनों के जन्मोत्सव पर गाया जा सके। पुत्री का नाम आदिपुराण में वर्णित नामकरण संस्कार के अनुसार रखा था। सन्मति कुमारी में चार मुख्य गुण थे - सत्यवादिता, प्रसन्नता, निर्भयता और कार्यकुशलता। प्लेग हो जाने से इसे असमय में मरना पड़ा।

विद्यावती जब सवा तीन मास की थी तभी उसकी माँ मर गयी थी। बच्ची दूसरो को देने को कहा गया, किन्तु मुख्तार जी ने अन्यथा संस्कारों से बची रह सके - इस लक्ष्य से दूसरों को न देकर धाय को रखा और उसने उसका पालन लिया। विद्यावती ने धाय को कभी माँ कहकर नहीं पुकारा। सच बोलना, अपराध स्वीकार कर लेना इसके गुण थे। इसे ढाई वर्ष की उम्र में खसरा हुआ और उसी मे उसका मरण भी हो गया। मुख्तार जी को बच्चियों के गहने अपने उपयोग में लेना इष्ट नही रहा। उन्होंने गहनों से प्राप्त राशि से बच्चियों के नाम पर बाल ग्रंथालय की स्थापना की थी।

तेरहवाँ निबन्ध है - प चैनसुखदास जी का अभिनन्दन

मुख्तार जी ने प्रस्तुत निबन्ध में लिखा है कि संस्कृत पाठशाला को कॉलेज बना देने में पं चैनसुखदास जी के सद् प्रयत्न ही मूल हैं। वे कॉलेज के अध्यक्ष पद पर आसीन होते हुए भी कुली तक का काम करते थे। सरलता तो उनमें खूब थी, वे भद्र परिणामी, विद्याव्यसनी, सेवाभावी, सादा रहन-सहन के प्रेमी और सच्चरित्र थे। उनमें विचार सहिष्णुता भी थी। सच्चे सेवकों और उपकारियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना जीवित समाज का लक्षण है। पंडित जी ने जयपुर समाज के लिए बहुत कुछ किया है। वे सुलेखक होने के साथ-साथ निर्भीक समालोचक भी हैं। सबके काम आते हैं, सबसे प्रेम रखते हैं और प्राय: गम्भीर मुद्रा में रहते हैं।

चौदहवें निबन्ध का शीर्षक है - प सुखलाल जी का अभिनन्दन

इस लेख मे मुख्तार जी ने पं सुखलाल जी के अभिनन्दन के समाचार पाकर सम्मान निधि मे हर्ष स्वरूप १०० रुपये भेजने का भी उल्लेख किया है। इससे मुख्तार जी की गुणग्राहिता का अनुमान लगाया जा सकता है। मुख्तार जी की दृष्टि में प सुखलाल जी अपने व्यक्तित्व के एक ही व्यक्ति रहे हैं। उन्हें तलस्पर्शी ज्ञान रहा है। वाणी और लेखनी दोनों मार्गो से उन्होंने खुला वितरण किया है। वे उदारता, नम्रता, गुणग्राहिता एवं सेवाभाव जैसे सद्गुणों के सम्मिश्रण रहे हैं। अतिथि सत्कार उनका बेजोड़ रहा है। मुख्तार जी ने लिखा है कि उन्हें उनके यहाँ एक महिने से अधिक समय तक घर पर ठहरने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनका आतिथ्य पाकर मुख्तार जी ने ऐसा अनुभव किया था मानो वे अपने घर पर कुटुम्ब के मध्य रहे हैं।

पन्द्रहवें आचार्य तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ शीर्षक निबन्धमें आचार्य तुलसी का व्यक्तित्व दर्शाया गया है। मुख्तार जी ने लिखा है - "आचार्य तुलसी ने बड़ी योग्यता के साथ अपने पद का निर्वाह किया है। वे अनुकूल और प्रतिकूल आलोचनाओं पर हर्षित और क्षुभित न होकर कर्त्तव्य की ओर अग्रसर रहे। उन्होंने समदर्शित्व और सहनशीलता को अपनाया ज्ञान और चारित्र को उज्ज्वल तथा उन्नत बनाया। अणुव्रत आन्दोलन के द्वारा आगे बढ़ें हैं वे।"

सोलहवें ''प ठाकुरदास जी का वियोग'' शीर्षक निबन्ध में मुख्तार जी ने पंडित जी के व्यक्तित्व से परिचित कराया है। उन्होंने लिखा कि टीकमगढ़ निवासी पंडित ठाकुरदास जी बी. ए. का स्वर्गवास होने से निःसन्देह जैन समाज की बड़ी क्षति हुई है। वे संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के प्रौढ़ विद्वान तथा आध्यात्मिक रुचि के सत्पुरुष थे। श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी आपको आदर की दृष्टि से देखते थे। आपने समन्तभद्र के पाँचों मूल ग्रंथों का सम्पादन कर समन्तभारती नाम से रचना छपने हेतु नीरज जी को भेजी थी, ऐसा उनके एक पत्र से विदित हुआ है। साहू जी ने आपको रुग्णावस्था में आर्थिक सहयोग किया है जिससे उनके रोग का शमन हुआ। आपको पपौरा जी और उसके विद्यालय से बडा प्रेम था। उन्होंने मुख्तार जी को पपौरा आकर रहने की प्रेरणा की है - ऐसा इस निबन्ध से ज्ञात होता है। पंडित जी ने अन्तिम पत्र मे सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है। मुख्तार जी की भावना रही कि वे परलोक में सुख-शान्ति रखें।

अन्तिम सत्रहवे निबन्ध का शीर्षक है कि दुस्सह दुःखद वियोग। इस निबन्ध में २६ जनवरी १९६६ को हुए बाबू छोटेलाल जी के निधन से उत्पन्न दुःख के कारण मुख्तार जी ने लिखा है ''चित्त इतना अशान्त है कि कुछ करने-कराने को मन नहीं होता।'' उन्होंने बाबू छोटेलाल जी के व्यक्तित्व को भी उजागर किया है। प्रस्तुत निबन्ध में लिखा है कि वे वीर सेवा मंदिर के बडे हितैषी रहे। उन्होंने मुख्तार जी को लिखे एक पत्र में लिखा था-''मुझे अपने जीवन की चिन्ता नहीं है, किन्तु वीर सेवा मंदिर की बहुत चिन्ता है।'' मेरी प्रबल इच्छा है कि एक बार दिल्ली हो आऊँ। इस कथन से बाबू छोटेलालजी की इच्छा, स्थिति और बेबसी का अनुमान लगाया जा सकता है।

मुख्तार जी की दृष्टि में बाबू छोटेलाल जी समाज की एक बड़ी विभूति थे। निःस्वार्थ सेवाभावी थे, कर्मठ विद्वान थे, उदारचेता थे। वे प्रसिद्धि से दूर रहने वाले थे, अनेक संस्थाओ को स्वयं दान देते तथा दूसरों से दिलाते थे। वीर सेवा मंदिर के तो आप एक प्राण ही थे। आपके इस दुस्सह एवं दुःखद वियोग से उसे भारी क्षति पहुँची है, जिसकी निकट भविष्य में पूर्ति होना कठिन है। मुख्तार जी ने अपनी हार्दिक भावना व्यक्त की है कि सद्गत

आत्मा को परलोक में सुख-शान्ति की प्राप्ति होवे और कुटुम्बीजन को धैर्य मिले।

इस प्रकार निबन्धों में उल्लिखित व्यक्तियों के व्यक्तित्व से मुख्तार जी के व्यक्तित्व का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। मुख्तार जी आदर्श व्यक्तियों के स्नेही रहे हैं। यह स्नेह इस तथ्य का प्रमाण है कि मुख्तार जी का आदर्श जीवन रहा है। वे निबन्धों में दर्शाये गये महान व्यक्तियों के सम्पर्क में रहे। उनसे उन्होंने महानता ग्रहण की। जैन धर्म, जैन साहित्य तथा जैन साहित्यकारों के प्रति मुख्तारजी का समर्पण भाव था। वे सेवाभावी थे, स्वयं सेवा करते और आवश्यकता पड़ने पर दूसरों से सेवा करने के लिए आग्रह करने में संकोच नहीं करते थे। बाल विकास के हितैषी थे। अपनी पुत्रियों के जेवर से सन्मति-विद्या-विनोद बाल संस्था की स्थापना करना उनके इस स्नेह का परिचायक है। वर्णी जी के भक्त रहे हैं। विद्वानों का सम्पर्क उनकी गुणग्राहिता का प्रतीक है। उनका ऐसा महान प्रभावशाली व्यक्तित्व था जिससे कि ब्र शीतलप्रसाद, पं प्रेमी जी, पं. चैनसुखदास जी, पं सुखलाल जी, आचार्य तुलसी, बाबू छोटेलाल जी जैसी देश की महान विभूतियाँ प्रभावित हुए बिना न रह सकीं।

विनोद शिक्षात्मक निबंधों की समीक्षा

निर्मल कुमार जैन जैनदर्शनाचार्य, जयपुर

सरसावा की पवित्र भूमि में जन्मे पं श्री जुगलकिशोर जी 'मुख्तार' बाल्यावस्था से ही विचक्षण बुद्धि और तर्कणाशक्ति से सम्पन्न, सरस्वती पुत्र थे। आपने समाज व राष्ट्र की विकृत दशा को देखकर राष्ट्रीय/सामाजिक/दार्शनिक निबंध लिखकर राष्ट्र के लिए चिन्तन का मार्ग प्रशस्त किया।

परतन्त्र भारत की दुदर्शा देखकर आपके मन में उत्पन्न विचारों को श्री पं जुगलकिशोर जी 'मुख्तार' युगवीर कृतित्व और व्यक्तित्व पृ. 10 पर देखे जा सकते हैं।

''भारत के दुर्भाग्य के कारण अविद्या, असंगठन और मान्य आचार्यो के विचारो के प्रति उपेक्षा भाव है। जब तक इन मूलकारणों का विनाश नहीं होता, तब तक देश न तो स्वतन्त्र्य प्राप्त कर सकेगा और न ज्ञान-विज्ञान में प्रगति ही कर सकेगा। एक युग था, जब भारत जगत का गुरु था,पर अविद्या और असगठन के कारण आज यह पद दलित है, लांछित है और सर्वत्र अपमानित है। अतएव युवकों को सगठित होकर देशोत्थान के लिए कृत सकल्प होना चाहिए।''

युगवीर निबधावली द्वितीय खण्ड के चतुर्थ विभाग में पण्डित श्री जुगलकिशोर 'मुख्तार' जी ने विनोद शिक्षात्मक सात निबंध लिखे हैं जो कि हास्य-व्यग्य के माध्यम से सामाजिक परिवेश एवं नैतिक व अनेकान्त पूर्ण शिक्षा प्रदान करते हैं। लोकोक्तियों को माध्यम बनाकर स्वयं श्लोक बद्धकरके तर्क पूर्ण शिक्षा प्रदान की है। हृदय की विशालता व साम्यदृष्टि की महिमा, जिनायतनों के चमत्कार, जिनदर्शन की उत्कृष्टता सतोष परमसुख तक ले जाने का माध्यम है, विवेकपूर्ण निबंध का स्वरूप देकर पं जी ने सामाजिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर आचार-विचार की सर्वश्रेष्ठता को निबद्ध किया है।

'मुख्तार' जी द्वारा लिखित "मैं और आप दोनों लोकनाथ।" निबंध में समानता के भाव को प्रदर्शित किया है। लौकिक ज्ञान की महिमा भी प्रगट की है। एक भिक्षुक राजा से कहता है कि "अहं च त्वं च राजेन्द्र लोकनाथावुभावपि।" अर्थात् हे राजन्! मैं और आप दोनों ही लोकनाथ हैं।

राजा समझ नहीं पाता, अतः क्रोधित होता, परन्तु भिक्षुक से सिद्ध करने के लिए कहता। तब वह भिक्षुक विनय-वचनादि द्वारा सामाजिक दृष्टि से सिद्ध करता है जो कि युगवीर निबंध पृ. 757 पर दृष्टव्य है -

"बहुव्रीहिरहं राजन् षष्टी तत्पुरुषो भवान्।"

अर्थात् राजन् बहुव्रीहि समास से 'मैं' और षष्ठी तत्पुरुष से 'आप' लोकनाथ सिद्ध होते हैं।

"लोकाजना नाथाः स्वामिनो यस्यैवंविधोऽहं याचकत्वात्।"

याचक या भिखारी होने के कारण सब लोग जिसके नाथ हैं ऐसा 'मैं' लोकनाथ हूँ।

"लोकानां जनानां नाथ एवं विधस्त्वं राजत्वेन पालकत्वात्।"

राजा होकर मनुयों की रक्षा व पालन करने के कारण लोगों के जो नाथ है सो ऐसे 'आप' लोकनाथ हैं। इस प्रकार तर्कपूर्ण सामासिक ज्ञान से अज्ञ राजा बड़ा लज्जित हुआ परन्तु पं. जी यहाँ विशाल हृदय व समानता की दृष्टि को बताते हैं। जैसा कि 'मेरी भावना' पद्य 3 में दृष्टिगोचर होता है-

मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे,
दीन-दुःखी जीवों पर मेरे उर से करूणा स्रोत बहे।
दुर्जन-क्रूर कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे॥

यही दृष्टि जैनदर्शन की वीतराग दशा का वर्णन करती है। जो कि समभाव से परिपूर्ण समाज कल्याण और राष्ट्रोत्थान में सहायक सिद्ध होती है। क्योंकि इसमें विद्वेष नहीं प्रेम समाहित है। महावीर स्वामी के सिद्धान्त को भी जो पूर्ण से हृदयंगम किए हैं "पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।"

"धीमान् और श्रीमान् की बातचीत" नामक द्वितीय निबंध बहुत ही समसामयिक है, क्योंकि व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा और नामवरी के लिए जिनालयों का निर्माण तो करवा लेते हैं परन्तु स्वयं पूजा/अभिषेक/भक्ति नहीं करते बल्कि मासिक वेतन भोगी पुजारी या या नौकर रख लेते हैं। इन्हीं बातों का उल्लेख पं. जी ने उस निबंध में किया है। जिनेन्द्र भगवान की पूजा/भक्ति सौधर्मइन्द्र करता है जो एक भवावतारी होता है। अतः हमें स्वयं अपने कल्याणार्थ पूजन भक्ति करनी चाहिए। पं. जी की पंक्तियाँ युगवीर निबंधावली पृ 760 दृष्टव्य हैं -

"यह लज्जा की बात नहीं है कि जिन भगवन्तों की पूजा को इन्द्र/अहमिन्द्र/चक्रवर्त्यादिक राजा बड़े उत्साह के साथ करते हैं, आप उसको स्वयं न करके नौकर से कराना चाहते हैं।"

और आगे कहते हैं कि -

"भगवत् (पचपरमेष्ठी) की पूजा और भक्ति वह उत्तम वस्तु है, कि इस ही के प्रभाव से प्रथम स्वर्ग का इन्द्र कुछ भी तप-संयम और नियम न करते हुए भी एक भवधारी हो जाता है। अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करता है।"

अतः स्पष्ट हो जाता है कि जिन भगवन्तों की पूजा/भक्ति स्वयं उत्साह व लगन के साथ करनी चाहिए ताकि स्वयं कल्याण प्राप्तकर सके। बनारसीदास जी भी 'सूक्ति मुक्तवली के पद्यानुवाद पृ. 5 पर जिन पूजन की महिमा का वर्णन करते हैं -

देव लोक ताको घर आँगन, राजरिद्ध सेवै तसु पाय,
ताके तन सौभाग आदि गुन, केलि विलास करैं नित आय।
सो नर तुरत तरै भवसागर,निर्मल होय मोक्ष पद पाय,
द्रव्यभाव विधि सहित 'बनारसी'' जो जिनवर पूजै मन लाय।

अतः पूजन/भक्ति स्वयं करने से पुण्य बंध होता है और अन्य को प्रेरणा मिलती है। सुख, समृद्धि और सौभाग्य की प्राप्ति होती है। आचार्य सोमप्रभ स्वामी सूक्तिमुक्तावली में जिनपूजन महिमा के वर्णन में लिखते हैं -

पापं लुम्पति दुर्गतिं दलयति व्यापादयस्यापदं,
पुण्यं सञ्चिनुते श्रियं वितनुते पुष्णाति नीरोगताम्।
सौभाग्यं विदधाति पल्लवयति प्रीतिं प्रसूते यशः,
स्वर्गं यच्छति निर्वृतिं च रचयत्यर्चाऽर्हतां निर्मिता॥

अतएव शिथिलाचार व प्रमाद को त्यागकर जिनपूजन/भक्ति को करना चाहिए। ताकि धर्म दिखावे का नहीं रह जाए और धर्म का लोप भी नहीं हो जाये। आगे इसी निबध में पृ 761 पर पंडित जी लिखते हैं -

"यदि आप नौकरों से पूजन कराते रहे और कुछ दिन तक यही शिथिलाचार और जारी रहेगा तो याद रखिये, कि वह दिन भी निकट आ जायेगा, जब दर्शन और सामायिक आदि के लिए भी नौकर रखने की जरूरत होने लगेगी और धर्म का बिलकुल लोप हो जायेगा।" फिर इस कलंक और अपराध का भार आप ही जैसे श्रीमानों की गर्दन पर होगा।

यह निबंध वर्तमान में धर्म को सुरक्षित रखने व भविष्य स्वयं को सुखी बनाने की महती शिक्षा प्रदान कर कर्त्तव्य बोध का पाठ पढ़ाता है।

तृतीय निबंध में 'मुख्तार' जी ने युक्ति को माध्यम बनाकर समाज के लिए शिक्षा प्रदान की है, क्योंकि एकांतरूप से विचार करने वाले व्यक्ति मन्दिर जाने के लिए "अतिपरिचयादवज्ञा" की मुक्ति को प्रदर्शित करते हैं, और कहते हैं कि मन्दिर जाने से अधिक परिचय होने पर जिन चैत्य की अवज्ञा होती है। जैसा कि युगवीर निबंधावली पृ. 762 दृष्टव्य है -

अतिपरिचयादवज्ञा संततगमनादनादरो भवति।
लोकः प्रयागवासी कूपे स्नानं समाचरति॥

जिसके पास निरन्तर जाना रहता है उसके प्रति हृदय में से आदर भाव निकल जाता है, जैसे कि प्रयाग निवासी मनुष्यों को गंगा और यमुना का अति परिचय होने और उसमें निरन्तर स्नान के लिए जाने से अब उन लोगों के हृदय में से उस तीर्थ का आदर-भाव निकल गया और अब वे नित्य कुएँ पर स्नान करने लगे हैं। इसी प्रकार नित्य मंदिर जाने से भगवान की अवज्ञा और अनादर

हो जावेगा, इसी से मैं नहीं जाता हूँ। परन्तु अनेकान्त रूप से विचार करने पर यह तर्क/कथन व्यभिचारी ठहरता है। पं जी आगे लिखते हैं -

अतिपरिचयादवज्ञा इति यद्वाक्यमृषैव तद्भाति।
अतिपरिचितेऽप्यनादौ संसारेऽस्मिन न जायतेऽवज्ञा॥

"अनादिकाल से जिसका परिचय है ऐसे संसार से किसी भी संसारी की अवज्ञा नहीं है, संसार इस विषयभोग तथा रागादि भावों से मुख नहीं मोड़ता है और न उनकी कुछ अवज्ञा करता है, बल्कि संसारी जीव उल्टा उनके लिए उत्सुक और उनकी प्रीप्ति/पुष्टि में अनेक प्रकार से दत्तचित्त बना रहता है।" इसलिए "अतिपरिचयादवज्ञा" ऐसा सिद्धान्त/तर्क व्यभिचारी व मिथ्या सिद्ध होता है।

अत: यह निबध वास्तविक रूप से "अतिपरिचयादवज्ञा" के सिद्धान्त को लेकर भटकते युवा मन में शिक्षा का संचार कर समाज व युवावर्ग के लिए प्रेरणास्पद है।

"माँस भक्षण में विचित्र हेतु" नामक निबन्ध में पं श्री जुगलकिशोर जी ने मांसाहारी व्यक्तियों के लिए श्रेष्ठ और अनुपम तर्क प्रस्तुत किया है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी के पुरुषार्थ सिद्धुपाय ग्रन्थ के आधार पर स्वयं श्लोकों का सृजन करके तर्क प्रस्तुत किया है। यह उनकी बुद्धि कौशल और तर्कपूर्ण शिक्षा को उजागर करता है। एकान्त रूप से मांसाहारी तर्क देते हैं, जो युगवीर निबंधावली पृ 764 पर दृष्टप्य है -

माँसस्य मरणं नास्ति,नास्ति मांसस्य वेदना।
वेदनामरणाभावात्, को दोषों मांस-भक्षणे॥

मास का मरण नहीं होता, न ही मांस में वेदना होती है इसलिए वेदनामरण के अभाव से मांस में दोष नहीं है अतएव खा लेना चाहिए। ऐसी विचित्र बात को सुनकर सभी हतप्रभ रह जाते और मांस खाने लगते। जबकि जैन ग्रन्थों व हिन्दू वेद पुराणों में मास का निषेध सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। 'अहिंसा का शंखनाद' पृ. 10 पर कवि सरमनलाल 'सरस' कहते हैं कि -

शूर नहीं वह अधम नीच है पापी से पापी है।
जिसने पर जीवों की कीमत निज से ना आँकी है॥
हिंसक बनकर कभी किसी का, होता बेड़ा पार नहीं।
किया प्रकृति ने शाकाहारी, नर का मांस अहार नहीं॥

वही पंडित जी तर्कपूर्ण शिक्षा प्रदान करते हुए आगे लिखते हैं -

गूथस्य मरणं नास्ति, नास्ति गूथस्य वेदना।
वेदनामरणभावात् को दोषो गूथभक्षणे॥

अर्थात् जिस हेतु से आप मांस भक्षण को निर्दोष सिद्ध करते हैं आपके उसी हेतु से विष्ठा भक्षण भी निर्दोष सिद्ध हो जाता है, क्योंकि विष्ठा का न मरण होता है न ही वेदना, अत: सदोषपना नहीं ठहरता। एक को सदोष और दूसरे को निर्दोष मानने से आपका हेतु (वेदना मरणाभावात्) व्यभिचारी ठहरता है और उससे कदापि साध्य की सिद्धि नहीं हो सकती।

अतएव मास में त्रस/स्थावर जीवों की निरन्तर उत्पत्ति होती रहती है मांस खाने से उनका घात होने के कारण हिंसा का प्रादुर्भाव होता है और व्यक्ति के आचार-विचार में विकार उत्पन्न होता है इसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति क्रूर, निर्दयी, निर्लज्ज हो जाता है। मानव में दया/ममता/करुणा विद्यमान होने से वह मानवतापूर्ण प्राणी है, जो शाकाहार से परिपूर्ण है, अत: शांति और धर्म की प्रभावना मानवता से परिपूर्ण मानव ही कर सकता है। कवि अपनी भावना व्यक्त कर रहा है -

पशुओं को हम काट रहे हैं, बुझा दीप सुख-शांति वाला।
धर्म भटकता घूम रहा है, किसको पहनाएँ वरमाला॥

पंचम निबंध "पाप का बाप" में मुख्तार जी ने लोभ व लोभी की दुर्दशा एवं स्वार्थ की पराकाष्ठा का वर्णन किया है। यह चिरपरिचित दृष्टांत है, लेकिन पं. जी ने इसके माध्यम से समाज में फैली कुरीतियों पर प्रहार किया है। मिलावट/रिश्वत/दुराचार/दहेज जैसी अनेक कुरीतियाँ हैं। ये सब पाप के अन्तर्गत आती है। जैनाचार्य कहते हैं कि "वैयक्तिक संदर्भ में जो

आत्मा को बंधन में डाले, जिसके कारण आत्मा का पतन हो, जो आत्मा के आनंद का शोषण करे और आत्म शक्तियों का क्षय करे वह पाप है, पं. मुख्तार जी के ही शब्दों में यु वी निबंधावली पृ 773 पर दृष्टव्य है -

"बहुत से दुष्टों ने इस लोभ ही के कारण अपने माता-पिता और सहोदर तक को मार डाला है। कन्याविक्रय की भयंकर प्रथा इस देश में प्रचलित है।''''

आचार्य विद्यासागर महाराज मूकमाटी महाकाव्य पृ. 386 में कन्याविक्रय की प्रथा पर खेद व्यक्त करते हैं-

खेद है कि
लोभी पापी मानव
पाणिग्रहण को भी
प्राण ग्रहण का रूप देते हैं।

एक नीतिकार तो देश व देशवासियों को धिक् शब्द का प्रयोग कर चिन्तित होता है -

धिक्कार योग्य यह देश जहाँ,
मानव पशुता पर तुला हुआ।
लड़के-लड़की के विक्रय का,
बाजार जहाँ पर खुला हुआ।

ऐसी विषम स्थिति अभी भी बनी हुई है जिसमें लोभ की पराकाष्टा झलकती है।

पं. जी आगे इसी निबंध मे लोभ के वशीभूत मानवों की दृष्टि को उजागर करते हुए उस समस्त सद्विद्याओं के ह्रास का कारण मानते हैं, जो दृष्टव्य है -

"जो भारत अपने आचार-विचार में, अपनी विद्या चतुराई और कला-कौशल में तथा अपनी न्याय परायणता और सूक्ष्म अमूर्तिक पदार्थों तक की

खोज करने में दूर तक विख्यात था और अन्य देशों के लिए आदर्श स्वरूप था, वह आज लोभ के वशीभूत होकर दुराचारों और कुकर्मों की रंगभूमि बना हुआ है। सारी सद्विद्यायें इससे रूठ गई हैं और यह अपनी सारी गुण गरिमा तथा प्रभा को खोकर निस्तेज हो बैठा है।"

(पंडित जी के ही शब्दों में वही पृ. 774 पर देखें -)

"जब तक हमारे भारतवासी इस लोभ कषाय को कम करके अपनी अन्याय रूप प्रवृत्ति को नहीं रोकेंगे, जब तक स्वार्थ त्यागी बनना नहीं सीखेंगे, तब तक वे कदापि अपने देश तथा समाज का सुधार नहीं कर सकते हैं और न ससार सुख का अनुभव कर सकते हैं। क्योंकि सुख नाम निराकुलता का है और निराकुलता आवश्यकताओं को घटाकर परिग्रह को कम करके संतोष धारण करने से प्राप्त होती है।"

इस प्रकार लोभ न्याय नीति की विराधना करने का कारण और संतोष परमसुख को प्राप्त कराने का कारण है।

छठे निबंध विवेक की आँख में पं. जी ने समाज के कर्णधारों की विवेक परख पर व्यंग्यात्मक शिक्षा प्रदान की है। धर्म-सिद्धान्त का जानकार विद्वानों का निरादर कर नौटंकी/नाच पर प्रसन्न हो, पैसा बहाता है। यही बात पं. जी ने इस निबंध के माध्यम से कही है। उन्हीं की पंक्तियों में जो यु. नि. पृ. 778 पर है-

"वेश्या के हावभाव को निरखकर सब लोग बड़े लट्टू हो रहे है और अपनी मस्ती में इस बात को बिल्कुल भूले हुए है कि किसी का क्या कुछ दर्जा या अधिकार है और क्या कुछ हमारा कर्त्तव्य व कर्म है।"

तभी पं. जी समाज की विचित्र स्थिति को श्लोक के माध्य से प्रकट करते हैं -

फूटी आँख विवेक की, कहा करे जगदीश।
कंचनिया को तीन सौ, मनीराम को तीस॥

एक घंटे वेश्या नृत्य में तीन सौ रुपये, परन्तु मनीराम प जी को 30 दिन के तीस रूपये। आज भी समाज मे वैषम्य नजर आता है, क्योंकि जैन सिद्धान्त के ज्ञाता विद्वान को 30 दिन का 2-5 हजार रूपये देने का बजट बनता है, परन्तु क्रिया-काण्डी पंडित वर्ग को 5-8 दिन का 25-50 हजार दिया जाता है। वैषम्यपना से ही समाज में विद्वान नहीं क्रियाकाण्डी बढ़ रहे हैं। जो कि चिन्तनीय विषय है। पं जी आगे लिखते हैं -

''जैसा हम कारण मिलायेगे उससे वैसा ही कार्य उत्पन्न होगा। यदि कोई मनुष्य अपना मुख मीठा करना चाहे और कोई भी मिष्ठ पदार्थ न खाकर कड़वे से कड़वे पदार्थ का सेवन करता रहे तो कदापि उसका मुख मीठा नहीं होगा, इसी प्रकार जब हम सुखी होना चाहते हैं तो हमको सुख का कारण मिलाना चाहिए अर्थात् धर्म का आचरण करना चाहिए और न्यायमार्ग पर चलना चाहिए साथ ही अन्याय, अभक्ष्य और दुराचार का त्याग कर देना चाहिए, अन्यथा कदापि सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। धर्ममार्ग पर चलने की प्रेरणा व धर्म का मर्म विद्वान् ही बता सकते हैं। जैनाचार्य भी यही बात कहते है -

पुण्यस्यफलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
फलं नेच्छन्ति पापस्य पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥

विवेक जाग्रत करने के लिए नीति ग्रन्थो व विद्वानों का सत्संग अनिवार्य है। पडित जी आगे कहते हैं -

''यदि आप वास्तव में अपना कल्याण और हित चाहते हैं और यदि आप फिर से इस भारतवर्ष को उन्नतावस्था में देखने की इच्छा रखते हैं तो कृपाकर अपने हृदयों में विवेक प्राप्ति का यत्न कीजिए, अपने धर्म ग्रन्थों तथा नीतिशास्त्रों का नियमपूर्वक अवलोकन व स्वाध्याय कीजिए और अपने बालक-बालिकाओं के नियम से प्रथम धार्मिक शिक्षा दिलाइये। स्वयं दुराचार और अन्याय को त्यागकर अपनी सन्तान को सदाचारी बनाइये, न्याय मार्ग पर चलाईये, तभी आप मनुष्य जन्म की सार्थकता को पा सकते हैं।

सातवें निबंध "मक्खन वाले का विज्ञापन" में पं. जी ने 'अनेकान्त' पत्र के माध्यम से जैननीति अर्थात् अनेकान्त नीति/स्याद्वाद नीति का सुगम वर्णन किया है, जो वस्तु तत्व को सप्तप्रकार से कथन कर, नय पद्धति से समझाकर सत्यमार्ग के दर्शन कराती है। पं. जी नय पद्धति की व्याख्या करते हुए इसी निबंध में पृ. 787 पर लिखते हैं "जिनेन्द्र देव की नय पद्धति अथवा न्याय पद्धति है और जो सारे जैन तत्वज्ञान की मूलधार एवं व्यवस्थापिका है, उसे जैन नीति कहते हैं।" पृ. 78

अमृतचन्द्राचार्य भी पुरूषार्थसिद्धुपाय में श्लोक 225 में निर्देशित करते हैं -

एकेनाकर्षन्ति श्लथयन्ती वस्तु-तत्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनीनीतिर्मन्थान नेत्रमिव गोपी॥

अर्थात् गोपी दही को मथते समय मथनिया की एक रस्सी को ढीली करती है और एक रस्सी को खींचती है, जैननीति भी वस्तु तत्व का कथन करने के लिए नय विवक्षा को अपनाती है, तभी वस्तु तत्त्व की यर्थाथता दृष्टिगोचर होती है।

आचार्य विद्यासागर महाराज जैन गीता पृ. 212 पर अनेकान्त सूत्र 12 में यही बात कहते हैं -

हो एक ही पुरुष भानज तात भाई,
देखा वही सुत किसी नय से दिखाई
पै भ्रात तात् सुत औ सबका न होता,
है वस्तु धर्म इस भाँति अशांति खोता॥

अनेकान्त विरोधात्मक पद्धति नहीं अपितु समन्वय की सुरभि फैलाता है "जैनधर्म और दर्शन" में मुनिप्रमाणसागर पृ. 265 पर लिखते हैं -

"जहाँ 'भी' की अनुगूंज होती है वहाँ समन्वय इस प्रकार अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि पं. श्री जुगल किशोर जी मुख्तार निर्भीक और

दूरदृष्टा थे। इसलिए उन्होंने समाज को एकान्त अवधारणाओं और व्याप्त कुरीतियों के प्रति सचेत किया।''

पं जी व्यंग्यात्मक पद्धति से विनोदपूर्ण शिक्षा इन निबंधों के माध्यम से दी है जो कि समाज में चिन्तन की धारा को प्रवाहित करने में सक्षम है, और परिवर्तित होकर परिवर्तन करने की अवधारणा को सिद्ध करती है जो कि विश्वशान्ति के सूत्र को सुगम बनाती है।

प्रकीर्णक निबंधों का मूल्यांकन

डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी', वाराणसी

जैन परम्परा के इतिहास और साहित्य आदि के क्षेत्र में पं. नाथूराम जी प्रेमी, डॉ. हीरालाल जी जैन, डॉ. कामता प्रसाद जी, डॉ. ज्योतिप्रसाद जी, पं कैलाशचन्द जी सिद्धान्तशास्त्री, पं. मिलाप चन्द्र कटारिया, डॉ. नेमिचन्द शास्त्री आदि जिन अनेक विद्वानों के लेखन से मैं अत्यधिक प्रभावित रहा हूँ उनमें ब्र. श्रद्धेय पं. जुगल किशोर जी मुख्तार का विशिष्ट स्थान और नाम रहा है। इस सबके द्वारा लिखित साहित्य को पढकर मुझे इस क्षेत्र के प्रति काफी आकर्षण हुआ और कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। श्रद्धेय मुख्तार सा. का सृजन इतनी विविधता और विशालता लिए हुए है। आश्चर्य होता है कि एक जीवन में इतना कर्म कैसे सम्भव है? उन्होंने दूसरों को इन क्षेत्रों में नये-नये लेखन और अनुसंधान करने की प्रेरणा, मार्गदर्शन देकर और दूसरों के लेखन के संशोधन आदि कार्य भी उन्होंने कम नहीं किए। ऐसे अविस्मरणीय विद्वान् के योगदान का लम्बे समय के बाद स्मरण करने हेतु आयोजित इस संगोष्ठी और इसके प्रेरणा स्त्रोत पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के प्रति जितनी कृतज्ञता व्यक्त करूँ, कम है। मुख्तार जी का व्यक्तित्त्व और कृतित्व आदर्श और महानता एक मिसाल है। इन्होंने सन् 1896 से ही लेखन कार्य प्रारंभ कर दिया था। ये राष्ट्रवादी विचारधारा की साकार प्रतिमूर्ति तो थे ही एक श्रेष्ठ कवि भी थे। आपके द्वारा रचित मेरी-भावना नामक पद्य रचना समाज राष्ट्र भक्ति और उसके उन्नयन के लिए समर्पित अमर कविता है। वस्तुतः मुख्तार जी को महान् कवि लेखक चिन्तक और सच्चा देशभक्त सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

उनका प्रभूत लेखन उनकी अनुसंधानप्रियता को दर्शाता है। उनका इतिहास सम्बन्धी लेखन विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री ने उनके विषय में लिखा है कि वे अपने अध्ययन और मनन द्वारा जिन निष्पत्तियों को ग्रहण करते थे उन्हें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करने के लिए भेज देते थे। निबंध लिखना और मौजी बहार में आकर कविता लिखना उनके दैनिक कार्य थे।

पं. मुख्तार जी ने अपने समय मे शधिब्दिक अनुसंधानपरक तथा नये तथ्यों से युक्त निबंध लिखे जो विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुए। अनेकान्त जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका के तो वे सम्पादक और प्रतिष्ठापक ही नहीं अपितु प्राण थे। इसमें आपके सम्पादकीय के अतिरिक्त अनेक निबन्ध ग्रन्थ समीक्षायें तथा शोधात्मक टिप्पणियाँ भी नियमित प्रकाशित होती थी।

अनेकान्त पत्रिका का जैनधर्म, साहित्य और संस्कृति के विकास में जो योगदान है, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। इसके पुराने अंक देखने पर इन तथ्यों की यथार्थता अपने आप सामने आ जाती है।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित आपके द्वारा लिखित शोध-परक एवं समसामयिक निबन्धों का संग्रह 'युगवीर निषन्धावर्ण' नाम से दो खण्डों में प्रकाशित है। इनमें वैयक्तिक निबन्धों के अतिरिक्त समाज सुधारात्मक एवं गवेषणात्मक निबन्ध भी है। प्रथम खण्ड में ४१ और द्वितीय खण्ड में ६५ निबन्धों का संकलन है। इन निबंधों में इनके लेखकाल का सामाजिक, साहित्यिक एवं प्रवृत्तिमूलक इतिहास देखने को मिलता है। इस निबंधावली के द्वितीय खण्ड में उत्तरात्मक, समालोचनात्मक, स्मृति परिचयात्मक, विनोद शिक्षात्मक एवं प्रकीर्णक इन विषयों के जिन ६५ निबन्धों का संकलन है, उनमें प्रकीर्णक निबन्धों के अन्तर्गत १२ निबन्ध है, जो प्रायः सामाजिक, शास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक मतभेदों के शमन हेतु समाधान रूप में लिखे गये हैं।

प्रकीर्णक निबंधों में आरम्भिक तीन निबंध इनके समय में बड़े चर्चित विषयों से संबंधित है। इनमें प्रथम है क्या मुनि कन्द-मूल खा सकते हैं ? दूसरा है क्या सभी कन्दमूल अनन्तकाम होते हैं ? वस्तुतः हमारे आगमों में श्रावक और श्रमणों के आचार-विचार संबंधी विषयों का स्पष्ट विवेचन मिलता है। किन्तु समय-समय पर उनका पूर्वापर सम्बन्धरहित अर्थ किया

जाता है, जिससे अर्थ का अनर्थ हो जाता है। किन्तु उस अनर्थ को दूर करने का कार्य भी विवेकी और सिद्धान्तनिष्ठ विद्वान् करते रहे हैं। यही कार्य मुख्तार जी ने किया है। आ. वट्टकेरकृत मूलाचार के नवें अनगारभावनाधिकार में उन कंदमूलफलों की प्रासुकता-अप्रासुकता पर विचार किया गया है, जो मुनियों के भक्ष्य-अभक्ष्य से संबंधित है। ये गाथायें हैं-

फलकंदमूलीयं अणग्गिपक्कं तु आगमं किंचि।
णच्चा अणेसणीयं ण वि य पडिच्छंति ते धीरा॥ ९॥ ५९॥

अर्थात् फलानि कंदमूलानि नीगणनि चाग्निपक्वानि न भवंति यानि अन्यदपि आमकं यत्किंचिदनशनीयं ज्ञात्वा नैव प्रतीच्छन्ति ते धीरा इति।

दूसरी गाथा है-

जं हवदि अणत्वीयं णिवट्टिमं फासुयं कपं चेव।
णाऊण एसणीयं तं मिक्खं मुणी पडिच्छंति॥ ९।६०॥

अर्थात् यद्-भवति अबीजं निर्बीजं निर्वर्तिमं निर्गतमध्यसारं प्रासुकं कृतं चैव ज्ञात्वाऽशनीयं तद् भैक्ष्यं मुनयः प्रतीच्छन्ति। अर्थात् जो बीज रहित हैं, जिनका मध्यसार निकल गया है अर्थात् जो प्रासुक किये गये हैं- ऐसे सब खाने के पदार्थों को भक्ष्य समझकर मुनि भिक्षा में ग्रहण करते हैं।

यद्यपि, सुधारवादी माने जाने वाले आ. मुख्तार सा. ने इन गाथाओं को अपने लेखों में जो आशय व्यक्त किया है, उस पर आज भी मतभेद है। उनका इस संबंध में यह आशय है कि "जैन मुनि कच्चे कंद नहीं खाते परन्तु अग्नि में पकाकर शाक-भाजी आदि रूप में प्रस्तुत किये गये कंदमूल वे जरूर खा सकते हैं। दूसरी गाथा का उनके अनुसार यह आशय है कि "प्रासुक किये हुए पदार्थों को भी भोजन ग्रहण कर लेने का उनके लिए विधान किया गया है। यद्यपि अग्निपक्व भी प्रासुक होते हैं। अन्त में मुख्तार जी ने कहा है कि यद्यपि अग्निपक्व भी प्रासुक होते हैं। अन्त में मुख्तारजी ने कहा है कि इसमें कोई संदेह नहीं रहता कि दिगम्बर मुनि अग्नि द्वारा पके हुए शाक-भाजी आदि रूप में प्रस्तुत किये हुए कंद-मूल जरूर खा सकते हैं। हाँ, कच्चे कंद-मूल वे नहीं

खा सकते। ये मुख्तार जी के अपने व्यक्तिगत विचार हैं, जिन्हें उन्होंने मूलाचार की उक्त गाथाओं से ग्रहण किया था।''

दूसरे निबंध ''क्या सभी कंदमूल अनंतकाम होते हैं, में मुख्तार जी ने अदरक, गाजर, मूली, आलू आदि जमीकंद के विषय में विचार-विमर्श करके अन्त में कहा है कि विद्वानों को कंदमूलादि की जाँच करके उसके नतीजे से सूचित करने को कहा है।''

तीसरा लेख ''अस्पृश्यता-निवारक आन्दोलन'' शीर्षक से है। निबन्ध मुख्तार जी ने सन् १९२१ में लिखा था, जो जैन हितैषी के जुलाई १९२१ के अंक में प्रकाशित हुआ था। इस लेख की प्रेरणा लेखक को उस समय महात्मा गाँधी द्वारा चलाये जा रहे अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन से प्राप्त हुई थी। इसमे मुख्तार जी ने जैन धर्म की दृष्टि से अस्पृश्यता और स्पृश्यता पर विचार करके कहा था कि अछूतो पर अर्से से बहुत अन्याय और अत्याचार हो रहे हैं। इसलिए हमें अब उन सबका प्रायश्चित करना जरूरी है।

चतुर्थ लेख 'देवगढ़ के मंदिर-मूर्तियों की दुर्दशा से सबधित है, जो दिसम्बर १९३० के अनेकान्त के अंक में प्रकाशित हुआ था। यह मुख्तार जी के निजी अनुभव पर आधारित है। यद्यपि बाद में तो इस तीर्थ की व्यवस्था और सुरक्षा में काफी सुधार आया किन्तु स्वतंत्रता के पूर्व देवों के गढ़ जैन सास्कृतिक दृष्टि से सर्वाधिक समृद्ध तीर्थ की जो दुर्दशा थी, उसे ही इस लेख मे वर्णित किया है। उन्होंने इस दुर्दशा का वर्णन दु:खी हृदय से करते हुए लिखा है कि इन करुण दृश्यों तथा अपमानित पूजा-स्थानों को देखकर हृदय में बार-बार दु:ख की लहरें उठती थीं, रोना आता था, और उस दु:ख से भरे हुए हृदय को लेकर ही मैं पर्वत से नीचे उतरा था।'

पंचम निबंध ''ऊँच-गोत्र का व्यवहार कहाँ है! जो षट्खण्डागम के वेदना नामक चतुर्थ खण्ड के चौबीस अधिकारों में से पाँचवें 'पयदि' अधिकार पर आधारित है। यह लेख भी नवं. १९३८ के अनेकान्त में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने इसमें उच्च गोत्र से संबंधित अनेक प्रश्न उपस्थित किये हैं।''

छठा निबंध 'महत्त्व की प्रश्नोत्तरी' शीर्षक से है। यह प्रश्नोत्तरी महाराजा अमोधवर्ष कृत प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका के आधार पर नये ढंग से संकलित की गई है। इसके कुछ प्रश्न और उनके उत्तर दृष्टव्य हैं। 1. संसार में सार क्या है? उत्तर-मनुष्य होकर तत्वदृष्टि को प्राप्त करना और स्व-पर के हित साधन में सदा उद्यमी रहना। 2. प्रश्न- अन्धा कौन है ? उत्तर - जो न करने योग्य कार्य के करने में लीन है। 3. प्रश्न - बहरा कौन है ? उत्तर - जो हित की बातें नहीं सुनता। 4. प्रश्न-नरक क्या है? उत्तर-पराधीनता का नाम नरक है।

सातवाँ निबन्ध 'जैन कॉलोनी और मेरा विचार' शीर्षक से है, जिसमें इन्होंने सेवा की भावना से अच्छे नैतिक संस्कारों के विकास हेतु जैन कॉलोनी बसाने की आवश्यकता पर जोर दिया है, ताकि जैन-जीवन शैली के जीते-जागते उदाहरण एकत्रित हों और अन्य लोग भी तदनुसार अपना विकास कर सकें।

अष्टम "समाज में साहित्यक सद्रुचि का अभाव" नामक निबंध संकलित हैं, जिसमें जैन समाज में पूजा-प्रतिष्ठाओं, मंदिर-मूर्ति निर्माण और अन्यान्य प्रदर्शनों के प्रति अतिशय रुचि और नष्ट हो रहे शास्त्रों, साहित्य के नवनिर्माण, प्रकाशन, उद्धार आदि के प्रति अरुचि को देखकर 'मुख्तार जी' ने अपनी वेदना प्रकट की है। जैन साहित्य के उद्धार, उन्नति और प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने अनेक सुझाव प्रस्तुत किये हैं।

नवम 'समयसार का अध्ययन और प्रवचन' शीर्षक निबंध है। यह मई १९५३ में अनेकान्त में प्रकाशित हुआ था। इसमें आपने समयसार को बिना गहराई के समझे इसके प्रवचन करना और उन्हें छपवा लेना आदि की प्रवृत्ति की आलोचना की है।

दसम 'भवादभिनन्दी मुनि और मुनि निंदा' नामक निबंध में लेखक ने 'संसार के कार्यों के प्रति रुचि रखने वाले मुनियों का विस्तृत विश्लेषण करके ऐसे मुनियों की आलोचना करने वालों को 'मुनि निंदक' कहकर लांछित करने वालों पर टिप्पणी की है। वस्तुतः मुनि धर्म का मुख्य उद्देश्य आत्म

कल्याण करना है, न कि सासारिक कार्यों में रुचि रखना। मुख्तार जी ने अपने इस विस्तृत निबंध में सच्चे मुनियों के स्वरूप और समाज की जिम्मेदारी आदि का अच्छा विश्लेषण किया है। फिर भी समाज की स्थिति आज भी इसी तरह की बनी हुई है।'

ग्यारहवें 'न्यायोचित विचारों का अभिनन्दन' निबंध में लेखक ने श्रमण (अक ४) पत्रिका में प्रकाशित मुनि न्यायविजय जी की 'नम्र विज्ञप्ति' को पढकर उसकी प्रशंसा करके जैन धर्म और संस्कृति के गौरव के प्रसार के उपायो पर चर्चा की है।

बारहवें और अन्तिम 'एक अनुभव' निबंध में आपने जैन संदेश पत्रिका में श्रीरामजी भाई मणिकचंद दोशी सोनगढ़ के प्रकाशित निबंध हैं। 'प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना' की आलोचना की है।

इस तरह युगवीर निबंधावली में सकलित ये प्रकीर्णक लेखक जैन धर्म, संस्कृति, साहित्य और समाज के स्वरूप को उच्चतम बनाये रखने में पथप्रदर्शन तो करते ही हैं, प्रेरणा और दीप स्तंभ का कार्य भी करते हैं। अत: वर्तमान सन्दर्भ में इनका अध्ययन-मनन आवश्यक है।